अथ रुद्र निर्णय।

"त्रिदेव निर्णय की भूमिका"

मिथिला संस्करण।

"गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः"

धर्म और अधर्म क्या है इसके लिये कोई व्यवस्थित परिभाषा अभी तक निर्णीत नहीं। जिस प्रकार वर्तमान काल तक राजकीय नियम अव्यवस्थित है, तद्वत् धर्म की भी तत्समान ही दशा है। जिस देश में जितनी बुद्धि, अभिमान, स्वार्थपरायणता, हितैषिता आदिक गुण होते हैं तदनुसार ही वहां के राज्यके और धर्म के नियम भी हैं। यह केवल अभिमान और बुद्धि का फल है कि भारतवासी शूद्र कदापि धर्माधिकारी या राज्य में उच्चपदाधिकारी नहीं हो सकते। सभा में राजा, महाराज के समान सर्वजन आसन नहीं पासकते। शूद्र जन वेद को सुन भी नहीं सकते। द्विज यदि भ्रमवश भी कलवार चर्मकार आदिके हाथ का पानी पीले तो उसको प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। यदि वह यवन का भात खाले तो वह आर्य्य (हिन्दू) नहीं रह सकता। इसके लिये धर्मशास्त्र में प्रायश्चित्त का भी स्थान नहीं। यह केवल अज्ञान या अभिमान सर्प का घातक विष है। यह केवल हमारे देश की ही दशा नहीं किन्तु पृथिवी पर सर्वत्र ही प्रायः एतत्समान ही दशा है गरीबों और निर्बुद्धियों की प्रतारणार्थ ही अभी तक बहुत से राजकीय और धार्मिक नियम बने हुए हैं। इत्यादि अनेक विषयों के विचारने से मुझे प्रतीत होता है कि अभी तक मनुष्य समाजों में भी पशुयुग ही है। अभी मानव युग उपस्थित नहीं हुआ है, हां,

यह बात सत्य है कि इन मानव समाजों में कोई २ पुरुष मनुष्यता को जड़ में पहुंचे हैं किन्तु उनकी बातें समाजों में चलने नहीं पातीं क्योंकि वैसे महापुरुष पृथिवी पर दो ही एक रहते हैं।

प्रत्येक देश में धर्म गढ़ने वाले कुछ पुरुष बहुत दिनों से होते आए हैं। उन में जितना विवेक रहता है जैसा उनका कुल और समाज है और वे जितने स्वार्थी और परार्थी रहते हैं। तदनुसार धर्म रचा करते हैं। वही फैलते २ ईश्वरीय रूप को धारण कर उस देश में मान्य और पूज्य होने लगता है और तदनुरूप उसका फल कटु या मधुर होता है। धर्म व्यवस्था में एक यह विलक्षण बात देखी जाती कि जो वस्तु एक किसी देश या कुल में धर्म मानी-जाती वही अन्यत्र अधर्म या धर्माधर्म दोनों में से कुछ नहीं माना जाता। यहां द्विजातियों में विधवा विवाह अधर्म समझा जाता। अन्यदेश में कुछ नहीं। यहां मुसलमान आदि का पानी पीना द्विजाति के लिये पातक है। अन्यत्र स्पर्श दोष की चर्चा तक नहीं। यहां मनुष्यों में चार या पांच विभाग करके सारी धर्म व्यवस्था की गई है अन्यत्र ऐसी दशा नहीं। शाक्त मांस भक्षण को धर्म परन्तु उसी को वैष्णव अधर्म समझते हैं। मैं कहां तक उदाहरण बतलाऊं। आप लोग स्वयं विवेक नयन को खोलकर पृथिवी पर धर्म की आश्चर्य लीला देखिये। तब विचारिये कि पृथिवी के सब धर्म पुस्तकों के अनुसार धर्माधर्म क्या है। सर्वत्र विरोध प्रतीत होगा। इसी भारतवर्ष में आर्य्य (हिन्दू) मुसलान, क्रिस्तान और बौध जैन पारसी आदिकों के मध्य कितनी धार्मिक विभिन्नता दीखती है।

इस विषय को त्याग केवल ईश्वर का ही निर्णय करना चाहे तो उसका भी ठीक २ पता नहीं लगेगा। वह कैसा और कहां रहता क्या करता इत्यादि विषयों का निर्धारण धर्म पुस्तकों के

अनुसार दुष्कर है। यहां वर्तमान हिन्दू धर्म में वास्तविक ईश्वर कोई है ही नहीं। केवल कल्पनाओं से संगठित पौराणिक धर्म है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा देवी, दुर्गा, काली आदि देवता विद्वानों के बनाए हुए हैं। जैसे मनुष्य सब साधनों को सम्मिलित कर सुन्दर भवन बनाते हैं। तद्वत् यहां के विद्वानों ने मनुष्यजाति के मानसिक सन्तोषार्थ और विश्वासार्थ ईश्वर को बनाया है। आश्चर्य यह है कि जो ईश्वर मनुष्यरचित है वह आज मनुष्यरचयिता मानलिया गया है। मनुष्य अपनी आशापूर्ति के लिये उसकी पूजा पाठ करता है। यहां बहुत दिनों से रूपक में कथा लिखने की प्रथा चली आती है। वही महाभारत पुराण है। यही इस ग्रन्थ में संक्षेपरूप से दिखलाया गया। आर्थिक अभाववश भूमिका अभी इसकी नहीं लिखी जाती।

धन्यवाद।

त्रिदेव-निर्णय का यह संस्करण श्री तुलसीदास दत्त जी महोदय के आर्थिक साहाय्य से प्रकाशित हुआ है। आप कलकत्ते के बंगीय सुवर्ण वणिकों में सुविख्यात पुरुष हैं। आपके पिता मधुसूदन दत्त जो गङ्गाधरपुर ग्राम के निवासी थे। वे ग्राम को छोड़ व्यापारार्थ कलकत्ते में आ बसे। श्री तुलसीदास दत्त जी को शिक्षा बहुत थोड़ी सी मिली अतः वे अन्य विभाग में प्रविष्ट न हुए। पर सेवा से इन्हें बाल्यावस्था में ही घृणा उत्पन्न हुई। इस कारण स्वतन्त्र रूप से कुछ आगारत वाणिज्य भी करने लगे। सत्पुरुषों के संयोग से तथा पूर्वजन्म के कर्मोदय से लक्ष्मी देवी इन पर आ विराजमान हुई। इनके प्रभाव से धनाढ्य वणिक इनके व्यापार में अधिक सहायता करने लगे। व्यापार के लिये इनके रुक्के पर लोग रुपये दे जाते थे। अब तक भी बड़े २ धनिक पुरुष इनको

दूकान पर किसी सोनार भूषण बनवाने के लिये सुवर्ण दे जाते हैं। बहुत आदमी ने अपने भूषण का मूल्य इनसे उतना मांगा जितना अन्यत्र उनको अधिक से अधिक मिल सकता था। किन्तु इनके जांच में यदि उसका मूल्य और भी अधिक आया तो अधिक मूल्य दिया। कभी यदि भूल से द्रव्य का मूल्य ठीक न लगाया गया और अपना मूल्य लेकर विक्रेता चला गया इस अवस्था में उस को उचित मूल्य पश्चात् भेज दिया गया इस प्रकार ये अपनी सत्यता के कारण कलकत्ते में प्रसिद्ध पुरुष हैं।

१८, २० वर्ष की अवस्था में प्रथम ये ब्राह्म समाज में प्रविष्ट हुए पश्चात् आर्य्य समाज के पण्डित श्री शिवनाथ जी के उपदेश से आप श्री स्वामी दयानन्द जी के भक्त और वैदिक धर्म के परम अनुरागी बने। इस समय प्रतिदिन तीन चार घण्टे वेद का पाठ और अर्थ विचारते हैं। दिन चर्य्या इनकी इस प्रकार है। रात्रि के तीन बजे उठकर नित्य क्रिया से निवृत्त हो ६।६॥ बजे तक योगाभ्यास और तत्पश्चात् अग्निहोत्र करके दूकान पर जाते हैं। ११ बजे वहां से लौट भोजन कर १२ या १ बजे से ४ बजे तक स्वाध्याय। पुनः ७ से ८ तक योगाभ्यास पुनः शयन। अतः सत्यता और वैदिक धर्म की अनुरागिता के कारण श्री तुलसीदास दत्त जी महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।

ता: २६-४-१९१८

शिवशङ्कर शर्म्मा काव्य तीर्थ।
ग्राम चहुटा।

* ओ३म् *
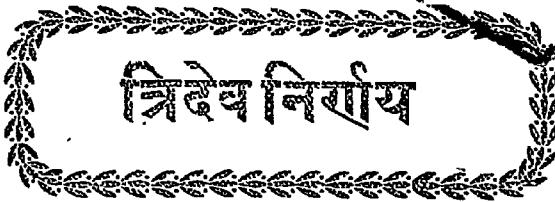
त्रिदेव निर्णय

उप (१) नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये।
सुमृडीका भवन्तु नः। ऋग्वेद।

अर्थ—(अमृतस्य) अमृत जो मुक्तिका दाता अविनश्वर सदा एकरस परमेश्वर है, उस के (ये) जो (सूनवः) पुत्र हैं अर्थात् परमेश्वर के जो भक्त हैं। वे (नः) हम लोगों के (गिरः) वचनों को (उप+शृण्वन्तु) सुनें। तत्पश्चात् वे (नः) हम लोगों को (सुमृडीकाः) अच्छे प्रकार सुख पहुंचानेवाले (भवन्तु) होवें। अथवा इस का अर्थ यह भी होता है कि हम मनुष्यों के जो सूनु अर्थात् सन्तान हैं वे अमृतप्रद परमात्मा के वचनों को अर्थात् वेदों को प्रथम सुनें। तत्पश्चात् हम लोगों के सुखकारी होवें क्योंकि वेदाध्ययन के बिना जगत् में कोई सुखकारी नहीं हो सकता।

---

१ उप-शृण्वन्तु। "प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप" इतने शब्दों का नाम व्याकरण के अनुसार "उपसर्ग" होता है। ये उपसर्ग आगे पीछे दूर समीप कहीं हों, परन्तु अर्थ के समय क्रिया (Verb) के साथ मिल जाते हैं, यह वैदिक नियम है।

"विद्वानों का समागम"

एक समय पण्डित विष्णुदत्त, ब्रह्मदत्त, रुद्रदत्त, रामप्रसाद, छाया-प्रसाद, भैरवसहाय, भगवतीचरण, चण्डिकाप्रसाद, गङ्गाधर, यमुना-नन्दन और लक्ष्मणानन्द आदि अनेक जिज्ञासु विद्वान् पुरुष अनेक देशों से भ्रमण करते हुए मेरे समीप आ बोले कि हम लोग यद्यपि भिन्न २ देश के निवासी हैं परन्तु तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से सम्प्रति एक भ्राता के समान होरहे हैं, विशेष निवेदन आप से यह है कि हम लोगों ने भारतवर्ष के सकल तीर्थस्थानों को देख भाल आप के समीप आए हैं। तीर्थयात्रा के समय भारतवर्ष के प्रसिद्ध २ स्थानों में **श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती** के वेदभाष्य के अनुकूल उपदेश देते हुए अनेक आर्य्यपुरुषों के मुखारविन्द से वचनों को सुन बहुत संशय तो प्रथम ही निवृत्त होचुके हैं। परन्तु दो चार सन्देह ऐसे रह गये हैं जिन से हम सब के अन्तःकरण आकुल व्याकुल होरहे हैं। आज्ञा यदि हो तो उन को निवेदन करें। वे ये हैं:—विष्णु, ब्रह्मा तथा महादेव की पूजा कब से प्रचलित हुई है और यह वेदविहित है या नहीं ? हम सब ने भी व्याकरण, न्याय, वेदान्त, पुराण, तन्त्र आदि अनेक शास्त्र गुरुमुख से पढ़े हैं और वेद भी देखे हैं वेदों में विष्णु, लक्ष्मी, श्री, सुपर्ण, गरुड़, समुद्र, ब्रह्मा, सरस्वती, हंस, रुद्र, शङ्कर, महादेव, नीलकण्ठ, शितिकण्ठ, पशुपति, कृत्तिवासा, गौरी, अम्बिका, वृष आदि सब ही नाम आए हैं। विशेष आप के निकट क्या वर्णन करें। वेदों में विष्णुसूक्त, लक्ष्मीसूक्त और रुद्रसूक्त, तो बहुत देख पड़ते हैं और इन ही सूक्तों से इन देवों की पूजा भी लोग किया करते हैं, इस लिये अधिक सन्देह होता है कि यह पूजा वैदिक है या अवैदिक। वेदों के देखने से हम लोगों को कुछ भी निश्चय नहीं होता। सन्देहरूप दोला पर मन डोल रहा है। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इन तीन देवों के साथ जो वाहन

शक्ति निवास स्थान आदि अनेक उपाधि लगी हुए हैं उनका भी भेद कुछ प्रतीत नहीं होता। विष्णु ब्रह्मा के वाहन पक्षी, महादेव का बैल, पुनः विष्णु का स्थान समुद्र, महादेव का पर्वत। विष्णु श्याम, महादेव गौर इत्यादि अनेक उपाधि देखते हैं। ये सब क्या हैं? निश्चय नहीं होता। इत्यादि अनेक शङ्काएं हृदय में उठती हैं, इस हेतु आप कृपा कर इस का भेद हम जिज्ञासुओं से कहें। हम लोग बहुत दूर से आए हुए हैं। हम लोगों के भाव को आप अच्छे प्रकार समझ गये होंगे जो कुछ अन्य विषय भी इन तीन देवों के सम्बन्ध में होवें सब ही विस्तार करके हम लोगों को समझावें। यही आप से निवेदन है। एवमस्तु। मैं इन सब का विस्तार से वर्णन करूंगा। आप सब सावधान हो कर सुनें प्रथम मैं जगदीश को हाथ जोड़ नमस्कार करता हूं जिसने असंख्य सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथिवी, समुद्र, नदी, जलचर, स्थलचर, नभचर आदि पदार्थ उत्पन्न किये हैं और जो हम आप सब के हृदय में विद्यमान हो, हमारे निखिल कर्त्तव्य को देख रहा है। धन्य परमात्मन्! धन्य है जगदीश! इस के अनन्तर मैं अपनी अति संक्षिप्त कथा सुनाता हूं, जिस से मैं आशा करता हूं कि आप लोगों को भी अवश्य लाभ होगा क्योंकि भारतवर्ष में कैसा अन्धकार सर्वत्र व्याप्त है व बड़े २ विद्वान् किस प्रकार इस में पड़ कर अन्धवत् होरहे हैं और मैंने किस प्रकार इस से त्राण पाया। बाल्यावस्था में जब सत्यनारायण की कथा मुझ को अच्छे प्रकार से आ गई तो मेरे मन में एक बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। मैं विचारने लगा कि धनाढ्य पुरुषों में से किसी विरले पुरुष को ही पुण्य प्रताप से मास मास यह कथा सुनने को मिलती है और जो दरिद्र हैं वे अपने जीवन भर में कदाचित् ही एक आध ही वार सुनने पाते हैं। मुझे यह कथा समग्र आ गई है। पूर्व जन्मार्जित पुण्य का यह फलोदय है। मैं इसका प्रतिदिन पाठ किया करूं। इस विचार के अनुसार प्रातःकाल स्नान सन्ध्या आदि कर इसका पाठ करना आरम्भ कर दिया। कुछ दिन के पश्चात् सप्तशती दुर्गापाठ भी अर्थ सहित मैंने

पढ़ा। अब विचारने लगा कि इस से बढ़ कर जगत् में कोई शुभ और सिद्धग्रन्थ नहीं है क्योंकि इस से सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं। इसी का पाठ मेरे अखिल मनोरथों को सिद्ध करेगा। अतएव मैंने प्रातः और सन्ध्या दोनों काल इसका पाठ आरम्भ किया और इसके लिये जितने नियम व्रत आदिक हैं उन को करने लगा। इस के साथ २ सन्ध्यावन्दन, पञ्चदेवतापूजा, गायत्रीजप और महिम्नः-स्तोत्र आदि अनेक पाठ और अनेक देवताओं के मन्त्रों का जप केवल इस की सहायता के लिये करता था। मेरे ग्राम के समीप प्रायः ८, ९ मील पर शङ्करेश्वर महादेव हैं। वहां माघ मास के प्रत्येक रविवार को उपानह रहित पैदल जाया करता था। कुछ दिन के अनन्तर मेरे पितामह अमृतनाथ चौधरी (मिथिला देश में ब्राह्मणों को भी चौधरी, सिंह आदि पदवी है। दरभङ्गा महाराज ब्राह्मण होने पर भी सिंह कहलाते हैं श्रीमान् रमेश्वर सिंह इत्यादि) मुझ को संस्कृत पाठशाला में भरती करवाने के लिये मधुबनी जो मेरे ग्राम से पूर्व पांच क्रोश पर है, ले गये। वहां मेरा डेरा एक मन्दिर में हुआ, जहां श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र आदि की अनेक प्रकार की मूर्तियां स्थापित हैं। वहां साम्प्रतिक दरभङ्गा महाराज के पितामह भ्राता का सुविस्तृत राज्य है इस हेतु वहां बहुत प्रकार के देव मन्दिर हैं, वहां मेरे मन में कई एक तरङ्ग उठा करती थीं। किस की उपासना मुख्यतया करनी चाहिये। श्रीरामचन्द्र को श्रेष्ठ मानने लगा। परन्तु दुर्गापाठ में पूर्ववत् ही भक्ति बनी रही। पाठशाला में जब जब अनध्याय होवे तब तब मेरा सम्पूर्ण समय बिल्वपत्र और तुलसीदल आदि के लाने में लगता था। दश दश सहस्र बिल्वपत्र और तुलसीदल महादेव और शालग्राम को चढ़ाया करता था इस में प्रातः काल से रात्रि के ९, १० बजे तक समय व्यतीत हो जाता था। श्रीयुत मान्यवर पण्डित अम्बिकादत्त व्यास सुप्रसिद्ध विद्वान् उस समय मधुबनी संस्कृत पाठशाला के मुख्याध्यापक थे। मुझ को इस सब में अधिक समय लगाते हुए देख अनेक उपदेश दिया करते थे। उन में से एक बात

यह है कि मुझ को और ५, ७ मेरे सहाध्यायियों को बुला कर मत्स्य मांस खाने से निवारण किया और शपथ भी खिलवाया। इस प्रतिज्ञा के भङ्ग करने पर मेरे एक सहाध्यायी को प्रायश्चित्त भी करवाया। इस समय मेरे मन में यह निश्चय हुआ कि तुलसी आदि के बटोरने में समय व्यर्थ व्यतीत करना है। केवल जप करना चाहिये। तत्पश्चात् यह निश्चय हुआ कि जप करने में भी व्यर्थ ही समय जाता है, केवल ध्यान करना चाहिये। पाठशाला में सुनीति संचारिणी सभा होती थी जिस में प० अम्बिकादत्त व्यास श्रीकृष्णजी का ध्यानबहुत बतलाया करते थे। इस हेतु मैंने श्रीकृष्णजी के ध्यान में कुछ समय व्यतीत किया। परन्तु अब मेरे अन्तःकरण में यह उत्कट जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि यथार्थ में ब्रह्म क्या वस्तु है? और वह कैसे मिल सकता है? इस विषय में मैंने बहुत प्रश्न करना आरम्भ किया। रात दिन इस में मेरा समय व्यतीत होने लगा। पाठ्य पुस्तकों का अभ्यास बहुत कम करने लगा। यह दशा देख व्यासजी मुझको और मेरे दो साथियों को भी गीता सांख्य और योगभाष्य पाठशाला के समय से अतिरिक्त पढ़ाने लगे। इस समय एक हठ योगी लक्ष्मण दासजी महाराज साहिब के गृह पर रहते थे। उन से व्यासजी हठ योग सीखने लगे और मुझ को क्रिया सहित हठयोग प्रदीपिका पढ़ाने लगे। इस में मेरे किसी साथी को सम्मिलित नहीं किया। एकान्त स्थान में मुझको आसन आदि क्रियाएँ बतलाते थे। व्यासजी का अधिक वयःक्रम होने के कारण आसन आदि वे स्वयं नहीं लगा सकते थे। मेरी अवस्था बहुत कम थी इस से सब आसन साध लेता था। परन्तु इन आसन आदि क्रियाओं से भी मेरा चित्त प्रसन्न न देख कर व्यासजी मुझको विस्पष्ट कहा करते थे कि यह एक सीखने की बात है, इस हेतु सीख लो ताकि तुमको आगे इस की लालसा न रहे और एक ग्रन्थ भी इस प्रकार हो जायगा इस को लोग सिद्धि मानते हैं। देखो तो इस में क्या सिद्धि है। जब पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

मधुवनी को छोड़ मुजफ्फरपुर इन्ट्रेन्स स्कूल के हेड पण्डितपद पर नियुक्त हुए तो मैं भी इनके साथ ही चला आया। यद्यपि इस के लिये मुझ को मधुवनी पाठशाला के सब अध्यापकों से विरोधी बनना पड़ा। यहां आकर धर्मसमाज नामक पाठशाला में पढ़ने लगा इस में संस्कृत की आचार्य्य परीक्षा तक संस्कृत के सब ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं। मधुवनी में भी व्यासजी धर्म के व्याख्यान देने के समय कभी २ स्वामी दयानन्द सरस्वती की चर्चा किया करते थे। परन्तु यहां इस की चर्चा अधिक बढ़ गई जब २ मैं व्यासजी से स्वामी जी के विषय में कुछ पूछता था तो वे बहला देते थे। मेरी जिज्ञासा इस के विषय में अधिक बढ़ गई। धर्मसमाज के पुस्तकालय में सत्यार्थप्रकाश का पता मुझ को लगा मैंने उस को पढ़ा। प्रश्नोत्तर होने पर पाठशाला के सब पण्डित मेरे विरोधी बन गये। परन्तु मुख्याध्यापक श्रीयुत निधिनाथ झा मुझ को बहुत मानते थे और केवल इन से ही आकर दो घण्टे पाठ पढ़ जाता था। मैं यहां "काव्यतीर्थ" की परीक्षा दी और ईश्वर की कृपा से उत्तीर्ण भी हो गया। अब काशी जाने का मुझको मौका मिला। मैं काशी की मध्यम परीक्षा प्रथम ही दे चुका था। इस हेतु क्विन्सकालेज बनारस से छात्रवृत्ति भी मिलने लगी। यह समय प्रायः १८८८ ईस्वी था। श्रीयुत राममिश्र शास्त्री और श्रीयुत गङ्गाधर शास्त्रीजी से पढ़ना आरम्भ किया। राममिश्र शास्त्रीजी का अब तो नाममात्र शेष रह गया है, परन्तु ईश्वर की कृपा से श्रीयुत गङ्गाधर शास्त्री जी अभी कालेज में पढ़ा रहे हैं। मैंने इस समय काशी की विचित्र लीला देखी ४००, ५०० मैथिल विद्यार्थी मुझ से विरोध करने लगे। इसी समय काशी के मानमन्दिर में एक पण्डित सभा होने लगी जिसका उद्देश केवल स्वामी-प्रणीत सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों का खण्डन करना था। इस में शिवकुमार शास्त्री प्रधान थे और काशी के सब ही प्रसिद्ध पण्डित इकट्ठे होते थे, इस सभा ने मेरा बड़ा उपकार किया। काशी के निखिल दिग्गज पण्डितों की योग्यता एक साथ ही प्रतीत

हो गई। मुझे निश्चय हो गया कि इन में से कोई भी वेद नहीं जानते। यह घटना देख अत्यन्त शोक भी हुआ कि हाय! आज काशी ऐसे धाम में जब वेद विद्या नहीं रही तब अब भारतवर्ष की किस भूमि पर होगी। क्या ईश्वर की यही इच्छा है कि अपनी वाणी को इस अपवित्र भूमि से उठा ले। इस समय पण्डित कृपारामजी जो आज कल स्वामी दर्शनानन्द कहलाते हैं काशीजी में थे। पण्डितजी उस सभा के सब प्रश्नों का उत्तर दिया करते थे। इन की सभा अलग हुआ करती थी। मुझे बड़ा आश्चर्य होता था कि काशी के पण्डित कृपारामजी की युक्तियों का भी खण्डन नहीं कर सकते थे। मेरा न कृपाराम से और न आर्य्य-समाज से कोई सम्बन्ध था। मैं कभी आर्य्य-समाज में भी नहीं गया परन्तु कृपारामजी का उत्तर सुनने के लिये केवल कभी २ वहां आया करता था, जहां वे व्याख्यान दिया करते थे। काशी की प्रसिद्ध २ जितनी सभाएं होती थीं, प्रायः मैं सब में जाता था।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यासजी आ काशी में ही रहते हैं इस हेतु जब २ वे यहां आते थे तब २ मुझको प्रायः दर्शन दिया करते थे और कभी २ चार २ घण्टे तक इन से वार्त्तालाप होता रहता था। ये अच्छी तरह से मानगये थे कि मूर्ति पूजा वेद में नहीं है। दयानन्द जो कहता है वह सर्वथा सत्य है, परन्तु कलियुग के लोग मन्दबुद्धि हैं, अतः इस को नहीं समझ सकते हैं, और इस के ग्रहण करने से लोक निन्दा भी होती है, इस हेतु अच्छे मनुष्य इस के निकट नहीं जाते इत्यादि। मैं आप लोगों से इतना और भी कहना चाहता हूं कि जब मैंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वर्णित अहल्या, वृत्रासुर आदि की कथा पढ़ी तो मेरे चित्त में एक बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हुआ। इस के पहिले मैंने इस सब का ऐसा अर्थ न कहीं सुना था और न पठित पुस्तकों में कहीं देखा ही था। इस हेतु यह सन्देह उत्पन्न हुआ क्या अन्य आचार्य्यों ने भी कहीं पर ऐसा अर्थ किया

है या नहीं जिन ग्रन्थों के प्रमाण भूमिका में दिये गये हैं उन का यथार्थ तात्पर्य यह है वा अन्य भी कुछ। इत्यादि सन्देहों से मुझ को वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों के अध्ययनार्थ बड़ी उत्कण्ठा उत्पन्न हुई तब से शास्त्रों के अध्ययन को त्याग केवल वेद पढ़ना आरम्भ किया। ईश्वर की कृपा से बिहार देश के पटना-बांकीपुर में मैं रहने लगा यहां चारों वेद सभाष्य पढ़ने को मिल गये। यहां एक पबलिक लाइब्रेरी भी बहुत उत्तम है। हे विद्युद्दत्त आदि विद्वानो! वेदों के अध्ययन से सम्यक् प्रकार मुझे विदित होगया कि आज कल जितनी प्रसिद्ध २ उपासनाएं प्रचलित हैं वे केवल आलङ्कारिक रूपक अर्थात् मिथ्या हैं। सब ही प्रसिद्ध देव विष्णु, महादेव, ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण आदि रूपकालङ्कार मात्र में वर्णित हुए हैं। इस समय जिन २ प्रसिद्ध देवों की पूजा आप लोग देखते हैं वह सब ही बनाई हुई हैं। हे विद्वानो! केवल अपने देश में ही नहीं किन्तु कुछ समय पूर्व सम्पूर्ण पृथिवी पर इन आलङ्कारिक देवों की पूजा होती थी। भारतवासी विद्वान् लोग अभी तक इस मर्म को नहीं जानते हैं। आप लोगों ने बहुत सोच विचार कर यह प्रश्न पूछा है। मैं विस्तार से वर्णन करता हूं आप सुनें। प्रथम मैं **महर्षि दयानन्दजी**—को सहस्रश: नमस्कार करता हूं कि जिन के ग्रन्थों के अवलोकन से मतभ्रम दूर हो गये। यदि मुझ को इन की सहायता आज न मिलती तो मैं भी भारतवासी विद्वानों के समान अश्वत्थ, वट, तुलसी, बिल्व आदि वृक्षों की, शालग्राम नर्मदेश्वर आदि पत्थरों की, गङ्गा, यमुना, कृष्णा, कावेरी आदि नदियों की भूत, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी आदि सर्वथा मिथ्या काल्पनिक वस्तुओं की पूजा करता रहता और सत्यनारायण की कथा सप्तशती आदि महामिथ्याभूत ग्रन्थों का ही पाठ करता वेद तक पहुंचने का अवसर नहीं मिलता। यदि मिलता भी तो इस के अर्थ से सर्वथा वञ्चित ही रहता एवं श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र युधिष्ठिर, अर्जुन आदि को ब्रह्म अथवा ब्रह्म का अंश मान परब्रह्म

से सदा विमुख रखता । परन्तु जिन के ग्रन्थावलोकन से ये सारे भ्रम मेरे अन्तःकरण से दूर हो गये उन को प्रथम सहस्रशः नमस्कार हों। पुनरपि सच्चिदानन्द को वन्दना करता हूं कि वह मेरे इस महान् कार्य में सहायक हो।

"यो देवेष्वधिदेव एक आसीत् । कस्मै देवाय हविषा विधेम"

ऋग्वेद

(यः) जो (देवेषु + अधि) सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथिवी, अग्नि, जल, वायु, आकाश, प्राण, इन्द्रिय आदि समस्त देवों में (एकः + देवः) एक ही महान् देव (आसीत्) विद्यमान है उसी (कस्मै) आनन्द स्वरूप (देवाय) महान् देव के लिये (हविषा) स्तुति, प्रार्थना, वन्दना, उपासना, पूजा आदि के द्वारा (विधेम) हम सब प्रेम भक्ति किया करें। इति ॥

एक देव

हे कोविदवरो ! जिस काल में ब्रह्मवादी-मधुच्छन्दा, मेधातिथि, दीर्घतमा, अगस्त्य, कक्षीवान्, गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, बृहस्पति, वसिष्ठ, नारद, कश्यप, नारायण, शिवसंकल्प, याज्ञवल्क्य, ऐतरेय आदि और इन के पुत्र पौत्र दौहित्र आदि विद्वान् तथा ब्रह्मवादिनी—लोपामुद्रा, रोमशा, अपाला, घोषा, सूर्या, उर्वशी, यमी, कद्रू, गार्गी आदि विदुषी सब कोई मिल कर देश में वेद विद्या का प्रचार कर रहे थे, उस समय केवल एक ही ब्रह्म की उपासना इस देश में थी। उस परमात्म देव को अनेक इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, मातरिश्वा, पृथिवी, वायु आदि नामों से पुकारते थे जैसा कि वेदों में कहा गया है.—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।
सुपर्णं विप्राःकवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।

मनुजी कहते हैं:—

प्रशासितारंसर्वेषा—मणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्।
एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।

बहुत युगों के अनन्तर यहां के महर्षि सन्तान उस प्रिय ब्रह्म को भूल प्राकृत वस्तुओं की उपासना करने लगी। प्राकृत वस्तु अनन्त हैं—यह पृथिवी, जल, जलचर विविध मत्स्य, मकर, कच्छप आदि। पृथिवीस्थ समुद्र, पर्वत, नदी, वृक्ष, प्रभृति एवं विविध प्रकार के पशु, एवं परितःस्थित असंख्येय सूर्य्य, चन्द्र, तारागण ये सब ही प्रकृति देवी की विभूतियां हैं। एक समय था, जब विद्वान् बहुत कम रह गये और उपदेश की परिपाटी सर्वथा बन्द होगई उस समय प्रजाएं अज्ञ बन जिस किसी की पूजा मन माने करने लगीं। पश्चात् कुछ विद्वान् उत्पन्न हुए। यद्यपि वे भी ब्रह्म तक लोगों को न पहुंचा सके, परन्तु इन असंख्य देवों की उपासना छुड़वा केवल तीन देवताओं की उपासना में लोगों की रुचि दिखाई। वे तीन देव ये हैं। द्युलोकस्थ सूर्य्य देव, अन्तरिक्षस्थ वायु देव, पृथिवीस्थ अग्नि देव। और उन विद्वानों ने यह भी उपदेश किया कि ये तीनों यथार्थ में एक ही हैं। उस समय के ग्रन्थों में यह विस्पष्ट लक्षण पाया जाता है कि इन तीनों के ही अन्य समस्त देव देवी अङ्ग हैं और इन तीनों में भी एक महान् देव गूढ़ रूप से विद्यमान है, जो इन को चला रहा है।

यथार्थ में वही पूज्य, वही उपास्य, वही वन्द्य, वही सत्य है। परन्तु इस सूक्ष्मता तक प्रजाएं न पहुंच सकीं। केवल सूर्य वायु अग्नि इन तीन ही देवों को प्रधान रूप से यज्ञादि में पूजने लगीं। परन्तु इस समय तक इन तीनों देवों की कोई मूर्ति नहीं बनी थी। पश्चात् कुछ और विद्वान् उत्पन्न हुए। यह समय बुद्धदेव से बहुत पीछे का था देश में सर्वत्र प्रायः जैन सम्प्रदाय प्रचलित हो गया था। और ये लोग ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे अर्थात् नास्तिक थे। नास्तिक होने पर भी ये लोग अपने गुरु तीर्थङ्करों की मूर्ति बना कर बड़े समारोह के साथ मन्दिरों में स्थापित कर पूजते थे। इन जैन सम्प्रदायियों ने ही प्रथम इस देश में मूर्तिपूजा की रीति चलाई। जो लोग इस सम्प्रदाय से घृणा रखते थे, विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये ये जैनी मूर्ति बना मन्दिरों में स्थापित कर अपने घण्टे घड़ियाल और शङ्खादिकों की ध्वनि से हमारे भोले भाले भाइयों को अपनी ओर खींच रहे हैं। हमें भी ऐसी मूर्तियां बनाकर स्थापित करनी चाहिये। यह विचार स्थिर होने पर उन में जो बुद्धिमान् थे, उन्हीं ने तीन देवता कल्पित किये। सूर्य के स्थान में विष्णु देव, वायु के स्थान में ब्रह्मा और विद्युत् (बिजुली) के स्थान में महादेव, जिसको रुद्र शिव भोलानाथ आदि नाम से पुकारते हैं। विद्युत् एक प्रकार का अग्नि ही है। केवल विद्युत् ही नहीं किन्तु अग्नि शक्ति जितनी है उस सब के स्थान में रुद्र देव बनाये गये। अब यहां क्रमशः निरूपण करते हैं जिससे आप लोगों को विशदतया बोध हो जायगा।

"विष्णुनाम"।

पूर्वकाल में सूर्य का ही नाम विष्णु था। इस में प्रथम हम विष्णु पुराण का ही प्रमाण देते हैं। यथा:—

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेवच * ।
अर्य्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैवच ॥ १३१ ॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एवच ।
अंशोभगश्चादितिजा आदित्या द्वादश स्मृताः॥१३२॥

विष्णु, शक्र, अर्य्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र वरुण, अंश और भग ये द्वादश नाम सूर्य्य के हैं । अब महाभारत का प्रमाण सुनिये‡।

धाताऽर्य्यमा च,मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ‡॥६५॥
इन्द्रो विवस्वान् पूषा च त्वष्टा च सविता तथा ।
पर्जन्यश्चैव विष्णुश्च आदित्या द्वादश स्मृताः॥६६॥

इन दो प्रमाणों से सिद्ध है कि पूर्वकाल में सूर्य्य का नाम विष्णु था। अब कोष देखिये । अनेक नामों में अन्तरिक्ष (आकाश) का एक नाम विष्णुपद है । यथाः—

"वियद् विष्णुपदं वापि पुंस्याकाशविहायसी"

जिस हेतु आकाश में सूर्य्य का पद=स्थान है, अतः विष्णुपद आकाश का नाम है । अब वेद का जो साक्षात् कोश है, उसको देखिये । निघण्टु अध्याय ५ खण्ड ६ ।

त्वष्टा। सविता ।भगः।सूर्य्यः।पूषा। विष्णुः। वैश्वानरः।वरुणः

---

* विष्णुपुराण अध्याय १५ । अंश प्रथम । जीवानन्द विद्यासागर प्रकाशित १८८२ ई० । कलकत्ता ।

‡ महाभारत आदि पर्व अध्याय १२३ प्रतापचन्द्रराय के प्रकाशित । कलकत्ता । शकाब्द १८०६ ।

इस के ऊपर भाष्य करने वाले यास्काचार्य ने विष्णु का सूर्य्य ही अर्थ किया है। वेदों में तो अनेक प्रमाण हैं, जिनका आगे निरूपण करेंगे। परन्तु यहां केवल एक प्रमाण सुनाते हैं—

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुष्ये दशास्या।
व्यस्कभ्नारोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितोमयूखैः॥

(विष्णो) हे सूर्य्य! (एते+रोदसी) इस द्युलोक और भूलोक को (व्यस्कभ्नाः) आपने पकड़ रक्खा है और (मयूखैः) अपने अनन्त किरणों से अर्थात् आकर्षण शक्ति से (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभितः) चारों तरफ से (दाधर्थ) धारण किये हुये हैं। इस मन्त्र में किरण वाचक मयूख शब्द विद्यमान है। अतः यहां विष्णु शब्द का सूर्य्य ही अर्थ है। अब अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। आप लोगों को विश्वास हो गया होगा कि विष्णु नाम सूर्य्य का ही था, इस हेतु इस विष्णु देव के कल्पना करने वालों ने सूर्य्य के नाम पर ही अपने कल्पित देव का नामसंस्कार भी किया ताकि वेद से सब बातें मिलती जायं॥

विष्णु का वाहन सुपर्ण (गरुड़)

अब आप लोगों को इस बात पर पूरा ध्यान रखना चाहिये कि सूर्य्य के जो जो गुण हैं, वेही इस कल्पित विष्णु में भी स्थापित किये गये और जिस २ शब्द के दो दो अर्थ होसकते हैं, उस उस शब्द के अर्थ के अनुसार वाहन, स्थान, शक्ति आदि बनाए गये हैं। इसी प्रकार जिस २ समस्त पद में दो दो समास हो सकते हैं, ऐसे ऐसे पद रक्खे गये। बात यह है कि बड़ी निपुणता और विद्वत्ता के साथ वाहन आदि की कल्पना की गई है। देखिये—सुपर्ण नाम सूर्य्य के किरणों का है। परन्तु गरुड़ का भी नाम सुपर्ण है। यथाः—

खेदयः। किरणाः। गावः। रश्मयः। अभीशवः। दीधितयः। गभस्तयः। वनम्। उस्राः। वसवः। मरीचयः। मयूखाः। सप्त-ऋषयः। साध्याः। सुपर्णाः। इतिपञ्चदशरश्मिनामानि। निघण्टु। प्रथमाध्याय। खण्ड ५॥

खेदि, किरण, गौ, रश्मि, अभीशु, दीधिति, गभस्ति, वन उस्र, वसु, मरीचि मयूख, सप्तऋषि, साध्य और सुपर्ण ये १५ नाम सूर्य्य की किरणों के हैं। यहां पर आप देखते हैं कि सुपर्ण शब्द आया है। निघण्टु वेद का कोष है, इस का प्रमाण मैंने दिया। वेदों के मन्त्रों में सूर्य्य की किरण अर्थ में सुपर्ण शब्द बहुत प्रयुक्त हुआ है, मैं केवल दो उदाहरण सुनाता हूं। यथा:—

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः। अपध्वान्तमूर्णुहिपूर्धिचक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेवबद्धान्॥

निरुक्त। ४। २॥

यह ऋग्वेद का मन्त्र है यास्काचार्य्य ने निरुक्त में दिया है। सूर्य्य की किरणों का यहां अलङ्कार रूप से वर्णन किया गया है (वयः) अति गमनशील (सुपर्णाः) किरण (इन्द्रम्) सूर्य्य के निकट (उप+सेदुः) पहुंचे। (नाधमानाः) याचना करते हुए। अर्थात् सूर्य्य से याचना करने को किरण सूर्य्य के समीप गये। वह किरण कैसे हैं, (प्रियमेधाः) यज्ञप्रिय। क्योंकि सूर्य्य के उदय बिना यज्ञ नहीं होता। पुनः कैसे हैं, (ऋषयः)-जैसे वसिष्ठादि ऋषि ज्ञान का प्रकाश करते हैं; वैसे ये किरण भी अन्धकार को नाश कर सब पादार्थों के रूप को प्रकाशित करते हैं। किस प्रयोजन के लिये सूर्य्य के समीप गये, सो आगे कहते हैं। हे स्वामिन्! (ध्वान्तम्) अन्धकार को (अप+ऊर्णुहि) दूर कीजिये। (चक्षुः) प्राणीमात्र की आंखें अपनी ज्योति से (पूर्धि) पूर्ण

कीजिये। और (नियया+इव बद्धान्) जैसे पक्षी पाश में बंधे हों तद्वत् आप के मण्डल में बद्ध (अस्मान्) हम लोगों को मर्त्यलोक जाने को (मुमुग्धि) छोड़ दीजिये। यहां यास्काचार्य्य ने "सुपर्णा आदित्यरश्मयः" ऐसा लिखा है, अर्थात् सुपर्ण सूर्य्य की किरणों का नाम है। पुनः—

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाःसमा धीरःपाकमत्रा विवेश॥

इस मन्त्र की व्याख्या में भी यास्काचार्य्य ने "सुपर्णाः सुपतना आदित्यरश्मयः" लिखा है, अर्थात् सूर्य के किरणों का नाम सुपर्ण है। अब आप लोगों को विश्वास होगया होगा कि सुपर्ण शब्द वेदों में सूर्य के किरणार्थ में आया है।

परन्तु आजकल यह सुपर्ण शब्द गरुड़ के अर्थ में ही आता है।

गरुत्मान् गरुड़स्तार्क्ष्यो वैनतेयः खगेश्वरः।
नागान्तको विष्णुरथः सुपर्णः पन्नगाशनः। अमरकोश

गरुत्मान्, गरुड़, तार्क्ष्य, वैनतेय, खगेश्वर, नागान्तक, विष्णुरथ, सुपर्ण और पन्नगाशन इतने नाम गरुड़ पक्षी के हैं। गरुत्मान् तार्क्ष्य आदि शब्द भी सूर्य्य के किरणार्थक वेदों में आए हैं। आप लोगों ने देखा कि सुपर्ण नाम गरुड़ का भी है। अब विचार करने की बात है की सूर्य्य का वाहन किरण है। क्योंकि किरणों के द्वारा ही सूर्य्य, मानो, सर्वत्र पहुंचता है। वेदों में वर्णन आया है कि किरण, मानो सूर्य्य को ढोते फिरते हैं, जब सूर्य्य के स्थान में विष्णु देव पृथक् कल्पित हुए तब जो वाहन सूर्य्य का था उसी नाम का वाहन इस विष्णु को भी दिया गया। उस नाम का वाहन इस मर्त्यलोक में गरुड़ नाम का पक्षी ही है, अन्य नहीं। इस हेतु विष्णु का वाहन

गरुड़ माना गया है। इससे भी आप देख सकते हैं कि सूर्य को ही लोगों ने विष्णु बनाया।

"सर्पभक्षक गरुड़"

एक विषय यह भी मीमांसनीय है कि विष्णु के बनाने वाले आप से तो अन्य किसी नाम के साथ संगति मिला कर विष्णु देव को कोई और ही वाहन देते। गरुड़ ही वाहन क्यों दिया। इस में एक अन्य कारण भी है। गरुड़ सांप को खाता है। सांप का एक नाम "अहि" आता है; यह संस्कृत में अति प्रसिद्ध है। परन्तु वैदिक भाषा में अहि नाम मेघ का भी है। यथा:—

अद्रिः। ग्रावा। गोत्रः। वलः। अश्नः। पुरुभोजाः।
...अहिः। अभ्रम्। बलाहकः... इत्यादि निघण्टु १।१०

अद्रि, ग्रावा, गोत्र, वल, अश्न, पुरुभोज, बलिशान, अश्मा, पर्वत, गिरि, व्रज, चरु, वराह, शम्बर, रौहिण, रैवत, फलिग, उपर, उपल, चमस, अहि, बलाहक, मेघ, दृति, ओदन, वृषन्धि, वृत्र, असुर, कोश। ये तीस नाम मेघ के हैं। अब आप लोग यह विचार सकते हैं कि सूर्य की सुपर्ण (किरण) तो अहि अर्थात् मेघ के खाने वाले हैं और विष्णु भगवान् के सुपर्ण (गरुड़) अहि अर्थात् सांप के खाने वाले हैं। किस प्रकार से विष्णु रचयिता ने द्वयर्थक शब्दों को ले ले कर एक महान् देवता को गढ़ कर खड़ा किया है।

"सुपर्ण और अमृत हरण"

सुपर्ण (गरुड़) के सम्बन्ध में इतना और भी जानना चाहिये। कहीं २ और विशेष कर महाभारत के आदिपर्व में सुपर्ण और अमृत हरण की लम्बायमान आख्यायिका आती है। यथा:—

"इत्युक्तो गरुड़ः सर्पैस्ततो मातर-मब्रवीत्।
गच्छाम्यमृत माहर्तु मदयमिच्छामि वेदितुम्" ॥

गरुड़-माता विनता किसी कारण वश सर्प-माता कद्रू की दासी बन बड़ी दुःखिता थी। एक समय माता से जिज्ञासा करने पर गरुड़ को विदित हुआ कि जब तक अमृत ला सर्पों को न दूंगा तब तक मेरी माता दासित्व से मुक्त नहीं होगी। इस हेतु गरुड़जी को अमृत लाने के लिये अवर्णनीय उद्योग करना पड़ा है। महाभारत के आदिपर्व के २० वें अध्याय से ३२ वां अध्याय तक देखिये। इस का नाम ही सौपर्णाख्याय है। इस आख्यायिका का मूल भी सूर्य्य का किरण ही है। अमृत नाम जल का है। "पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्" पय, कीलाल, अमृत, जीवन, भुवन, वन आदि अनेक नाम जल के हैं अमरकोष में देखिये। सुपर्ण जो सूर्य्य के किरण, वे अमृत अर्थात् जल हरण करती हैं और हरण करके अहि अर्थात् मेघ को देते हैं। सर्प और मेघ दोनों का अहि नाम है। शङ्का—कदाचित् आप कहेंगे कि अभी वर्णन किया गया है कि किरण मेघ का भक्षक है। परन्तु यहां पर पोषक बन गया। यह क्या? उ॰ महाभारत की भी कथा में आप देखते हैं कि जो गरुड़ सर्पों का संहर्त्ता है वह यहां दास बना हुआ है। महाभारत में कहा गया है कि "ततःसुपर्णमाता तामवहत् सर्पमातरम्। पन्नगान् गरुड़श्चापि मातुर्वचनचोदितः" जब कद्रू ने पुत्रादि सहित अपने को नाग लोक में पहुंचाने को विनता से कहा है, तब गरुड़ जी अपनी माता की आज्ञा के अनुसार सर्पों को ढो २ कर नागालय को पहुंचाया करते थे। तत्त्व इस में यह है कि सूर्य्य के किरण अहि (मेघ) को बनाते और बिगाड़ते हैं, क्योंकि सूर्य्य की ही गरमी से मेघ बनता है और शीतल हो नष्ट भी

हो जाता है। इन सब घटनाओं का मुख्य कारण सूर्यकिरण ही है। इसी हेतु दोनों वर्णन हैं कि सुपर्ण "अहि" का पोषक और भक्षक दोनों है। इसी हेतु महाभारत की आख्यायिका में भी सुपर्ण (गरुड़) सर्प के भक्षक और वाहन दोनों हैं। अब आप लोग समझ गये होंगे। यह सब कथा गढ़ी हुई है यथार्थ नहीं। आप लोग स्वयं बुद्धिमान् हैं, ऐसी कथाएं जहां २ आप देखें वहां वहां प्रकृति का वर्णन मात्र समझें। न कोई कभी ऐसा गरुड़ वा विनता वा कद्रू वा सर्प हुआ। वेदों की एक २ छोटी सी बात लेकर इन पुराणों में सहस्रों श्लोकों के द्वारा नवीन रीति से आख्यायिका बनाई हुई है। यहां वेद का एक मन्त्र उद्धृत करते हैं जिस से आप को विदित होगा कि सुपर्ण अमृत के लिये मानो सदा लोभायमान रहता है।

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति। इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥

यह ऋग्वेद का वचन है। यास्काचार्य ने निरुक्त में इसकी व्याख्या की है। (यत्र *) जिस सूर्य मण्डल में स्थित (सुपर्णाः) किरण (अनिमिषम्) सर्वदा (विदथा) अपने कर्म युक्त हो (अमृतस्य+भागम्) जल के अंश को पृथ्वी पर से लेकर (अभिस्वरन्ति) पदार्थ मात्र को तपाते हैं, अर्थात् जब सूर्य के किरण पृथ्वी के जल को सोख लेते हैं, तब क्या जड़ क्या चेतन सब ही सन्तप्त होने लगते हैं, (इनः) ऐश्वर्ययुक्त (विश्वस्य+भुवनस्य) अपने प्रकाश से सम्पूर्ण भुवन का (गोपाः) रक्षक (धीरः) बुद्धिप्रद और (पाकः) प्रत्येक वस्तु को पकाने वाला (सः) वह सूर्य (अत्र) इस । मा) मुझ में (आ+

* ऋचि तुनुघमक्षु तङ्कुत्रोरुष्याणाम् ६। ३। १३३। इस सूत्र से वेदों में "यत्र" का ही "यत्रा" बन जाता है।

विविश †) प्रविष्ट होवे अर्थात् सुभाको सूर्य्य का प्रकाश प्राप्त हो यह आत्मा में भी घटता है। यहां यास्काचार्य ने **सुपर्णा आदित्य-रश्मयः अमृतस्य भागमुदकस्य,,** सुपर्ण का आदित्यरश्मि और अमृत का जल अर्थ किया है, यहां साक्षात् वर्णन पाया जाता है कि सूर्य्य का किरण अमृत का हरण करता है, इसी हेतु किरण का नाम ही 'हरि', हरण करने वाला वेदों में कहा गया है।

"विष्णु और समुद्र,,

पुराणों में यह अति प्रसिद्ध कथा है कि विष्णुभगवान् क्षीरसागर में निवास करते हैं। आप लोग यदि सावधान होकर इस को विचारेंगे तो मालूम हो जायगा कि यह भी सूर्य्य भगवान् का ही वर्णन है। वैदिक भाषा में समुद्र नाम आकाश का है। यथाः—

अम्बरम्। वियत्। व्योम। बर्हिः। धन्व। अन्तरिक्षम्। आकाशम्। आपः। पृथिवी। भूः। स्वयम्भूः। अध्वा। पुष्करम्। सगरः। समुद्रः। अध्वरमिति षोडशान्तरिक्षनामानि। निघण्टु १।३

अम्बर, वियत्, व्योम, बर्हि, धन्व, अन्तरिक्ष, आकाश, आप, पृथिवी, भू, स्वयम्भू, अध्वा, पुष्कर, सगर, समुद्र, अध्वर ये १६ नाम आकाश के हैं। इस में समुद्र शब्द भी विद्यमान है। निघण्टु के भाष्य कर्ता यास्क "समुद्र" शब्द की निरुक्ति इस प्रकार करते हैं:—

† छन्दसि लुङ् लङ् लिटः। ३। ४। ६। धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वकालेष्वेते वास्युः। वेद में लुङ् लङ् और लिट् विकल्प से सब काल में होते हैं।

तत्र समुद्र इत्येतत् पार्थिवेन समुद्रेण सन्दिह्यते। समुद्रः कस्मात् समुद्द्रवन्त्यस्मादापः। समभिद्रवन्त्येनमापः सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि। समुदको भवति। समुनत्तीति वा॥ निरुक्त २॥ १०

पृथिवी पर जो जलसमूह स्थान हैं उसे भी समुद्र कहते हैं। जैसे हिन्दुस्तान का महासागर, ऐरेबियन् सागर, पैसिफिक महासागर इत्यादि। इस हेतु यास्काचार्य्य कहते हैं कि (पार्थिवेन समुद्रेण) पृथिवीस्थ समुद्र के साथ आकाशवाची समुद्र में सन्देह हो जाता है क्योंकि समुद्र शब्द के जो अर्थ हैं वे प्रायः दोनों में घट जाते हैं। अब आगे समुद्र शब्द के अर्थ दिखलाते हैं (समुद्द्रवन्ति + अस्मात् + आपः) जिससे जल द्रवीभूत होकर पृथिवी पर गिरे। आकाश से ही जल गिरता है। (समभिद्रवन्ति + एनम् + आपः) जिस में जल प्राप्त हो। मेघरूप से आकाश में जल एकत्रित होता है। (सम्मोदन्ते + अस्मिन् + भूतानि) जिस में प्राणी आनन्द प्राप्त करें। आकाश में पक्षी गण विहार करते हैं। (समुदकः भवति) जिस में बहुत जल हो (समुनत्ति + वा) जो आर्द्र करे। इत्यादि अर्थ समुद्रशब्द के हैं। ये सागर में भी घट सकते हैं। इस प्रमाण से निश्चय हुआ कि समुद्र नाम आकाश का भी है। एक दो मन्त्रों का भी उदाहरण देते हैं। यथा:—

एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे। तं पाकेन मनसाऽपश्यमन्तितस्तं माता रेढि स उ रेढि मातरम्॥ ऋग्वेद॥ १०। ११४। ४

सायणभाष्यम्। एकः सर्वकार्य्येष्वसहायः सुपर्णः सुपतनः मध्यमस्थानो देवः समुद्रमन्तरिक्षम् आवि-

वेश आविशति आविश्यच स इदं विश्वं सर्वं भुवनं भूतजातं विचष्टे अनुग्राह्यतयाऽभिपश्यति। तमेवंरूपं देवं पाकेन परिपक्केन मनसा अन्तितः समीप अहम पश्य मदर्शम्। किञ्च माता उदकानां निर्म्मात्री माध्यमिका वाक् तं रेढ़ि आस्वादयति उपजीवनमात्र मत्र लक्ष्यते। सउ सखलुमातरं वाचं रेढ़ि लेढि तामेवो-पजीवति लिह आस्वादने। अथ दुर्गाचार्य्यभाष्यम् एक एव अद्वितीयः यस्य पतने गमने। प्रतिमायानं अन्यं द्वितीयं नास्ति। स सुपर्णः सुपतनोवायुः समुद्रम् अन्तरिक्षम् नित्यं आविवेश आविशति न कदाचिदप्यनाविष्टस्तत्र। स च पुनः सर्वभूतानु प्रवेशी तदा विश्वं भुवनं सर्वाणि इमानि भूतानि विचष्टे अभिविपश्यति। यथा द्रष्टव्यानि। तमेवं वर्त्तमानं अहं पाकेन मनसा विपक्कप्रज्ञानेन सर्वगत मपि सन्तम् अन्तिकम् इव अपश्यम्। ऋषिर्दृष्टदेव-तासतत्त्वः कस्मैचिदाचक्षाणो ब्रवीति। तं माता रेढि सउरेढि मातरम्। माता माध्यमिका वाक् तमुप जीव ति। परस्पराश्रयत्वात्तयोर्वृत्तेरध्यात्मवदिति। इति।

भाष्यकार सायण आदि के अनुसार भावार्थ (एक+सुपर्ण:)

एक अर्थात् असहाय सुन्दर पतनशील वायु सर्वदा [समुद्रम् + आविवेश] आकाश में व्याप्त रहता है [सः] वह वायु [इदं विश्वं भुवनं] इस सम्पूर्ण प्राणी को [विचष्टे] अच्छे प्रकार देखता है। [तम्] उसको [अन्तितः] समीप में, हो [पाकेन + मनसा] परिपक्व मन से [अपश्यम्] मैं देखता हूं [तम्] उसको [माता] जलनिर्माण करने वाली माध्यमिका वाक् अर्थात् मेघस्थ विद्युत् [रेढि] चाटती है और [सः + उ] वह वायु भी [मातरम्] विद्युत् को [रेढि] चाटता है। अर्थात् एक दूसरे का आधार है पुनः—

सहस्रशृंगो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्। अथर्ववेद। ४।५

जो सहस्र–सींगवाला बैल अर्थात् सूर्य है वह [समुद्रात्] आकाश से उदित हुआ। सूर्य्य का उदय आकाश से होता है इस हेतु यहाँ समुद्र शब्द का आकाश ही अर्थ हो सकता है। पुनः—

सो अर्णवान नद्यः समुद्रियः प्रतिगृभ्णाति विश्रिता वरीमिभिः। इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात् स युध्म ओजसा पनायते॥ ऋग्वेद १। ५५। २।

यहां सायण "समुद्रिय" शब्द का अर्थ [समुद्रियः समुद्रवन्त्यस्मादाप इति समुद्रमन्तरिक्षं तत्रभवः समुद्रियः] अन्तरिक्षव्यापी करते हैं अर्थात् समुद्र जो अन्तरिक्ष उस में जो व्यापक उसे "समुद्रिय" कहते हैं। मैं आप लोगों के लिये कहांतक उदाहरण बतलाऊं आप लोग स्वयं पण्डित हैं। वेद पढ़ कर देखिये। पचासों स्थलों में समुद्र शब्द आकाशवाची आया है। अब आप लोग स्वयं मीमांसा कर सकते हैं। जब विष्णुदेवता सूर्य्य से पृथक् माना गया और पूजा करने के लिये पृथिवी पर लाया गया तब पृथिवीस्थ समुद्र अर्थात् सागर उनका निवास स्थान बनाया गया।

जब विष्णुशब्द का अर्थ सूर्य था तब वह विष्णु समुद्र अर्थात्

अन्तरिक्ष [आकाश] में निवास करता था पश्चात् जब विष्णु को एक पृथक् देव बनाया तो उचित हुआ कि पृथिवीस्थ समुद्र [जलाशय] उसका निवासस्थान माना जाय और यह सब घटना इस हेतु घटाई गई कि वेदों से सब संगति बैठती जाय। क्योंकि प्रजाओं को वेद पर ही अधिक विश्वास है। इस से भी आप लोगों को पूर्ण विश्वास हो गया होगा कि यह चतुर्भुज विष्णुदेव यथार्थ में सूर्य के ही प्रतिनिधि हैं।

अप् शब्द और विष्णु

अभी वैदिक कोश निघण्टु के प्रमाण से "अप्" शब्द भी आकाश वाची है ऐसा मैंने आप लोगों से कहा है। इस में सन्देह नहीं कि अप् शब्द के अर्थ को भूल कर वा उस पर ध्यान न देकर संस्कृत भाषा में बड़ा ही अनर्थ मचा है। वेद के एक २ शब्द की उलट पुलट हो जाने से पीछे विविध आख्यायिकाएं बनगई हैं। और अब वे यथार्थ सत्य मानी जा रही हैं। सुनिये, अप् शब्द के अर्थ की विस्मृति से क्या क्या हानियां हुईं। अप् शब्द नित्य बहु वचन में आता है। प्रथमा में "आपः" बनता है। आज काल केवल जल के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। इसी हेतु लोग कहने लगे कि हमारा "नारायण देव" जल में निवास करता है, यथाः—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ मनु० १। १०॥

विष्णु पुराण कहता है :—

इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति। ब्रह्म-स्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम्॥ आपो नाराइति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन

नारायणः स्मृतः ॥

आप लोग योगारूढ़ित होकर विचार कीजिये। भगवान् का निवास स्थान सम्पूर्ण जगत है। केवल जल में ही नहीं। यह मिथ्या ज्ञान आप शब्द के अर्थ पर न ध्यान देने से ही विस्तृत हुआ। वास्तव में तो प्रथम विष्णु रचयिता ने आनकार के ही विष्णु को समुद्र निवासस्थान दिया पश्चात् बहुधा अनर्थ प्रवृत्त होगया। इसका यथार्थ अर्थ यह है [आपः] आकाश। [नारा + इति] नार है क्योंकि समस्त विश्व की नेता होने से परब्रह्म का नाम नर है। आकाश उसका पुत्रवत् है इस हेतु नार कहलाता है [नरस्यापत्यं नार आकाशः। नयति प्रापयतीतिनरः] और जिस हेतु यह आकाश उस परमात्मा का अयन अर्थात् निवासस्थान भी है। इस हेतु नारायण कहलाते हैं। यहां अप शब्द का अर्थ जल करने पर भी कोई क्षति नहीं क्योंकि ईश्वर जल में भी व्यापक है। परन्तु क्षति वहां पहुंचती है जहां केवल जल में ही ईश्वर का निवास स्थान मान लिया गया है अन्यत्र नहीं पुराणों में कहा गया कि वह परमेश्वर सम्पूर्ण जगत का संहार कर के जल में ही शयन करता रहता है। यथा :—

यस्यांभसि शयानस्य योगनिद्रांवितन्वतः ।
नाभिहृदाम्बुजादासीद्ब्रह्माविश्वसृजां पतिः ॥

॥ भागवत ।१।३।२

जल में शयन करते हुए और योग निद्रा लेते हुए जिस भगवान् के नाभिकमल से प्रजापतियों के पति ब्रह्मा उत्पन्न हुए इत्यादि अनेक श्लोकों से सिद्ध है कि प्रलय काल में भगवान् जल में सोता रहता है। क्या उस समय में वह व्यापक नहीं है ? इस हेतु मैं कहता हूं कि अप् शब्द के यथार्थ अर्थ न जानने से महान् अविवेक भारत वर्ष में प्रकीर्ण होगया है। और भी सुनिये।

अपएव ससर्जादौ तासु बीज मवासृजत्। मनु० ।१।८।

यहां पर भी अप् शब्द को जलवाची मान सृष्टि की आदि में जल का ही सृजन किया ऐसा अर्थ करते हैं। सो सर्वथा अशुद्ध है, क्योंकि :—

"तस्माद्वा एतस्मा दात्मन आकाशः संभूतः"

उस परमात्मा से प्रथम आकाश प्रकाशित हुआ न कि जल। आकाश से वायु। वायु से अग्नि। अग्नि से जल हुआ है। यह सृष्टि क्रम है। "इस हेतु ऐसे स्थलों में "अप्" शब्द का अर्थ आकाश ही करना समुचित है। मैं यहां एक वेद का प्रमाण देता हूं आप लोग श्रवण कीजिये कैसा उत्तम वर्णन है। यथा :—

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति।

कं स्विद् गर्भं प्रथमंदध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे

ऋग्वेद १०। ८२। ५।

यहां प्रथम प्रश्न करते हैं। यदि ईश्वरीयतत्त्व [दिवा+परः] द्युलोक अर्थात् जहां तक सूर्य नक्षत्रादि वर्तमान हैं उन से पर है और [एना+पृथिव्याः+परः] इस पृथिवी से भी पर है वा आकाश से भी पर है और [देवेभिः+असुरैः] प्राणप्रद व्यापक जितने पदार्थ हैं उन सबों से भी [यद्] यदि पर [अस्ति] है अर्थात् ब्रह्मतत्त्व सब से पर है तब इस अवस्था में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड किस आधार पर कार्य कर रहा है और [आपः] आकाश ने [प्रथमम्] पहले [कम्+स्वित्+गर्भम्] किस गर्भ को [दध्रे] धारण किया [यत्र] जिस गर्भ में [विश्वे+देवाः] सब सूर्य नक्षत्र पृथिवी वायु आदि देव [समपश्यन्त] इकट्ठे हो कर परस्पर कार्य साधन करते हैं। हे विद्वानो! इस प्रश्न का उचित समाधान करो। आगे उत्तर कहते हैं यथा :—

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभा वध्येक मर्पितं यस्मिन् विश्वानि
भुवनानि तस्थुः ॥

ऋग्वेद १०।८२।६॥

[आपः] आकाश ने [प्रथमम्] सर्वत्र प्रसिद्ध अथवा पहले [तम्+इत्] उसी परमात्मस्वरूप [गर्भम्] गर्भ को [दध्रे] धारण किया। जो सब को ग्रहण करे उसे गर्भ कहते हैं, अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के धारण करने वाले परमात्मा को ही आकाश ने अपने में धारण किया क्योंकि व्यापक होने से वह आकाश में भी व्याप्त है उसी [अजस्य] अजन्मा परमात्मा के [नाभौ+अधि] नाभि में अर्थात् [पाशबन्धने] जगत् को बांधनेवाली शक्ति के आधारपर [एकम्+अर्पितम्] एक महान् अचिन्त्य अज्ञेय तत्व स्थापित है [यस्मिन्] जिस अचिन्त्य तत्त्व में [विश्वानि+भुवनानि] सकल जगत् [तस्थुः] स्थित हैं। हे जिज्ञासुओ! उस ब्रह्म के आधार पर ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड स्थित है। यहां आप लोग विचारें। अप् शब्द का जल अर्थ करके कैसा अनर्थ किया है। और इसी अनर्थ के कारण और इसी मन्त्र के मूल पर लोग पीछे यह समझने लगे कि पहले जल की ही सृष्टि हुई। और उस जल ने ईश्वर को अपने में धारण किया। जब अप् शब्द का आकाश भी अर्थ है तो इसका यह अर्थ क्यों न किया जाय। देखिये। एक अप् शब्द के अर्थ की विस्मृति से जगत में क्या हानि पहुंची है अब इस शब्द से भी मीमांसा करें। विष्णु [सूर्य] अप् अर्थात् आकाश में रहता है। और विष्णु स्थान में कल्पित यह चतुर्भुज विष्णु अप् अर्थात् जल में निवास करता है। अर्थात् इस कारण से भी विष्णु का स्थान क्षीर सागर माना गया है। जिस शब्द के दो २ अर्थ हैं ऐसे शब्दों को लेकर यहां विष्णु देव बनाये गये हैं इस में सन्देह नहीं।

सागर और विष्णु।

सागर शब्द भी आकाशवाचक है। आकाश में मेघ रहता है इस हेतु कहीं २ मेघ को समुद्र वा सागर कहा है। उस आकाश सगर से यह पृथिवीस्थ समुद्र बना है इस हेतु "सगरस्यापत्यं सागरः" सगर के लड़के को सागर कहते हैं। आकाश का ही मानो यह समुद्र पुत्र है। इस हेतु यह सागर है। पुराणों में जो सगर राजा की कथा है वह सर्वथा मिथ्या है। लोगों ने सागर शब्द के भाव को न समझ कर एक सगर राजा मान लिया है और विचित्र कथा गढ़ली है। उपरिस्थ समुद्र से पृथिवीस्थ समुद्र बना है इस में वेद का भी प्रमाण है"।

आर्ष्टिषेणो होत्र ऋषि निषीदन् देवापि देवसुमतिं चिकित्वान्। सउत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृ-जद् वर्ष्या अभि॥ निरुक्त २।११

इसका भाव यह है कि उत्तर समुद्र से अर्थात् उपरिस्थ आकाश से अधः समुद्र को अर्थात् नीचे के पृथिवीस्थ सागर को सूर्य ने बनाया इसका भी भाव यह है कि प्रथम यह पृथिवी सूर्य के समान अग्नि गोलक ही थी। धीरे धीरे सहस्रों वर्षों के अनन्तर यह अब इस दशा में है। इस महान् परिवर्तन का कारण एक महान् अग्नि शक्ति है। इस हेतु कह सकते हैं कि इन सब का कारण सूर्य देव ही है। हे विद्वानो! इस कारण से भी कल्पित विष्णु देव का निवास स्थान यह सागर माना गया है। इत्यादि कारण आप लोग स्वयं अन्वेषण कर सकते हैं। लोगों ने ब्रह्मचर्य को त्याग दिया इस हेतु वेदाध्ययन छूट गया। इस हेतु हे विद्वानो! स्वार्थियों पर येह मिथ्या ज्ञान विस्तृत हो लोगों को भ्रम में फंसा रहा है।

विष्णु और शेष नाग।

शेष नाग जो विष्णु भगवान् के पर्य्यङ्क (पलङ्ग खटिया बिछौना) माने गये हैं। इस का भी कारण सूर्य और हर्य्यक (हां पार्श्ववाले) शब्द हैं। प्रश्न यहां यह होता है कि सूर्य्य ने इस पृथिवी और बृहस्पति आदि अनेक ग्रहों को आकर्षण शक्ति से संभाल रक्खा है। परन्तु यह किस आधार पर है। इस के उत्तर में कहा जा सकता है कि इस को भी किसी अन्य महान् सूर्य्य ने या महाकर्षण शक्ति युक्त किसी मूर्तवस्तु ने आकर्षण द्वारा पकड़ रक्खा है। अब इस से यह प्रश्न होगा कि उस को किस ने धर रक्खा है। फिर आप जो बतलावेंगे उस को किस ने पकड़ रक्खा है। इस प्रकार अन्वेषण करते २ अन्त में कहना पड़ेगा कि एक कोई महान् अचिन्त्य शक्ति है जिस की नाभि में यह जगत् स्थित है उसी महान् देव के नाम ओम्, परमात्मा, ब्रह्म आदि हैं। इसी के आधार पर सब हैं। इसी ब्रह्म का नाम शेष है। क्योंकि अन्त में यही शेष (बाकी) रह जाता है। एक बात यहां और भी जानना चाहिये। सूर्य्य शब्द उपलक्षण मात्र है। सूर्य्य शब्द से समस्त ब्रह्माण्ड का ग्रहण है। सूर्य्य का वही शेष अर्थात् भगवान् आधार है परन्तु शेष का अर्थ सांप भी होता है। यथा :—

शेषोऽनन्तो वासुकिस्तु सर्पराजोऽथ गोनसे। अमरकोश।

इस हेतु जब विष्णु एक पृथक् देव बनाया गया तब पृथिवीस्थ शेष अर्थात् सर्प उस का शयनाधार कल्पित हुआ। इस में केवल यही कारण नहीं है अन्य भी है यथा:—

"अनन्त और विष्णु"

अनन्त नाम आकाश और सर्प दोनों के हैं क्योंकि आकाश

का हम लोगों की बुद्धि से अन्त नहीं। अतः सूर्य का अगनाधार आकाश है और सूर्य स्थानीय विष्णु का आधार अनन्त अर्थात् नभ है।

"हरि और विष्णु"

वेदों में हरि शब्द सूर्य के किरण और चक्र आदि अर्थों में आया है। यथा:—

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिव मुत्पतन्ति

ऋग्वेद ॥ १।१६४।४७ ॥

आ द्वाभ्यां हरिभ्या मिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः। आष्टाभिर्दशभिः सोमपेय मयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥४॥ आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिः युजानः। आ पञ्चाशता सुरथेभि रिन्द्रा षष्ठ्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥५॥ आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः। अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥६॥

ऋग्वेद। २। १८॥

इत्यादि मन्त्रों में हरि शब्द सूर्य के किरण अर्थ में आता है। क्योंकि चारों ओर से वे अपनी ओर सब पदार्थों को हरण अर्थात् खींच रहे हैं। वेदों में हरि शब्द बहुत प्रयुक्त हुआ है। अथ मन्त्रार्थ (सुपर्णाः) सुन्दर पतनशील (हरयः) अपनी ओर खींचने वाले किरण (नियानम्) सब के चलाने वाले (कृष्णम्) महाकर्षणशक्तियुक्त सूर्य को लेकर (दिवम् + उत्पतन्ति) द्यु लोक को जा रहे हैं। सायङ्काल का वर्णन है। आगे अलङ्कार रूप से वर्णन करते हैं (इन्द्र) हे सूर्य।

(शतग्राम् + हरिग्राम) दो किरणों से या चार से या छः से या आठ से या बीस से तीस से या चालीस से या पचास से या साठ से या सत्तर से या अस्सी से या नब्बे या सौ से अर्थात् अगणित किरणों से हम लोगों के पदार्थों की रक्षा करो । यहां दो चार संख्या से कुछ नहीं है अभिप्राय बहुत किरणों से है । परन्तु हरि नाम, सांप का भी है । यथा:—

यमानिलेन्द्र चन्द्रार्क विष्णु सिंहांशुवाजिषु ।
शुकाहि कपि भेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु ॥अमर०॥

यम, अनिल, इन्द्र, चन्द्र, अर्क, विष्णु, सिंह, अंशु, अश्व शुक, सर्प, कपि, भेक; और कपिल अर्थों में हरिशब्द है।

अब थोड़ी देर तक यह विचार कीजिये कि जिस सर्प के ऊपर विष्णु भगवान् शयन करते हैं उस के सहस्रफण माने गये हैं । और वह शेष नाग महाश्वेत कहे गये हैं । क्या आप लोगों ने सहस्रफणों वाले और श्वेत सांप को पृथिवी के ऊपर कहीं देखा वा सुना है ? सांप के सहस्रफण नहीं होते हैं, और न श्वेत होता है । यह सूर्य के चक्र का वर्णन है, मानों सूर्य एक देवता है, जो अपने चक्र के ऊपर बैठा या सोता हुआ है । यह चक्र सांप देखते हैं सहस्र किरण वाला है और महाश्वेत है सहस्र शब्द अनन्त वाचक है अर्थात् अनन्त-किरण-युक्त अपने श्वेत (सफेद White) चक्र के ऊपर, मानों, सूर्य देव विश्राम करता हुआ विद्यमान है । यह चक्र अपनी ओर परितः स्थित पदार्थों को बड़े वेग से खींच रहा है इस हेतु हरि शब्द से व्यवहृत होता है । अब जिस हेतु हरि शब्द का अर्थ सर्प भी होता है इस हेतु सूर्य स्थानीय विष्णु देव का पर्यङ्क (खटिया) सहस्र-फण-युक्त श्वेत शेष-नाग कल्पित किया गया है । जो लोग सर्प से अति परिचित हैं उन्हें यह भी मालूम है कि सर्प अपनी नेत्रशक्ति से

किञ्चित् दूरस्थ छोटे २ पक्षियों को अपने मुख में खींच लेता है। यह सर्प में विशेष गुण है। इस हेतु भी कुछ सादृश्य सूर्य किरण से मान रखता है। शेषनाग को सहस्रफण और श्वेत मानना भी संकेत करता है कि यह सूर्य के चक्र का वर्णन है॥ इत्यलम्॥

"विष्णु और चतुर्भुज"

अभीतक विष्णु के वाहन आदि का निरूपण किया है। अब साक्षात् उनके स्वरूप का निर्णय करते हैं। पुराणों में विष्णु चतुर्भुज अर्थात् चारभुजावाले माने गये हैं। यथाः—

केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्।
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गचक्र गदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥

श्री० भा० ॥ २ । २ । ८ ॥

किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं पीताम्बरं वक्षसि
लक्षितं श्रिया। श्री० भा० ॥ २ । ९ । ११ ॥

तमद्भुतंबालकमम्बुजेक्षणंचतुर्भुजं शंखगदाद्युदायुधम्
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौ
भगम् ॥ श्री० भा० ॥ १० । ३ । ९ ॥

मेघश्यामशरीरस्तुपीतवासाश्चतुर्भुजः। शेषशायीजगन्ना
थोवनमालाविभूषितः। देवी भागवत॥ ३ ।२। २३ ॥

इत्यादि अनेक श्लोकों से निखिल पुराण विष्णु को चतुर्भुज मानते हैं। इतना ही नहीं किन्तु विष्णुलोकनिवासी पार्षदों को भी चतुर्भुज ही रूप से वर्णन करते हैं। यथाः—

न तत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥ १० ॥ श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः । सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः ॥ ११ ॥

श्रीभागवत । २ । ९ ॥

विष्णुलोक में न माया और न मायावी हैं किन्तु विष्णु के भक्त सुर असुर से पूजित श्याम कमलाक्ष, पीतवस्त्रधारी सुन्दर हैं और सब ही चारबाहु वाले हैं इत्यादि।

विष्णु चतुर्भुज क्यों माने गये हैं? विष्णु के चार मुख या चार नेत्र या तीन या पांच नेत्र कहीं नहीं कहे गये हैं, चार हाथ ही क्यों माने गये हैं? इस का भी कारण सूर्य देव ही है। आप देखते हैं कि सूर्य की किरणरूप भुजा (बाहु) चारों तरफ फैले हुए हैं किरणों को कर, भुज, हस्त आदि भी कहते हैं। किरण ही, मानो, सूर्य के भुज (बाहु) हैं। यहां पूर्व की अपेक्षा ऐक्य और विलक्षणता है। व्याकरण के अनुसार समास करके यह संगति बैठाई गई है। समास यह है "चतसृषु दिक्षु भुजाः किरणा यस्य स चतुर्भुजः सूर्यः" (चतसृषु) चारों (दिक्षु) दिशाओं में (भुजाः) किरण हैं जिस के वह चतुर्भुज अर्थात् सूर्य। सूर्य इस हेतु चतुर्भुज है कि इसके किरणरूप भुज चारों दिशाओं में व्याप्त हैं। ऐसे २ स्थलों में व्याकरण से मध्यमपद लोपी समास हो जाता है। परन्तु चतुर्भुज शब्द में यह भी समास होगा कि "चत्वारो भुजा बाहवो यस्य स चतुर्भुजः" जिसके चार भुज हों वह चतुर्भुज। अब आप लोग ध्यान दीजिये। सूर्य के स्थान में जब विष्णु देव कल्पित हुए तब चतुर्भुज शब्द के चारबाहु वाला अर्थ करके विष्णु को चार भुजा दिये गये। यहां केवल समासकृत विलक्षणता से अर्थ का परिवर्तन हुआ है और यह घटना घटाई गई

विष्णु और अष्ट भुज, दश भुज।

कहीं २ विष्णु के आठ और दश भुजों का भी वर्णन पाया जाता है। यथाः—

कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः।
चक्रशंखासिचर्म्मेषुधनुःपाशगदाधरः॥ श्री० भा० ६।४।२६॥

महामणिव्रातकिरीटकुण्डलं प्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम्।
प्रलम्बचार्वष्टभुजं श्रीवत्सलक्ष्मं सुकान्तं वनमालयावृतम्॥

श्री० भा० ॥ १० । ८६ । ५६ ॥

जो गरुड़ के ऊपर आरूढ़ हैं। जिनके लम्बे २ आठ हाथ हैं और उन आठों हाथों में चक्र शंखादि हैं पुनः जो विष्णु किरीट कुण्डलादि से सुभूषित हैं और जिनके लम्बे २ सुन्दर आठ हाथ हैं इत्यादि अनेक स्थानों में विष्णु के आठ भुज माने गये हैं। परन्तु कहीं २ दश भुजाओं का भी उल्लेख पाया जाता है। यथा :—

पितामहादपिवरः शाश्वतः पुरुषो हरिः।
कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य्य इवोदितः॥२॥
दशवाहुर्महातेजा देवतारिनिषूदनः।
श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः॥ ३॥

महाभारत अनुशासन॥ १४७॥

यहां पर विष्णु के विशेषण में "दशबाहु" शब्द आया है। इन सबों का कारण यह है कि दिशा कहीं चार कहीं आठ और कहीं दश मानी गई हैं। पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ये चार दिशाएं हैं। पूर्वोक्त चार और आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान मिलकर आठ दिशाएं होती हैं इन चारों को विदिक् वा उपदिश कहते हैं। जो

दो २ दिशाओं के मध्य में कोण हैं वे भी आग्नेयादि दिशाएं मानी गई हैं इन आठों में ऊर्ध्वा (ऊपर की) दिशा और ध्रुवा (नीचे की) दिशा जोड़ने से दश दिशाएं होती हैं। संस्कृत शास्त्र में इन तीनों प्रकारों से दिशा का हिसाब किया जाता है। यह बहुत प्रसिद्ध बात है। जब चार दिशाएं मानिये तब सूर्य चतुर्भुज है क्योंकि चारों दिशाओं में इस के भुज हैं। जब आठ दिशाएं मानिये तब सूर्य अष्टभुज है क्योंकि आठों दिशाओं में इस के भुज हैं जब दश दिशाएं मानिये तब दशभुज है क्योंकि दशों दिशाओं में उसके किरण हैं। अब विष्णु के आठ वा दश बाहु होने के कारण से भी आप लोग सुपरिचित हो गये होंगे। यहां पर भी व्याकरण के समास से ही अर्थ घटाया गया है। सूर्य पक्ष में "अष्टसु दिक्षु भुजा यस्य सोऽष्टभुजः" सूर्यः और विष्णु पक्ष में "अष्टौभुजा यस्य सोऽष्टभुजो विष्णुः" सूर्य पक्ष में चार आठ वा दश शब्द से चार आठ वा दश दिशाओं का ग्रहण होता है। और विष्णु पक्ष में ये तीनों शब्द बाहु के ही विशेषण होते हैं, इत्यादि अनुसन्धान कीजिये। सर्वत्र सूर्य के ही स्थानापन्न विष्णु को देखेंगे। मुझे प्रतीत होता है जिस समय विष्णु देव बनाये गये उस समय इनको अवश्य दश बाहु दिये गये धीरे २ अब विष्णु के चार भुज रह गये हैं। और जब इस अलङ्कार को लोग सर्वथा भूल गये और इनको साक्षात् ब्रह्म ही मानने लगे तब इन को कहीं हस्तादि रहित कहीं अव्यक्त कहीं सहस्रबाहु कहीं सृष्टिकर्त्ता धर्त्ता संहर्त्ता आदि सब ही कहने लगे। सूर्यदेव से एक महान् देव बन कर खूब २ पूजित होने लगे।

"विष्णु और श्वेत वर्ण"

पूर्व काल में विष्णु का श्वेत (सुफेद गौर White) वर्ण माना गया। इस में अब भी प्रमाण पाये जाते हैं जहां २ महाविष्णु का वर्णन आता है वहां पश्चात् रचित पुराणों में भी विष्णु का वर्ण श्वेत

ही कहा गया । देखिये :—

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

यह श्लोक अति प्रसिद्ध है । आज कल प्रचलित सत्यनारायण की पद्धति में दी हुई है ॥ यह पद्मपुराण का एक भाग है । श्वेतवस्त्रधारी, चन्द्रमासमान श्वेतवर्ण, चतुर्भुज और प्रसन्नवदन विष्णु को सर्वविघ्न की शान्ति के लिये ध्यावें यहां विस्पष्टतया विष्णु का वर्ण श्वेत कहा गया है । सूर्य स्थानीय विष्णु को श्वेत मानना उचित ही है । इस से भी सिद्ध होता है कि विष्णु भगवान् सूर्य के प्रतिनिधि हैं ।

"विष्णु और कृष्ण वर्ण"

परन्तु बहुधा विष्णु देव का वर्ण (रूप) श्याम वा कृष्ण (काला) कहा गया है । इस में भी सूर्य ही कारण है । इसको वर्णन करते हुए मुझ को एक महान् शोक उत्पन्न होता है । हे विद्वान् पुरुषो ! किस प्रकार लोग अर्थ भूलकर वास्तविक तात्पर्य से विमुख हो सत्य का विनाश कर रहे हैं और पश्चात् जगत् में कैसा अनर्थ उत्पन्न हुआ । वेदों में सूर्यदेव को कृष्ण कहा है । सूर्य में आकर्षण शक्ति अधिक होने के कारण सूर्य कृष्ण कहा गया है आकर्षण शक्तियुक्तवस्तु का नाम कृष्ण है । यद्यपि प्रत्येक परमाणु में भी आकर्षण शक्ति विद्यमान है तथापि पृथिवी आदि की अपेक्षा से सूर्य बहुत ही बड़ा है इस सौर जगत में उस से बड़ा अन्य कोई नहीं है । अतः उस में बहुत ही आकर्षण है । इस कारण सूर्य को वेदों में कृष्ण कहा गया है । और जिस लोक लोकान्तर को सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति पर चला रहा है या प्रकाश पहुंचा रहा है उनको भी कृष्ण कहते हैं क्योंकि उन में भी आकर्षण है जो उनका अपनी गति में सहायक हो रहा है । यदि केवल सूर्य में ही आकर्षण होता और पृथिवी आदि में नहीं होता

तो सूर्य के चारों तरफ़ भ्रमण करनेवाली पृथिवी आदि भूमि सूर्य में गिरकर भस्म होगई होती। इस हेतु पदार्थमात्र में आकर्षण होने से पृथिवी आदि भी कृष्ण कहलाने योग्य हैं। इन में वेदों के प्रमाण:—

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन् सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते॥

ऋ० १। १६४। ४७॥

(हरयः) जल को हरण करनेवाले अतएव (अपः + वसानाः) जल से मेघ को पूर्ण करनेवाले (सुपर्णाः) किरण (नियानम्) अपने नियम में पृथिवी आदि जगत् को स्थिर रखनेवाले (कृष्णम्) आकर्षणशक्तियुक्त सूर्य के उद्देश से (दिवम्) द्युलोक को (उत्पतन्ति) जाते हैं। जब वे किरण (ऋतस्य + सदनात्) सूर्य के भवन से (आववृत्रन्) लौट आते हैं (आत् + इत्) तब ही (घृतेन) जल से (पृथिवी) पृथिवी (व्युद्यते) भींगकर गीली होजाती है। यह उत्तरायण दक्षिणायण का अथवा सायं प्रातःकाल का वर्णन है। दक्षिणायन होने पर वर्षा का आरम्भ होजाता है। सायंकाल सूर्य किरण पृथिवी के एक भाग से दूसरे भाग को जाते हैं लौटने के समय प्रातःकाल ओस से पृथिवी भींग जाती है। यहां साक्षात् सूर्य को कृष्ण कहा है। पुनः—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

ऋ० १। ३५। २॥

अर्थ-रज नाम पृथिवी आदि लोक का है यास्क कहते हैं "लोका रजांस्युच्यन्ते" निरुक्त ४। १९। (आकृष्णेन + रजसा) आकर्षण युक्त पृथिवी आदि लोक के साथ (वर्त्तमानः) घूमता हुआ (सविता) सूर्य (देवः) देव (अमृतम्) बृहस्पति आदि अमर ग्रहों को

(मर्त्यम्+च) और मरण धर्मी इस मर्त्यलोक को (निवेशयन्) यथास्थान में स्थापित करता हुआ (भुवनानि) भूतजात अर्थात् प्राणीमात्र को (पश्यन्) दर्शनशक्ति देता हुआ (हिरण्ययेन+रथेन) हरण करनेवाले रथ से (आयाति) आरहा है। यहां आकर्षण युक्त पृथिवी आदि को कृष्ण कहा है। पुनः—

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम्। आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ॥ ऋ० १। ३५। ४॥

अर्थ-(चित्रभानुः) चित्रभानु (यजतः) यष्टव्य आदरणीय (सविता) सूर्य (कृष्णा+रजांसि) प्रकाश रहित पृथिवी चन्द्र मङ्गल आदि लोकों में (तविषीम्) प्रकाश को (दधानः) स्थापित करता हुआ (रथम्+आस्थात्) रथ पर स्थित है। आगे रथ के विशेषण कहते हैं (कृशनैः) कृशन अर्थात् छोटे २ अनेक नक्षत्रों से (अभीवृतम्) चारों तरफ आवृत अर्थात् घेरा हुआ। (विश्वरूपम्) नील पीत कृष्ण आदि सब रूप (रंग) से युक्त (हिरण्यशम्यम्) हरण करने वाले शंकु (कीलों) से संयुक्त और (बृहन्तम्) बहुत बड़ा है। यहां सूर्य से प्रकाश्यमान लोक को कृष्ण कहा है। इत्यादि वेद में बहुत प्रमाण हैं आप लोग स्वयं अन्वेषण कर विचारें। किस प्रकार सूर्य और अन्य पृथिवी आदि लोक कृष्ण कहलाने लगे। और आकर्षण अर्थ भूल कर किस प्रकार इस शब्द के अन्यान्य अर्थ करने लगे।

"सूर्य के कृष्ण और श्वेत दो रूप"

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे। अनन्त मन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥ यजुः ३३। ३८

अथ महीधरभाष्यम्—सूर्य्यो द्योः द्युलोकस्योपस्थे उत्संगे मित्रस्य वरुणस्य च तद्रूपं कृणुते, कुरुते येन रूपेण जनान् अभिचक्षे अभिचष्टे पश्यति। मित्ररूपेण सुकृतिनोऽनुगृह्णाति वरुण रूपेणदुष्कृतिनो निगृह्णातीत्यर्थः अस्य सूर्य्यस्य अन्यत् एकं पाजोरूप नानन्तम्। कालतोदेशतश्चापरिच्छेद्यम् रुशत् शुक्लं दीप्यमानं विज्ञानघनानन्दं ब्रह्मैव। अन्यत् कृष्णं द्वैतलक्षणंरूपं। हरितः दिशः इन्द्रियवृत्तयोवा संभरन्ति धारयन्ति। इन्द्रियग्राह्यं द्वैतरूपमेकम् एकं शुद्धं चैतन्यमद्वैतमिति द्वे रूपं सूर्य्यस्य सगुणनिर्गुणं ब्रह्म सूर्य्यएवेत्यर्थः

[सूर्यः] सूर्य [द्योः + उपस्थे] द्युलोक की गोद में [मित्रस्य + वरुणस्य] मित्र और वरुण के [तद् + रूपम्] उस रूप को [कृणुते] करता है जिस रूप से मनुष्यों को [अभिचक्षे] देखता है अर्थात् मित्ररूप से सुकृती जनों के ऊपर अनुग्रह करता है और वरुणरूप से पापी जनों को दण्ड देता है [अस्य] इस सूर्य का [अन्यत्] एक [पाजः] रूप [अनन्तम्] देश और काल से अपरिच्छेद्य [रुशत्] देदीप्यमान रोशनी देने वाला श्वेत है अर्थात् विज्ञान घनानन्द ब्रह्म ही है। और [अन्यत्] एक [कृष्णम्] कृष्ण अर्थात् द्वैत लक्षण रूप को [हरितः] दिशाएं अथवा इन्द्रियें [संभरन्ति] धारण करती हैं। अर्थात् सूर्य के दो रूप हैं एक कृष्ण अर्थात् इन्द्रियग्राह्य द्वैत रूप। और दूसरा श्वेत अर्थात् शुद्ध चैतन्य अद्वैत स्वरूप। अर्थात् सगुण निर्गुण ब्रह्म सूर्य ही है यह महीधरकृत भाष्य का अर्थ है इससे आप देखते हैं कि महीधर भी सूर्य को ही

रूपों को स्वीकार करते हैं एक (श्वेत) शुक्ल और दूसरा कृष्ण। शुक्ल को वे शुद्ध चैतन्य अद्वैत और कृष्ण को इन्द्रियग्राह्य कहते हैं वे लोग पौराणिक समय के भाष्यकर्त्ता हुए हैं इस हेतु सूर्य को भी परम पूज्यदेव मान उसी को समझाते हैं। इसका यथार्थ अर्थ यह है कि द्युलोक के मध्य में स्थित जो सूर्य सम्पूर्ण परितःस्थित जगत् में रूप से रहा है और सूर्य के अर्थ दो रूप हैं। एक (श्वेत) रोशनी देने वाला श्वेत और दूसरा आकर्षण करने वाला कृष्ण। जिस कृष्ण (आकर्षण) को (परितः) हरण करने वाली किरण (संसरन्ति) धारण किये हुए हैं। हे कोविदवरो! अब आप लोग विचार सकते हैं कि विष्णु के दो रूप क्यों माने गये। और अधिकतर कृष्ण रूप ही क्योंकर वर्णित है। सूर्यस्थानापन्न विष्णु के श्वेत और कृष्ण दोनों रूपों का मानना बहुत ही योग्य है। सूर्य में कृष्ण शब्द का अर्थ आकर्षण था विष्णु में कृष्णशब्द का अर्थ केवल काला या श्याम ही रहगया। सूर्य अपने आकर्षण से लोक-लोकान्तर को अपनी ओर खींचता है विष्णुदेव अपनी कृष्ण छवि से खींचते हैं॥ देखिये अर्थ में कितना परिवर्तन हुआ है।

राम कृष्ण आदि अवतार।

इसी कारण विष्णु के जितने अवतार माने गये हैं वे सब ही कृष्ण वा श्याम कहे गये हैं। वामन परशुराम व्यास आदि सब अवतारों का रूप श्याम ही बहुधा वर्णित है। क्या यथार्थ में श्री रामचन्द्र अयोध्यावासी दशरथपुत्र और मथुरावासी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण जी और वेदव्यासादि कृष्ण (काले) थे? कदापि नहीं। वे लोग कदापि कृष्ण (काले) नहीं थे। राजवंश और ऋषिवंश में पहले कोई कृष्ण नहीं होते थे। बड़े गौर और सुन्दर हुआ करते थे। क्या यह सम्भव है कि एक ही उदरसे एक बहुत ही काला और एक बहुत ही गौर उत्पन्न हो जैसे भरत और शत्रुघ्न। दशरथ

अत्यन्त गौर और उनके पुत्र रामचन्द्र कृष्ण [काले]। क्या यह संभव है ? । नहीं। यदि कोई रामचन्द्र कृष्णचन्द्र आदि राजपुत्र राजा हुए हैं तो अवश्य वे गौरवर्ण के होंगे। यदि केवल विष्णुवत् वे भी आलङ्कारिक हैं तब निःसन्देह उन्हें कृष्णवर्ण मान सकते हैं। वास्तव में बात यह है कि पहले तीन ही देवों की सृष्टि हुई। पश्चात् अनेक प्रतापशाली राजा महाराज भी इन के अवतार माने गये। इस हेतु ये सब ही कृष्ण वर्ण बनगये। जब ये ही ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों देव काल्पनिक और आलङ्कारिक सिद्ध होते हैं तब कब सम्भव है कि इन देवों के अवतार यथार्थ सिद्ध हों इस हेतु यदि आप लोग रामचन्द्र कृष्णचन्द्र आदि को राजा मानते हैं तो आप को स्वीकार करना पड़ेगा कि वे कृष्णवर्ण के नहीं थे जब से वे विष्णुभगवान् के अवतार समझे गये हैं तब से ही इनको कविलोग वा भक्तलोग श्याम करके वर्णन करने लगे।

विष्णु और श्याम वर्ण।

यथार्थ में विष्णु का रूप कृष्ण वा श्वेत कल्पित हुआ इसको विस्तार से वर्णन करचुके। परन्तु विष्णु को श्याम भी कहा है इसका क्या कारण है ? यद्यपि कृष्ण और श्याम वर्ण में इतना भेद नहीं और सब ग्रन्थों में कृष्ण और श्याम दोनों रूपों का साथ २ वर्णन आता है जहां ये दोनों शब्द पर्याय ही हैं। तथापि यहां विचारने की एक बात है। बहुत दिनों के अनन्तर जब विष्णु के यथार्थ रूपको लोग भूल गये इसको ब्रह्म ही समझने लगे। और आकाश से उपमा देने लगे, क्योंकि ब्रह्म की उपमा प्रायः आकाश से अधिकतर होगई है। तब इस उपमा के साथ २ लोग यह भी मानने लगे कि हमारा पूज्य देव विष्णु, रूप में भी, आकाश के समान ही है। यह अनभिज्ञ भक्तों की कल्पना थी। क्योंकि आकाश में कोई रूप नहीं परन्तु शून्याकाश श्याम प्रतीत होता है। इस हेतु विष्णु को भी श्याम ही

मानने लगे। इसका एक यह भी अभिप्राय हो सकता है कि जैसे आकाश में श्याम रूप कल्पित मात्र है। इसी प्रकार रूप रहित परमात्मा विष्णुदेव में श्याम वर्ण की कल्पनामात्र है यथार्थ में विष्णु का कोई रूप नहीं। इस में सन्देह नहीं, यदि इस हेतु विष्णु को श्याम कहने लगे तो यह कल्पना विद्वत्ता की है। विष्णु को श्याम मानने में दूसरा कारण यह भी होसकता है कि श्याम नाम सुन्दर रूप का है। काव्यादिक ग्रन्थों में उक्त है कि "**शीतकाले भवेदुष्णा ग्रीष्मे च सुखशीतला। तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा श्यामेत्यभिधीयते**" अर्थात् जो परम सुन्दरी हो, उसे काव्य में **श्यामा** कहा है। श्री सीता महारानी यद्यपि गौरवर्ण थी तथापि वाल्मीकिजी ने उनको **श्यामा** कहकर वर्णन किया है इसी प्रकार द्रौपदी भी श्यामा कही गई हैं। इसी कारण भगवती देवी को श्यामा कहते हैं क्योंकि उन सब देवियों से सुन्दरी कोई अन्य देवी नहीं। श्यामा स्त्रीलिङ्ग है। इसका पुंलिङ्ग श्याम होगा। जब भारतवासी आचरण में बहुत गिरगये अपने देव को सांसारिक बालकवत् परम सुन्दर मोहनरूप मानने लगे। इतना ही नहीं किन्तु बालरूप की ही मूर्ति बनाकर पूजने लगे। क्योंकि बालरूप जैसा सुन्दर होता है वैसा युवा या वृद्ध रूप नहीं। किसी मन्दिर में राम या कृष्ण की वृद्धरूप की मूर्ति की पूजा नहीं देखी जाती। रासलीला आदि में भी आजकल सदा एक बालक रूप की ही मूर्ति को दिखलाते हैं। रावण के वध के समय रामचन्द्र बालक नहीं थे। परन्तु उस समय में भी वही बालरूप आप देखते हैं। वल्लभाचार्य्य के सम्प्रदाय में तो युवा या वृद्ध कृष्ण है ही नहीं। एवमस्तु। इस हेतु से भी अपने देव को श्याम कहने लगे।

यहां पर एक यह विषय भी चिरस्मरणीय है क्योंकि यह ऐति-

हासिक है। श्याम शब्द का अर्थ सुन्दर कैसे हुआ। श्याम तो एक प्रकार का रंग है। अन्वेषण से इसका कारण विदित हुआ है कि प्रथम आर्य्य लोग बड़े श्वेत वा गौरवर्ण थे और यहां के जंगली लोग बड़े काले थे ये लोग भारतभूमि पर अभी तक उस रूप में विद्यमान भी हैं। आर्य्य लोग उन जंगली काले वर्णों की कन्याओं से सम्बन्ध करने लगे। इन दोनों के संयोग से जो सन्तान उत्पन्न होने लगी। वे कुछ विलक्षण रंग के हुए। न तो वे पिता के समान परम गौर ही हुए और न माता के समान परम काले ही हुए। वे एक प्रकार से श्याम हुए। यह रूप आर्य्यों को स्वभावतः अच्छा प्रतीत होने लगा इस हेतु श्यामवर्ण सुन्दर अर्थ में प्रयुक्त होने लगा पश्चात् श्याम शब्द का सुन्दर अर्थ ही होगया। आज कल भी श्याम बालक सुन्दर प्रतीत होता है। अथवा प्रकृति में भी श्याम वर्ण अन्य वर्णों की अपेक्षा कवियों की दृष्टि में अधिक सुन्दर भासित होता है। इत्यादि कारणों से श्याम शब्द का अर्थ सुन्दर हुआ। ऐसा बुद्धिमान् जन वर्णन करते हैं।

"सत्त्वगुण विरोधी कृष्ण वर्ण"

संस्कृत शास्त्रों में सत्त्वगुण का स्वरूप श्वेतवर्ण और तमोगुण का कृष्ण वर्ण वर्णित है। तमोगुणी यमराज का स्वरूप कृष्ण। इनके दूत भी कृष्ण हैं। शूद्रों का रूप इसी हेतु कृष्ण कहा है। यह मर्य्यादा संस्कृतसाहित्य में बहुत दिन से चली आती है। इस अवस्था में विष्णु भगवान् सात्त्विक होने पर भी कृष्ण वा श्याम क्योंकर कहलाये। यह प्रश्न आधुनिक पौराणिकों को अचिन्त्य संकट में डालने वाला है। पुराणों में इसका यथार्थ समाधान एक भी नहीं। यह शङ्का पौराणिकों को भी समय समय पर हुई है। और अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर भी कहा है। परन्तु वे सब कल्पित हैं। श्रीमद्भागवत में कृष्ण की स्तुति करते हुए वसुदेव जी ने कहा है:—

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः। सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये॥ भा॰ १०। ३। २०

हे भगवन्! आप अपनी माया से त्रिलोक की रक्षा के लिये सात्त्विक गुण प्रधान शुक्ल (श्वेत सुफेद) रूप को धारण करते हैं। सृष्टि के हेतु राजस गुण प्रधान रक्त रूप को धारण करते हैं। और नाश के लिये तामसगुण प्रधान कृष्ण रूप को धारण करते हैं। यहां पर वसुदेव ने भगवान के शुक्ल रक्त और कृष्ण इन तीनों रूपों का तीन कार्य के लिये वर्णन किया है। पुराणों में प्रधानतया विष्णु रक्षक, महादेव संहारकर्त्ता, और ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता माने गये हैं। इस विवरण से विष्णु को केवल श्वेत ही होना चाहिये। यदि यह कहा जाय कि विष्णु अवतार लेकर दुष्टों का संहार करता है इस हेतु अवतारावस्था में इन को कृष्णवर्णस्वरूप होना युक्तियुक्त है। ऐसा कहना उचित नहीं क्योंकि प्रधानता का ग्रहण होता है। यद्यपि विष्णु युद्ध करता है परन्तु इस का प्रधान कार्य्य रक्षा है। यों तो ब्रह्मा, महादेव के भी पालन, संहरण, सृष्टि करण का वर्णन पाया जाता है। पुनः पौराणिक व्यवस्था का अनियमप्रसंग दोष होगा इस हेतु इन तीनों देवों में एक एक गुण की प्रधानता स्वीकार करनी होगी। अतः विष्णु का सर्वदा श्वेत और महादेव का कृष्ण ही वर्ण होना उचित था। परन्तु यहां दोनों देवों में विपरीत पाते हैं इसका कारण क्या है? इस का समाधान आधुनिक पुराण से कदापि नहीं होसकता। वेदार्थ के बोध से साक्षात् हो जाता है। इसका समाधान वही है जो मैंने पूर्व में वर्णन किया है अर्थात् वेद में सूर्य्य को कृष्ण कहा है क्योंकि अपने परितःस्थित ग्रहों को वह सूर्य्य अपनी ओर आकर्षण (खींच) कर रहा है। इस हेतु सूर्य्य का नाम ही कृष्ण है इसी हेतु सूर्य्यस्थानीय विष्णु देव और विष्णु के अवतार कृष्ण वर्ण

मानी गयी है। इस में विद्वानो! अणुमात्र सन्देह नहीं। इस से भी सिद्ध हुआ कि विष्णुदेव सूर्य्य के प्रतिनिधि हैं।

विष्णु और लक्ष्मी श्री।

विष्णु की शक्ति लक्ष्मी या श्री देवी मानी जाती है। शोभा और सम्पत्ति का नाम लक्ष्मी वा श्री है संस्कृत में यह प्रसिद्ध है। निःसन्देह बड़ी बुद्धिमत्ता से विष्णु भगवान् को श्री देवी दी गई है। इस पृथिवी पर शोभा अथवा सम्पत्ति कहां से आती है। विचार कर यदि देखें तो ज्ञात हो जायगा कि सूर्य्य ही इस जगत को शोभा पहुंचाता है और यथार्थ में सूर्य्य के कारण से ही जगत में शोभा है। हम इसका वर्णन क्या करेंगे। प्रकृति देवी स्वयं इस भाव को विस्तार रूप से प्रकाशित कर रही है। हे विद्वज्जनो! आप लोग इस को विचारें। आहा! जब संध्या होने लगती है उस समय समस्त प्राणियों में कैसा ही महान् परिवर्तन धीरे २ होती जाती है। जो विहङ्गगण आकाशको भूषित करते थे जो एक घण्टे में कम से कम एक कोश अवश्य उड़ सकते हैं वे अब बिलकुल अन्ध हो गये एकपद भी चलना इनके लिये कठिन हो गया। वे परम विवश होगये। व्याधाओंके आखेट बन गये। अब अपनी मधुर ध्वनि से प्रकृति देवी के यश को नहीं गाते। भयभीत हो कर बड़े संकट से रात काटते हैं। जो छोटे छोटे पतङ्ग और गृहमक्खिकाएं बड़े वेग से उड़ती थीं और आकाश में नाना क्रीड़ा कौतुक करती थीं। वे अब किसी शाखा में वा गृहरज्जु में वा किसी स्थान में लटक कर रात बिताती हैं उन की तीक्ष्णगति अब उन को कुछ भी लाभ नहीं पहुंचाती है। हम मनुष्य भी प्रकृति देवी की परम शोभा के देखने से वंचित हो जाते। चारों दिशाओं से भय उपस्थित होने लगता है। चोर न आवे। व्याघ्रादि हिंस्रजन्तु मेरे बच्चे को न ले जांय। हिम की वृष्टि हो कर मेरी कृषि को नष्ट न करदे। हिम से रात में कोई आपत्ति न आजाय। आज कितना

जाड़ा लगेगा। मेरे प्रिय सन्तान सूर्य्य के विना जाड़े से मर न जाय। आज रात्रि क्या आपत्ति आने वाली है विदित नहीं। ईश्वर! रक्षा करो। सूर्य्य को शीघ्र लाओ। इस प्रकार आप देखते हैं कि रात्रि में कैसी दुर्घटना प्राणियों के ऊपर आती है। मनुष्य जाति बुद्धिमान् है। नाना उपायों से अपनी रक्षा कर लेती है। परन्तु अन्य प्राणी नहीं कर सकते उन के लिये रात्रि एक एक प्रलय है। जिनकी आंखें बहुत ही सूक्ष्म हैं वे तो बहुत दुःख पाते हैं। पक्षियों में काक-पक्षी बहुत चतुर और बुद्धिमान् माना गया है। चतुर होने पर भी रात्रि में उसे बड़ा दुःख भोगना पड़ता है। संस्कृत में एक अतिशय रोचक कथा "काकोलूकीय" नाम से प्रसिद्ध है। रात्रि में काक असमर्थ हो जाता है। उलूक पक्षी इस के ऊपर आक्रमण कर ध्वंस कर देता है वह भी दिन में इसका बदला लेता है। भाव यह है कि शक्तिसम्पन्न भी पक्षीगण रात में सर्वथा असमर्थ हो जाता है। उलूक के समान प्राणी जगत में बहुत विरल हैं। इस हेतु रात्रि की प्रशंसा हम से नहीं हो सकती। रात्रि की भी प्रशंसा हमारी पृथिवी पर सूर्य्य से ही है। चन्द्र के उदय से रात्रि की शोभा बढ़ती है। परन्तु चन्द्र के उदय का कारण कौन है? सूर्य्य ही है। चन्द्र में स्वयं प्रकाश नहीं। सूर्य्य के ही प्रकाश से यह प्रकाशित होता है। यह ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध है। इस हेतु चन्द्र से जो रात्रि की शोभा है वह यथार्थ में सूर्य्य से है। अतः सूर्य्य ही शोभा का कारण है।

अब यह विचार कीजिये रूप के ऊपर ही मुख्यतया शोभा निर्भर है। हम लोग मेघ की श्यामशोभा का वर्णन रूप से ही करते हैं। मयूर की शोभा उस के रूप से ही है। परन्तु रूप का ग्रहण किस से होता है। निःसन्देह नयन से होता है। परन्तु वह नयन कैसे होता है। निःसन्देह सूर्य्य के कारण से ही होता है। नयन के लिये ही सूर्य्य की सृष्टि है। "चक्षोः सूर्य्योऽजायत" चक्षु के लिये

सूर्य उत्पन्न हुआ है। अतः सिद्ध हुआ कि जिस नयन से शोभा का बोध करते हैं उसका भी मुख्य कारण सूर्य भगवान् ही है। यथार्थ में पूछिये तो जगत में जितने शुक्ल पीत नील आदि रूप हैं इन सब का कारण सूर्य ही है। इस हेतु सूर्य को वेद "विश्वरूप" कहता है। अर्थात् सब रूपों की उत्पत्ति सूर्य देव से है "विश्वानि सर्वाणि रूपाणि यस्मिन् अथवा विश्वं सर्वं रूपयतीति विश्वरूप." जिस में सब रूप हों अथवा जो सब को रूपित करे उसे विश्वरूप कहते हैं। उपनिषद में कहा गया है :—

असौ वा आदित्यः पिंगल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः। छा० उ०। ८।६।१।

निश्चय यह सूर्य ही पिङ्गल है। यही शुक्ल है। यही नील है। यही पीत है। यही लोहित है। यद्यपि यह संसार पारस्परिक है। अर्थात् सूर्य विना वायु नहीं। वायु विना सूर्य नहीं। यदि वायु न हो तो सूर्य क्या कर सकता। यदि पृथिवी हो न हो तो प्राणी रह ही कहां सकते। यदि जल ही न हो तो अन्न ही नहीं हो सकते। फिर प्राणी कैसे जीवें। इस प्रकार देखते हैं तो सब मिल कर कार्य कर रहे हैं। तथापि एक २ पदार्थ की एक २ मुख्यता देखते हैं। सूर्य की मुख्यता रूप प्रदान में है॥

सूर्य और सम्पत्ति।

यद्यपि सूर्य के वर्णन में इस के प्रत्येक गुण का वर्णन विस्तार से करेंगे परन्तु प्रसङ्ग से यहां पर भी कुछ वर्णन करना पड़ता है। सूर्य केवल रूपका ही प्रदाता नहीं है किन्तु सम्पत्ति (धन) का भी प्रदाता है। प्रथम तो सूर्य अनेक रोगों का सर्वदा नाश किया करता है जिससे जगत में बहुत न्यून व्याधि उत्पन्न होने पाती है। और जिस से क्या मनुष्य क्या पशु क्या विविध प्रकार की ओषधियां सब

ही सुरक्षित रहते हैं। यह महासंपत्ति का कारण होता है। दूसरा यह भी देखते हैं कि जहां सूर्य की धूप गेहूं जौ धान आदि अन्नों पर ठीक २ नहीं पड़ती है वृक्षादि की छाया जहां अवरोधक है वहां अन्न नहीं होता। और प्रधानतया रब्बी की फसल सूर्य्य कि ही आतप से होती है। इसी हेतु इस का नाम ही 'रब्बी' है। देश में रब्बी प्रधान सम्पत्ति है। इस प्रकार जहां तक विचार करते जांयगे वहां तक यही बोध होगा कि इसी सूर्य्य की शक्ति लक्ष्मी और श्री देवी है। अब यहां साक्षात् वेद का प्रमाण देते हैं जहां सूर्य की शक्ति लक्ष्मी और श्री मानी गई है। यथा:—

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या वहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूप मश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणा मुं म इषाण सर्व लोकं म इषाण ॥ यजुः ३१। २२॥

अथ महीधरभाष्यम्—ऋषिरादित्यं स्तुत्वा प्रार्थयते। हे आदित्य! श्रीः लक्ष्मीश्च ते तव पत्न्यौ जायास्थानीये त्वद्वश्येइत्यर्थः। यया सर्वजनाश्रयणीयो भवति सा श्रीः श्रीयतेऽनया श्रीः सम्पदित्यर्थः। यया लक्ष्यते दृश्यते जनैः सा लक्ष्मीः सौन्दर्य्य मित्यर्थः। अहोरात्रे तव पार्श्वे पार्श्वस्थानीये नक्षत्राणि गगनगास्ताराः तव रूपम्। तवैव तेजसाभासमानत्वात्। तेजसां गोलकः सूर्यो नक्षत्राण्यम्बुगोलका इति ज्योतिः शास्त्रोक्तेः। अश्विनौ द्यावापृथिव्यौ तव व्यात्तम्

विकाशितमुखस्थानीये । अश्नुवाते व्याप्नुत स्तौ अश्विनौ । द्यावापृथिव्यौ इमे ही दं सर्व मश्नुवातामितिश्रुतेः । यईदृश स्तं त्वां याचे इष्णन् कर्मफलमिच्छन् सन् । इषाण इच्छ इष इच्छायाम् । विकरणव्यत्ययः । यद्वा इष आभीक्ष्ण्ये क्र्यादिः अन्नेच्छार्थः । किमेषणीयम् । तत्राह अमुं परलोकं मे मम इषाण मम परलोकः समीचीनोऽस्त्वितीच्छा अमोघेच्छत्वादिष्टं भवतीत्यर्थः सर्वं मे मम इषाण सर्वलोकात्मकोऽहं भवेय मितीच्छेत्यर्थः मुक्तोभवेय मित्यर्थः । सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति सामश्रुतेः ॥ २२ ॥

इस मन्त्र का अर्थ महीधर भाष्यके अनुसार करते हैं, (इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं महीधर भाष्य को सत्य समझता हूं किन्तु यहां यह दिखलाना है कि जिस समय सूर्य्य एक प्रधान देवता माना गयो था उस समय में सूर्य्य को लोग क्या २ समझते थे और सूर्य्यस्थानीय जब एक विष्णु देव बनाया गया तो किस प्रकार सूर्य के समस्त गुण इस में आरोपित हुए। अर्थात् सूर्य्य की स्तुति करके प्रर्थना करते हैं हे आदित्य ! [श्रीः] श्री [च] और [लक्ष्मीः] ये दोनों [ते] तुम्हारी [पत्न्यौ] पत्नी:जायास्थानीय हैं अर्थात् आप की वश्य हैं। आगे श्री और लक्ष्मी शब्द की व्युत्पत्ति करके ;अर्थ करते हैं कि श्रीनाम सम्पत्ति का है और लक्ष्मीनाम सौन्दर्य का है । (अहोरात्रे) दिनरात (पार्श्वे) पार्श्वस्थानीय हैं । (नक्षत्राणि) गगनस्थित ताराएं (रूपम्) आपके रूप हैं क्योंकि हे आदित्य !

आपको ही तेज से ये नक्षत्र भासित होते हैं। ज्योतिषशास्त्र में कहा-गया है। तेज का गोलक सूर्य है और जलगोलकवत् ये नक्षत्र हैं। (अश्विनौ) द्युलोक और पृथिवी (व्यात्तम्) मुखस्थानीय हैं। काशी संप्रमाण सिद्ध किया है कि द्युलोक और पृथिवी का नाम अश्वी है॥ जो आप ऐसे हैं। उनसे मैं प्रार्थना करता हूं। (इष्णन्) कर्म फल की इच्छाकरते हुए आप (मे) मेरे (अमुम्) परलोक को (इषाण) इच्छा करें। मुझे अच्छा परलोक होवे (मे) मेरे (सर्वलो-कम्) सर्वलोक को आप (इषाण) इच्छा करें। अर्थात् मैं सर्वलोकात्मक होऊं अर्थात् मुक्त होऊं।

इस मन्त्र में साक्षात् सूर्य की पत्नी लक्ष्मी और श्री मानी गई हैं। इसी हेतु सूर्यस्थानीय विष्णु भगवान् की भी पत्नी लक्ष्मी और श्री ही बनाई गई। हे विद्वानो! इस पर आप लोग पूर्णतया ध्यान देवें। किस विलक्षणता से सम्पूर्ण सङ्गति लगाई गई है। ऐसे स्थल में वैदिक भाषा में पत्नी नाम शक्तिमत्व का है। पालयित्री शक्ति का नाम पत्नी है। सूर्यादि-पदार्थों की अपृथक्भूत कोई स्त्री नहीं है। परन्तु इन में एक महती शक्ति है जिससे जगत् का पालन और पोषण कर रहे हैं। उसी शक्ति का नाम पत्नी है। लक्ष्मी की उत्पत्ति समुद्र से मानी गई है। मैंने अनेक स्थानों में आप लोगों से कहा है कि 'समुद्र' शब्द आकाशवाची है। आकाश से लक्ष्मी और श्री की उत्पत्ति है यह बहुत ही ठीक है क्योंकि समुद्र जो आकाश उस में रहने वाला जो सूर्य वह भी 'समुद्र' कहलाता है। संस्कृत का ऐसा नियम है। जैसे मंच और मंचस्थ पुरुष दोनों मंच शब्द से व्यवहृत होते हैं। इस हेतु समुद्र जो सूर्य उससे लक्ष्मी की उत्पत्ति है यह भाव है। परन्तु समय के परिवर्तन से इस भाव को लोग भूलगये और समुद्र शब्द भी एक ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगा इस कारण यह अज्ञानता जगत में फैल-गई कि जलराशि के मथन से लक्ष्मी देवी का जन्म हुआ। प्रथम तो लक्ष्मी देवी ही सूर्य से भिन्न कोई वस्तु नहीं पुनः इसका जन्मादिक

कैसे सत्य होसकता है। हां, लक्ष्मीनाम शोभा सौन्दर्य सम्पत्ति ऐश्वर्य आदि का है। इस का कारण सूर्य देव है इस में संशय नहीं इस हेतु लक्ष्मी को सूर्य शक्ति वा पत्नी कहते हैं। पश्चात् जब सूर्य को विष्णु रूप से एक देहधारी मनुष्य समान बनाया तब आवश्यकता हुई कि इन को कोई मनुष्यवत् पत्नी होनी चाहिये सो जो पत्नी वैदिकी थी उसी को यहां भी लेंगए। हे विद्वानो! इस विषय को आप लोग विचारें।

"विष्णु और कमल"

यह पुराणों में विदित है कि बिल्वपत्र बेलनामक वृक्षके पत्ते से जैसे श्रीमहादेवजी वैसे ही कमल के फूल से श्रीविष्णुजी अति प्रसन्न होते हैं। क्यों? क्या कमल अति सुन्दर होता है इस हेतु? नहीं। इस से भी अन्यान्य कुसुम परम मनोहर जगत में विद्यमान हैं। क्या कमल जल में रहने से जलशायी विष्णु का प्रीतिभाजन हुआ? नहीं। कुमुदिनी आदि अनेक सुमन जल में निवास करते हैं। इस के भी मुख्य कारण सूर्य देव ही हैं। अलङ्कार रूप से कवियों ने वर्णन किया है कि कमलिनीरूपा स्त्री का नायक, मानो, सूर्य है। क्योंकि सूर्योदय होने से कमलिनी प्रस्फुटित होती है और अस्त होने पर संकुचित होजाती है। कविलोग कमल शब्द को भी कमलिनी बना लेते हैं और इसको स्त्रीवत् मानते हैं। इसी हेतु सूर्य स्थानीय विष्णुदेव भी कमलिनी के नायक बनाए गए। इस कारण कमल के फूल से विष्णु की प्रसन्नता का विवरण पुराणों में पाया जाता है। इस में सन्देह नहीं स्वभावतः कमल मनोहर होता है। इसी हेतु संस्कृत काव्य में कमल के साथ बहुत उपमा दीगई है॥ पौराणिक अपने भगवान् को भी पुण्डरीकाक्ष, कमलनयन, आदि विशेषण देकर पुकारते हैं। पुण्डरीक नामभी कमल का ही है॥ पुण्डरीक (कमल) के समान (अक्षि) नेत्रवाले को पुण्डरीकाक्ष कहते हैं। इस शब्द का माहात्म्य पुराणों में बहुत कुछ गाया गया है।

"अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा। यःस्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरःशुचिः"

यथार्थ में इस शब्दका अर्थ इसप्रकार होना चाहिये। "पुण्डरीकं हृदयकमलं अश्नुगोति व्याप्नोती पुण्डरीकाक्षः अशू व्याप्तौ" पुण्डरीक जो हृदय कमल उस में जो व्याप्त हो वह पुण्डरीकाक्ष। क्योंकि हृदय रूप कमल में ब्रह्म के ध्यान का विधान उपनिषदादि ग्रन्थों में आया है। भारतवर्षीय सर्व सम्प्रदायों में कमल की प्रशंसा आई है। बौद्ध धर्म में इसकी बड़ी विशेषता गाई गई है। कमल के फूल में शतदल १०० तो होते ही हैं परन्तु एक २ फूल में कहीं २ सहस्र १००० दल भी देखे गये हैं इसी हेतु कमल का नामही "सहस्रपत्र" है। "सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम्" सूर्य को भी 'सहस्रांशु' सहस्रकिरण कहते हैं। इसी हेतु, मानो, प्रकृति देवी ने इस सहस्रपत्र और सहस्रांशु में सम्बन्ध जोड़ा है। विष्णु-रचयिता महाकवि ने भी इस प्राकृत सम्बन्ध को रूपान्तर में भी स्थिर रक्खा। एवमस्तु। प्रत्येक विषय इस को सूचित करता है कि विष्णु सूर्य स्थानीय देव हैं।

विष्णु और समुद्र मथन।

समुद्र मथन की कथा अति प्रसिद्ध है। महाभारत रामायण और श्री मद्भागवत आदि सकल पुराणों में इस की चर्चा आई है। इस कथा में विष्णु की ही प्रधानता है। यदि विष्णु मोहिनी रूप धारण नहीं करता तो देवों का प्रयत्न विफल हो जाता। इस हेतु इसका भाव वर्णन करना आवश्यक है।

ततो नारायणो मायां मोहिनीं समुपाश्रितः।
स्त्रीरूपमद्भुतं कृत्वा दानवान भिसंश्रितः ॥ ४६ ॥

ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतसः। स्त्रियै दानव दैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ॥ ४७॥ महा०॥१।१८॥

उच्चैःश्रवाः हयश्रेष्ठो मणिरत्नं च कौस्तुभम्। उदतिष्ठन्नरश्रेष्ठ तथैवाऽमृतमुत्तमम् ॥ ४६ ॥ अथ तस्य कृते राम महानासीत् कुलक्षयः। अदितेस्तु ततः पुत्रा दितिपुत्रानयोधयन् ॥४०॥ एकतामगमन् सर्वे असुरा राक्षसैः सह। युद्धमासीन्महाघोरं वीर त्रैलोक्यमोहनम् ॥ ४१ ॥ यदा क्षयं गतं सर्वं तदा विष्णुर्महाबलः। अमृतं सोऽहरत्तूर्णं माया मास्थाय मोहिनीम् ॥४२॥ ये गताभि मुखं विष्णुमक्षरं पुरुषोत्तमम्। संपृष्टांस्ते तदायुद्धे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ४३ ॥ इत्यादि। वाल्मीकि रा० बालका० सर्ग ॥ ४५ ॥

इस सब का भाव। तब नारायण देव मोहिनीमाया के आश्रित हो अद्भुत एक स्त्री का रूप बना दानवों के निकट आ पहुंचे। तब उन दानवगणों ने स्त्री के रूप से मोहित हो उस स्त्री को, अमृत दे दिया। इत्यादिकथा महाभारत आदि पर्व में देखिये। उस समुद्र से अश्वश्रेष्ठ उच्चैःश्रवा नाम का अश्व और मणिरत्न कौस्तुभ उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् उत्तम अमृत उत्पन्न हुआ। हे राम! जिसके लिये महान् कुलक्षय हुआ। अदिति के पुत्र अर्थात् देवगण दिति के पुत्र दैत्यों से युद्ध करने लगे। असुर और राक्षस सब मिल एकता कर देवों से घोर संग्राम करने लगे। जब सब का क्षय हुआ तब विष्णु ने घोर मोहिनी माया को धारण कर अमृत हरण कर लिया। विष्णु

के अभिमुख जो जो दैत्य दानव राक्षस आये उन सबों को विष्णु ने चूर्ण २ कर दिया। इत्यादि वाल्मीकि रामायण में अमृत मथन की कथा देखिये। श्रीमद्भागवत अष्टमस्कन्ध के षष्ठाध्याय से इस कथा का आरम्भ होता है संक्षेप से यह कथा है। जब देव गण असुरों से परास्त हुए और असुरों की परम वृद्धि होने लगी तब वे सब देव ब्रह्मा को साथ लेकर विष्णु के निकट गये। विष्णु ने उन सबों से कहा कि आप लोग असुरों से मेल कर अमृत मथन के लिये यत्न कीजिये। अन्त में असुर केवल क्लेश भागी हो होवेंगे परन्तु आप लोग फल प्राप्त करेंगे। विष भी उत्पन्न होगा उस से आप लोग मत डरना। मन्दराचल को मन्थन दण्ड और वासुकि सर्प को मन्थन रज्जु बना समुद्र का शीघ्र मन्थन कीजिये। इसी से आप लोगों का कार्य्य है। देव और असुर दोनों ने मिल कर वैसा ही किया। प्रथम हलाहल विष उत्पन्न हुआ जिसको महादेव ने ग्रहण किया। तब हविर्धानी उत्पन्न हुई। जिसको ऋषियों ने लिया। तब श्वेतवर्ण उच्चैःश्रवा अश्व (घोड़ा) और चतुर्दन्त ऐरावत हाथी उत्पन्न हुए। जो इन्द्र की सेवा में रहे। तब कौस्तुभ मणि। जिसको विष्णु ने ग्रहण किया। तब पारिजात वृक्ष जो स्वर्ग का भूषण है। पश्चात् अप्सराएं उत्पन्न हुईं। तत्पश्चात् साक्षात् लक्ष्मी का आविर्भाव हुआ। जो विष्णु की प्रिया हुईं। तब वारुणी उत्पन्न हुईं जिस को असुरों ने ग्रहण किया। इन सबों के पश्चात् जिस अमृत के लिये उतना उद्योग और परिश्रम किया गया। उसको कलश में लेकर वैद्य धन्वन्तरि आविर्भूत हुए। अमृत निकलते ही विष्णु तो अन्तर्हित होगये और देव दानवों में तुमुल संग्राम होने लगा। देवों को मार पीट दूर कर असुरगण अमृत ले भाग चले। विष्णु यह लीला देख मोहिनी स्त्री रूप बन असुरों के मार्ग में जा खड़े हुए। असुर गणों ने उस मोहिनी रूप से मोहित हो अमृत भाजन (पात्र) उस स्त्री को दे दिया। पश्चात् असुरों से छल कर विष्णु ने देवों को अमृत पान करवाया। यह पौराणिक कथा अति

प्रसिद्ध है। महाभारत रामायण और पुराण आदि की कथा में बहुत भेद है। यथा:—

ततः शतसहस्रांशु र्मथ्यमानात्तु सागरात्। प्रसन्नात्मा समुत्पन्नः सोमः शीतांशु रुज्ज्वलः। श्री रनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डरवासिनी। सुरा देवी समुत्पन्ना तुरगः पाण्डरस्तथा। कौस्तुभस्तु मणिर्दिव्य उत्पन्नो घृतसंभवः। मरीचिविकचः श्रीमान् नारायणउरोगतः। पारिजातस्तु तत्रैव सुरभिस्तु महामुने। अजायत तदा ब्रह्मन् सर्वकामफलप्रदे। श्रीः सुरा चैव सोमश्च तुरगश्च मनोजवः। यतो देवास्ततो जग्मु रादित्यपथ माश्रिताः। धन्वन्तरिस्ततोदेवो वपुष्मानुदतिष्ठत। श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति। एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः। अमृतार्थे महान्नादो ममेदमिति जल्पताम्। श्व तैर्दन्तैश्चतुर्भिस्तु महाकायस्ततः परम्। ऐरावणो महानागोऽभवद्वज्रभृताधृतः। अतिनिर्मथनादेव कालकूटस्तथापरः। जगदावृत्य सहसा सधूमोऽग्निरिव ज्वलन्। त्रैलोक्यमोहितंयस्य गन्ध माघ्राय तद्विषम्। प्राग्रसल्लोकरक्षार्थं ब्रह्मणोवचनाच्छिवः। दधार भगवान् कण्ठे मन्त्रमूर्तिर्महेश्वरः। इत्यादि

महाभारत आदिपर्व अध्याय १८।

अर्थ—मथ्यमान समुद्र से प्रथम शतसहस्रांशु प्रसन्नात्मा उज्ज्वल और शीतांशु सोम उत्पन्न हुआ। पश्चात् उस जल से श्वेतवस्त्रभूषिता लक्ष्मी उत्पन्न हुई। तब सुरादेवी, श्वेत घोड़ा, और कौस्तुभमणि, उत्पन्न हुए। कौस्तुभ मणि नारायण के उरस्थित हुआ। हे महामुने पारिजात और सुरभि गौ समस्त फल देने वाली उसी से उत्पन्न हुई। श्री, सुरा, सोम और वेगवान् तुरंग ये सब देव के निकट गये। और आदित्य के पथ में विराजमान हुए। तब शरीरधारी धन्वन्तरि देव हाथ में श्वेत कमण्डलु लिए हुए उत्पन्न हुए जिस कमण्डलु में अमृत था। इस अत्यद्भुत लीला को देख दानवों में अमृत के लिये महान् नाद उपस्थित हुआ। तब चार दन्त वाला ऐरावण नाम का हाथी उत्पन्न हुआ तत्पश्चात् अति निर्मथन से कालकूट उत्पन्न हुआ। जिसको ब्रह्मा के वचन से महादेव ने अपने कण्ठ में धारण कर लिया। आगे यह कथा है कि अमृत और लक्ष्मी के लिये देव दानवों में बड़ी शत्रुता हुई। तब विष्णु ने मोहिनी माया से दानवों को छल देवों को अमृत पिला कृतार्थ किया।

उत्पपाताग्निसंकाशं हालाहल महाविषम् । तेन दग्धं जगत् सर्व सदेवासुर मानुषम् ।............अथ वर्ष सहस्रेण आयुर्वेदमयःपुमान् । उदतिष्ठत्सु धर्म्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः । अथ धन्वन्तरिर्नाम अप्सराश्च सुवर्चसः ।........वरुणस्य ततःकन्या वारुणी रघुनन्दन । उत्पपात महाभागा मार्गमाणा परिग्रहम् ।

दितेःपुत्रा न तां राम जगृहुर्वरुणात्मजाम्। अदितेस्तुसुतांवीर जगृहुस्तामनिन्दिताम्। असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः। हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन् वारुणीग्रहणात्सुराः रामायण बाल० ४५

वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार कथा है। समुद्र के मथन से प्रथम अग्नि के समान हालाहल विष उत्पन्न हुआ जिससे सम्पूर्ण जगत् दग्ध होने लगा। तब सब देव महादेव के निकट जा इस आपत्ति से रक्षा के लिये प्रार्थना करने लगे इसी समय शंखचक्रधर हरि भी आगये। इन्होंने महादेव से कहा कि यह विष अग्र पूजा के समान उपस्थित हुआ है। आप इसको लेवें। महादेव जी ने वैसा ही किया। तब बहुत वर्षों के पश्चात् आयुर्वेदमय धर्मात्मा पुरुष धन्वन्तरि दण्ड और कमण्डलु के साथ जल से ऊपर हुए। और अप्सराएं भी ऊपर हुईं। आगे अप्सरा शब्द की व्युत्पत्ति करते हैं। जल में मथन से जल की रस से ये उपस्थित हुईं इस हेतु ये "अप्सरस्" कहाती हैं। तब वरुण की कन्या वारुणी (सुरा, मद्य) उपस्थित हुई। और "मुझ को कौन ग्रहण करता है" यह प्रत्याशा करने लगी। हे राम! दिति के पुत्र दानव गणों ने वारुणी का ग्रहण नहीं किया। परन्तु हे वीर! अदिति के पुत्र देवगणों ने अनिन्दित वारुणी का ग्रहण किया। इसी हेतु दिति पुत्र दानवगण "असुर" सुरा रहित कहलाते हैं। और वारुणी सुरा के ग्रहण से देवगण 'सुर' कहलाते हैं। वारुणी के ग्रहण से देवगण अति हृष्ट और मुदित हुए। इस के अनन्तर यह कथा है। "उच्चैःश्रवाहयश्रेष्ठो मणिरत्नञ्चकौस्तुभम्" घोड़ों में श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा, मणिरत्न कौस्तुभ और उत्तम अमृत उत्पन्न हुआ। हे राम! अमृत के लिये देव दानव में तुमुल संग्राम हुआ। मोहिनी माया को धारण कर तब विष्णु ने दानवों से अमृत ले लिया।

विष्णु ने सब असुरों का नाश कर देवों को अमृत पिलाया । इन्द्र इस प्रकार राज्य पाकर परम मुदित हुए । भागवत का संक्षिप्त कथासार ऊपर दे चुके हैं । इन तीनों ग्रन्थों से इस कथा के देने से हमारा यह अभिप्राय है आप लोग विचार करें कि अमृत मथन का जो प्राचीन भाव था वह भाव इन ग्रन्थकारों के समय में विस्मृत होगया था । इसी हेतु कथा में इतना भेद है । रामायण में लक्ष्मी की उत्पत्ति का वर्णन नहीं है । रामायण कहता है कि वारुणी का असुरों ने ग्रहण नहीं किया । किन्तु देवों ने इस का ग्रहण किया । इस के विरुद्ध श्रीमद्भागवत कहता है कि "अथासीद्वारुणी देवी कन्या कमललोचना। असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते" ॥ तब कमललोचना वारुणी देवी उपस्थित हुई । जिस का ग्रहण भगवान् की अनुमति से असुरों ने किया । इस प्रकार देखते हैं कि कथा में विरोध भी है । यदि यह कथा सत्य होती तो सर्वत्र समान ही होती । परन्तु समान नहीं है । इस से अनुमान होता है कि यह मिथ्या है । और जहां से प्रारम्भ में यह कथा चली । उस का भाव भी इन ग्रन्थकारों के समय में विलुप्त होगया था इसी हेतु अपने अपने अनुमान के अनुसार पश्चात् इस कथा को बनाया । वाल्मीकि रामायण और महाभारत के देखने से यह झट से प्रतीत हो जाता है कि ये सब कथाएं इन में पीछे से मिलाई गई हैं । इस हेतु ये सब क्षेपक हैं । आज इस कथा की समालोचना करते हुए हम को साथ ही शोक होता है कि आख्यायिका-रचयिता की अविकल सम्पूर्ण रचना हम लोगों तक नहीं पहुंच सकी । यदि पहुंचती तो इन सबों का भाव आज विस्पष्ट हो जाता । पौराणिक तो इस कथा के तात्पर्य से सर्वथा विमुख हो रहे । पर-अस्तु । जितना अंश सामान्य रीति से सर्वत्र पाया जाता है । इस के भाव पर हम लोग अब ध्यान देवें । समुद्र का मथन, अमृत का निकलना अमृत लेकर असुरों का भागना विष्णु को मोहिनी रूप होना तब देवों को कृतकृत्यता होनी इत्यादि कथा सब में तुल्य ही है ॥

इस कथा का भाव क्या यथार्थ में देवों ने समुद्र का मथन दधिवत् किया। क्या यथार्थ में उस से अमृत निकली जिस को देवगण पान कर अमर हुए ? हे विद्वानो ! जिस को आज कल लोग समुद्र समझते हैं उसका मथन न कभी हुआ न होगा। कौन अज्ञानी पुरुष इस पानी का अमृत की आशा से मथन करेगा। और जिस को लोग अमृत मानते हैं वह कहीं नहीं है। आज वे देव कहां हैं जो अमर हो गये ? आप पुराणों में सुनते हैं कि ये देव दानव सदा पृथिवी के ऊपर ही लड़ा करते थे परन्तु आज कल के समय में वे एक भी नहीं दिखते। क्या कारण है ? यथार्थ में इसका यह भाव हो नहीं है। फिर यह देव कहां से आये। पुराण के समय में महान् अन्धकार इस जगत् में फैल गया। जिस का नाश अभी तक नहीं हुआ। सुनिये इस का क्या भाव है। हमने आप लोगों से अनेक स्थल में कहा है कि समुद्र नाम आकाश का है। इस में अब प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं पीछे की बात स्मरण कीजिये। इस प्रकरण में "असुर" नाम मेघ का है आपलोग अच्छे प्रकार स्मरण रखिये। इस में निघण्टु का प्रमाण

अद्रिः। ग्रावा। गोत्रः। बलः। अश्नः। पुरुभोजः। वलिशानः। अश्मा। पर्वतः। गिरिः। व्रजः। चरुः। वराहः। शम्बरः। रौहिणः। रैवतः। फलिगः। उपरः। उपलः। चमसः। अहिः। अभ्रम्। वलाहकः। मेघः। दृतिः। ओदनः। वृषन्धिः। वृत्रः। असुरः। कोशः। इति त्रिंशन्मेघनामानि। निघण्टु १। १०।

इस में साक्षात् असुर शब्द का पाठ आया हुआ है॥ और "देव" नाम सूर्य के किरणों का भी है यह आप लोग अच्छे प्रकार जानते

हो हैं। परन्तु यह भी आप लोग स्मरण रक्खें कि वैदिक भाषा में पदार्थमात्र को 'देव' कहते हैं। अब थोड़ी देर तक अलङ्काररूप से समझें कि सूर्य के किरण और मेघ देहधारी देवगण हैं। सूर्य के किरण, "देव" और मेघ 'असुर' हैं॥ (मेघ का नाम भी असुर है) ये दोनों मिलकर समुद्र अर्थात् आकाश का मथन करते हैं। अर्थात् जैसे दूध जमकर जब दही होजाता है। तब उसका मथन करते हैं अथवा साक्षात् दूधका ही मथन कर घृत निकालते हैं। वैसे ही सूर्य किरण द्वारा पृथिवी परसे जब थोड़ा २ पानी आकाश में एकत्रित होने लगता है। और क्रमशः मेघ रूप में आकर आकाश में इधर उधर दौड़ने लगता है तो उस समय मानो सूर्य-किरण और असुरगण (मेघ देवता) समुद्र (आकाश) को मथन कर रहे हैं। इस प्रकार मथन करते हुए 'अमृत' निकलता है। हे विद्वानो! अमृत नाम 'जल' का भी है। वेदों में इस के अनेक उदाहरण आप हैं पीछे वर्णन भी किया गया है। अमरकोश भी कहता है यथाः—"पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्" पय कीलाल, अमृत, जीवन, भुवन, वन आदि जलके नाम हैं। अब आप ध्यान दीजिये। पृथिवी पर से वा पृथिवीस्थ जलाशयों से वा पृथिवीस्थ समुद्रों से पानी ऊपर उठता है तो वह प्रथम वाष्प के रूप में आता है पुनः मेघाकार होता है। तब द्रवीभूत होकर बरसता है। यदि संयोग न हो तो वही उत्थित पानी कहीं शीत होकर पत्तोंपर जमजाता है। कहीं कुहक (कुहेशा) के रूप में होकर धुन्धलासा हो लुप्त होजाता है। कहीं तीक्ष्ण ताप से छिन्न भिन्न होकर वाष्प रूप में ही रह जाता है। कहीं बनौले ही पत्थर के रूप में पृथिवी पर गिरता है इत्यादि पानी की दशा होती रहती है। जब आकाश मथन द्वारा वह पानी अमृतरूप में आता है अर्थात् ठीक बरसने वाला मेघ रूप में आता है। तब उस समय में एक विचित्र शोभा देख पड़ती है। मेघ भागता है। पूर्व पश्चिम या उत्तरादि दिशा की ओर मेघ दौड़ता हुआ

होसकता है। यही असुरों का अमृत लेकर भागना है। पहले मैंने कहा है कि असुर नाम मेघ का है। यहां असुरपद से मेघ का देवता समझें। मेघ का देवता जो असुर है वह अमृत जो मेघघटा है उसको लेकर मानो भाग रहा है। अब देव जो सूर्य-किरण हैं देखते हैं कि हमारा परिश्रम बिलकुल व्यर्थ गया। क्योंकि जिसका हमने मथन किया था उसको असुर (मेघ देवता) लेकर भाग रहा है। वे सूर्य्य किरण विष्णु [सूर्य] देव से कहते हैं कि आप कोई इसका उपाय सोचें। उस समय विष्णु देव एक सुन्द मोहिनी रूप धारण करते हैं अर्थात् विष्णु [सूर्य] विद्युद्रूप स्त्री का रूप धारण करते हैं। अर्थात् विद्युत [बिजुली] रूप होकर असुरगण [मेघगण] में प्रविष्ट हो मेघ को छिन्न भिन्न करके पानी बरसाने लगते हैं। यही--विष्णु (सूर्य) का मोहिनीरूप धारण करना है और इस प्रकार असुरों को छलना है। वर्षा का होना ही देवों को अमृत प्राप्ति है। वर्षा होना ही अमृत है। इसको देव अर्थात् सकल पदार्थ पाकर परम प्रसन्न होते हैं। मेघ में विद्युत आदि की उत्पत्ति का कारण यथार्थ में सूर्य ही है। सूर्य की गरमी से ही वायु चलता है। वायु के आधार पर मेघ भ्रमण करता है। उस मेघ के संघर्षण से विद्युत उत्पन्न होती है यथार्थ में मेघ का कारण ही सूर्य-देव है। इसका इसप्रकार भी विचार कर सकते हैं। सूर्य की उष्णता के कारण जो मेघ की घटा में एक परमसुन्दर शोभा उत्पन्न होती मानो वही सूर्य (विष्णु) का मोहिनी रूप धारण करना है उस में असुर (मेघ) मोहित होकर (द्रवीभूत होकर) अमृत अर्थात् जल को छोड़ देता है। अर्थात् सूर्य की उष्णता से वर्षा होने लगती है। देव अर्थात् सब पदार्थ इसे पा अमर होते हैं। अन्यथा जल के बिना सबही मरजांय यहां देव शब्दार्थ सूर्यकिरण और पृथिवीस्थ पदार्थ है। अमृत जलको इस हेतु कहते हैं कि वह कभी मरता नहीं। हम लोग देखते हैं कि हम जब आग में भस्म कर दिया जाता है। तब वह सूक्ष्मरूप में

पुनः कदापि नहीं आसकता। ऐसी ही सब पदार्थों की गति है। परन्तु जल भस्म कर देने पर भी ठीक अपने स्वरूप में आजाता है। आग पर चढ़ाने से जल केवल वाष्प होजाता है। यन्त्र के द्वारा वह वाष्प ठीक उसी जल के रूप में दिखलाया जा सकता है। हम लोग देखते हैं कि ढकने के पेंदो में पानी जमा रहता है। वह पानी वाष्प का ही है। प्रथम पृथिवी पर से पानी ऊपर जाकर वाष्प हो जाता है। और वाष्प से पुनः मेघ होता है। तब पुनः उसी पानी के रूप में होकर बरसता है। इस प्रकार देखते हैं कि जल कदापि मरता नहीं इसी हेतु इसका नाम वैदिक भाषा में "अमृत" है इस अमृत का मथन प्रतियुग प्रतिवर्ष प्रतिदिन होता रहता है। सूर्य्य प्रति दिन अपनी किरणों से पृथिवी पर का पानी ऊपर खींचता है। इसी की गरमी से पृथिवीस्थ समुद्र से भी पानी वाष्प रूप में ऊपर उठता है। यही समयान्तर में मेघ बनता रहता है। सरोवर आदि का पानी, वैशाख ज्येष्ठ में सूखा पाते हैं। इस का कारण क्या है? कुछ पानी तो पृथिवी के अभ्यन्तर चला जाता है और उस के अधिकभाग सूर्य्य-किरणों से वाष्प हो जाता है। वर्षा ऋतु में सागर के पानी में बहुत वाष्प होता रहता है। इसी हेतु वर्षा भी अधिक होती है। यह घटना केवल वर्षा ऋतु में ही नहीं किन्तु प्रत्येक ऋतु में होती है। इसी हेतु कुछ कुछ वर्षा सब ऋतु में होती है। जहां वर्षा नहीं होती है। वहां कई एक कारण हैं। उष्णता के कारण मेघ वहां आते आते वाष्प होजाता है। प्राकृत विज्ञान में इन सब का बृहत् वर्णन किया गया यहां इस की आवश्यकता नहीं। इस हेतु हे विद्वानो! अमृत मथन तो प्रतिदिन प्रतिऋतु में हुआ करता है अज्ञानी लोग समझते हैं कि अमृत मथन हो चुका देव अमर हो गये, असुर पराजित हुए। परन्तु ज्ञानी लोगों की दृष्टि में समुद्र मथन सर्वदा होता रहता है।

"हलाहल विष आदि"

आप लोग देखते हैं कि जब वर्षा का आरम्भ होता है तब उसके पहले बड़ी गरमी उत्पन्न होती है। वायु बन्द हो जाता है। लोग परिश्रान्त हो जाते हैं। पसीने से लोग तरबतर हो जाते हैं। वर्षा ऋतु की गरमी कभी २ बड़ी दुःखदायी होती है। जो लोग ऐसे देश में निवास करते हैं जहां पर सब ऋतु होती हैं, उन्हें सब घटना अच्छे प्रकार अनुभूत है। इसी गरमी का होना मानों जगत में हलाहल कालकूट विष का फैलना है। वर्षा के आरम्भ में बीमारी भी बहुत फैलती। हैजे की बीमारी इसी ऋतु में होती है। वातव्याधि इसी ऋतु में फैलकर लोगों में विविध रोग को उत्पन्न करती है। इन ही रोगों का फैलना मानों समुद्र (आकाश) से कालकूट विष का उत्पन्न होना है। इस विष को रुद्र (महादेव) खा लेते हैं। इसका भाव यह है कि रुद्र नाम "विद्युत" का है इसका वर्णन आगे करेंगे। विद्युत से यहां तात्पर्य पूर्णवर्षाका है। क्योंकि विद्युत वर्षा का सूचक है। अर्थात् जब पूर्ण वर्षा होने लगती है, जगह जगह की सारी चीजें अधिक वर्षा होने से नदियों के द्वारा समुद्र में जा गिरती हैं। तब पुनः देश में बीमारी कम हो जाती है यही रुद्रकृत विष का पीना है। इस के अनन्तर उच्चैःश्रवाःहय और ऐरावत हाथी उस समुद्र से उत्पन्न होता है। इसका भाव यह है कि श्रवस नाम श्रवण यश कीर्ति आदि का है इस हेतु उच्चैःश्रवाः वायु का नाम है। क्योंकि वायु का यश उच्चैः अर्थात् उच्च अधिक है वर्षा ऋतु में जो वायु उत्पन्न होता है उसका नाम उच्चैःश्रवा है। क्योंकि यदि वायु न हो तो मेघ को इधर उधर ले जा कर कौन बरसावे वर्षा ऋतु में प्रजाएं वायु का राह देखती रहती हैं। प्रजाओं को अच्छे प्रकार मालूम रहती है कि अमुक वायु के चलने से अवश्य दृष्टि होगी। इस हेतु उस वायु की कीर्ति को प्रजाएं बहुत गाती हैं

इसी कारण उस वायु का नाम उच्चैःश्रवाः (उच्चयश वाला) है। यह इन्द्र का वाहन है। ऐसे ऐसे स्थान में वायु के अधिष्ठातृ देव का नाम इन्द्र है। (अधिष्ठातृ देव की कल्पना भी आधुनिक है। परन्तु इसी कल्पना के ऊपर ये सब आख्यायिकाएं भी कल्पित हैं इस हेतु अधिष्ठातृ देव मानना पड़ता है) उस देव का यह उच्चैःश्रवाः वाहन है। इस में सन्देह ही क्या। अथवा इन्द्र नाम सूर्य्य का भी है सूर्य्य के अधीन वायु है इस हेतु उच्चैःश्रवाः भी इन्द्र अर्थात् सूर्य्य के अधीन है ऐसा भाव भी हो सकता है इस को अश्व इस हेतु कहा है कि "अशू व्याप्तौ संघाते च" जो व्यापक हो जो घनीभूत हो अथवा जैसे घोड़ा आदमी को लेकर अभीष्ट स्थान पर पहुंचाता है इसी प्रकार यह वायु अपने ऊपर लादकर मानों अभीष्ट स्थान में मेघ को पहुंचाया करता है। इस हेतु यह अश्व कहा गया है। अब आगे ऐरावत हाथी प्रकट होता है। इरा नाम अन्न वर्षा आदि का है "इरां इणातीति वा इरां ददातीति वा इरां दधातीति वा इरां दारयते इति वा" इरां धारयते इति वा" इत्यादि निरुक्त में देखिये। इरा जिसको हो वह "इरावान्" इरावान् का जो स्वामी वा इरावान् सम्बन्धी वस्तु उसे "ऐरावत" कहते हैं। ऐरावत नाम यहां मेघ का ही है। उस मेघ का नाम ऐरावत है जो वर्षा से भरा हुआ रहता है। और मानो हाथी के समान मन्दगति से आकाश में चल रहा है। यह मेघ की एक दशा का वर्णन है। इस के अनन्तर "पारिजातवृक्ष" प्रकट होता है। यह भी मेघ की ही एक दशा का निरूपण है। आकाश में चारों तरफ वृक्ष के समान आकार दीखने लगते हैं। वे ही पारिजात हैं। परि=चारों तरफ। जात=उत्पन्न हों वे पारिजात। परिजात को ही पारिजात कह जाता है। इसी का नाम "पर्जन्य" भी है। तब कौस्तुभमणि प्रकट होता है। मणि नाम प्रस्तर (पत्थर) का है। "कु" नाम पृथिवी का है सप्तमी में कौरूप होता है "कौ पृथिव्यां पदार्थान् यः स्तोभति स्तभ्नाति हिंसतीति कौस्तुभो मेघवृष्ट प्रस्तरः"

पृथिवी के ऊपर पदार्थों को जो हिंसित करे उसे कौस्तुभ कहते हैं अर्थात् मेघ से गिरे हुए प्रस्तर का नाम यहां "कौस्तुभमणि" है। वह विष्णु का भूषण है। अर्थात् विष्णु (सूर्य) के कारण से इस की भी उत्पत्ति होती है। इसी हेतु यह विष्णु का भूषण माना गया है यह भी मेघ की ही दशा का वर्णन है। अब आगे लक्ष्मीदेवी आविर्भूत होती हैं। लक्ष्मी नाम शोभा का है यह निरूपण कर चुके हैं। यहां मेघ की शोभा का नाम लक्ष्मी है। इसका भी कारण सूर्य भगवान् ही है इस हेतु सूर्य्य को ही यह लक्ष्मी है। यह मेघ की शोभा समुद्र अर्थात् आकाश के मथन से ही होती है। पश्चात् वारुणी देवी आती है। यह भी वर्षा का ही रूपान्तर है। जो वर्षा सबों को ग्रहण योग्य हो वह वारुणी देवी कहलाती है। हे विद्वानो ! यह सब वर्षाऋतु का ही वर्णन है। आप लोग स्वयं विद्वान् हैं विचारें।

हे विचारशील पुरुषो ! यह समुद्र मथन केवल प्रात्यहिक दृश्य का वर्णन मात्र है। आप लोग अच्छे प्रकार समझ गये होंगे। जो लोग इस आख्यायिका को सत्य मानते हैं अर्थात् यह समझते हैं कि यथार्थ में जलमय सागर का मथन हुआ है और विष्णु भगवान् ने मोहिनी स्त्री का रूप धारण कर असुरगणों को धोखा दिया है, वे अपने परम पूज्य देव के ऊपर अमार्जनीय कलङ्क लगा रहे हैं। सुन्दर रूप के ऊपर वज्र पातकर रहे हैं और स्त्री जाति को परम दूषित कर रहे हैं। जगत् में हम मनुष्य अपने २ आधिपत्य के लिये संग्राम करते हैं विविध प्रकार के छल बल से शत्रु को जीतते हैं। क्यों उत्तम क्या निकृष्ट काम करते रहते हैं। शिक्षा के अनुकूल मनुष्य उत्तम मध्यम निकृष्ट हुआ करता है। जैसा कर्म करते हैं तदनुसार ईश्वर नियम से हम लोग फल पाते हैं। ईश्वर हमारे किसी कार्य में बाधा डालने को नहीं आता है। वह साधारण नर के समान नहीं है। और न उसके कोई शत्रु न कोई सुहृद है। वह

शुद्ध पवित्र निष्कलङ्क है। वह क्या देव क्या असुर क्या मनुष्य क्या पशु क्या पची सब का स्वामी है। सबके लिये बराबर है वह असुर और देव दोनों का ईश्वर है। तब क्यों छलसे असुरों का नाश करेगा और देवों पर अनुग्रह करेगा। यदि दुष्टों का संहार करना उसका स्वभाव है यह कहा जाय तो यह सत्य है कि वह दुष्टों का संहार करता है। परन्तु किस प्रकार से ? क्या छल कपट से। नहीं। छल कपट करना ईश्वर का स्वभाव नहीं उस का एक शुभ नियम है जिस के अनुसार सब कोई कर्म्म फल पा रहा है। यही ईश्वरज्ञान दण्ड है। देखिये ? ईश्वर सर्वथा समर्थ है यदि वह असुरों को दण्ड देना चाहे तो प्रत्यच्च ही देसकता है। उस को छल करने की क्या आवश्यकता। जो प्रबल शत्रु होता है, वह छल नहीं करता है। वह अपने दुर्बल शत्रु को प्रत्यच्चही पकड़ छिन्न भिन्न करदेता है। ईश्वर सबसे महान् प्रबल है। इस हेतु इसको कपट करने की कोई आवश्यकता नहीं है विद्वानो ! अज्ञान बालक ईश्वरको छली कपटी बनाते हैं। जब देश की दशा बहुत गिरजाती है चारों तरफ अज्ञानी ही अज्ञानी भरजाते हैं तब वे अनभिज्ञ अज्ञानी पुरुष अपने पूज्यदेव को भी अपने समान बना लेते हैं। यदि वह अज्ञानी चोरी करता है तो वह अपने देव को भी चोर बना लेता है। अर्थात् ऐसी कथा कोई गढ़लेता है कि जिस से सिद्ध हो कि उस का, देव भी चोर है। इसी प्रकार व्यभिचारी अपने देव को व्यभिचारी बना लेता है। कपटी अपने देव को कपटी बनालेता है। जिसदेश में कपट छल करने वाले पूज्यदेव हों वहां समझना चाहिये कि इस देश में विवेकी पुरुष निवास नहीं करते। प्रजाएं जङ्गली हैं। अज्ञानता बहुत विस्तृत है। राजा उन्मत्त है। विद्या की चर्चा नहीं है। मनुष्य स्वतन्त्र—विचार—रहित हैं। इत्यादि। परन्तु इस देश में प्रारम्भ से ही विद्या थी। लोग बुद्धिमान् थे तब क्या सम्भव है कि यहां के लोग अपने देव को कपटी बनाते। यथार्थ बात यह है कि जो

प्रकृति का वर्णन था। उनको लोगों ने अज्ञान वश कथा बनाली और उसी रूप में यथार्थ समझने लगे। इस हेतु हे विवेकीपुरुषो! आप लोग विचारें। और अज्ञानी जनों को समझावें कि समुद्र मथन आदि का अभिप्राय जो तुम समझते हो वो नहीं है और न तुम्हारा पूज्य देव स्त्री का रूप धारण कर किसी को ठगता ही है। और न असुर न देव किसी जाति का नाम ही है। विशेष विद्या की ओर ध्यान दो और इन सबों के प्राचीन अर्थ समझने के लिये प्रयत्न करो। इत्यलम्।

"विष्णु और त्रिविक्रम अथवा वामन"

वामन अवतार की कथा भी पुराणों में बहुत विस्तार से गाई गई है। हमें शोक होता है कि भारतवर्ष में कैसा घोर अन्धकार का एक समय आगयाथा कि जिस समय यहां लोग अपने परम पूज्यदेव को छली देख प्रसन्न होते थे और विविध स्तुति प्रार्थनाओं से उस कपटी देवको प्रमुदित करते। अबतक भी यही प्रथा चली आती है। लोग नहीं समझते हैं कि बड़ों का अनुकरण झट से लोग कर लेते हैं जिस का देवता छल करता हो और अपने आचरण से छल करना सिखलावे वह पूजक कब निष्छली हो सकता है। इस के साथ २ जब हम यह देखते हैं कि इन आख्यायिकाओं को किस प्रकार वैदिक शब्दों के साथ मिलाया है तब हम को और भी अधिक चिन्ता उपस्थित होती है कि क्यों ऐसा कलङ्क वेदों के ऊपर मढ़ा। और वेदोंके विस्पष्ट अर्थ न प्रकाश कर इस के स्थान में एक एक नवीन ही कथा गढ़ खड़ा की अनर्थ फैलाया जिस से देश के धर्म आचरण गौरव पवित्रता शुद्धता आदि सब नष्ट होगये। अस्तु! वामन अवतार की समालोचना अभी कर्तव्य है। इस की मीमांसा करते हुए हम को आप लोगों से यह कहना पड़ता है कि जब मनुष्य धीरे धीरे अज्ञानी बन गये, वेद का अध्ययन अध्यापन छोड़ दिये, मिथ्या

कथाएं उन्हें मोहित किया करने लगीं, और आध्यात्मिक-परिश्रम शून्य होते गये, तब ऐसी ऐसी कथाएं देश में प्रचलित होने लगीं । इस अवस्था में भी वेदों पर ही लोगों का विश्वास था । जो लोग कुछ पढ़े लिखे थे वे वेदों की भी वार्ता सुनाया करते थे। लोग प्रीति पूर्वक सुना करते थे । इस समय में एक घटना यह उपस्थित हुई कि वेद की जो वार्ता कुछ कठिन है, उस को साधारण जन नहीं समझ सकते थे। इस हेतु कथा बांचने वाले उस वार्ता का कुछ परिवर्तन कर अथवा उस के ऊपर एक नई कथा बना कर कहने लगे ताकि श्रोताओं को रोचक हो । समयान्तर में वही रोचक कथाएं सत्य होगईं । आज कल भी जब कथावाचक कहीं पर कथा कहते हैं तो उस में बहुत कुछ नून मिरिच लगाते हैं । यदि कोई कठिन विषय आता है तो उस के ऊपर नए नए प्रबन्ध (Allusion) कहते हैं । भिन्न भिन्न वाचक भिन्न भिन्न प्रबन्ध बतलाते हैं । इस से इनकी प्रतिष्ठा होती है । उदाहरण के लिये आप यह समझें कि कहीं पर यह कथा आई कि "अगस्त्य समुद्र शोषता है", यहां अगस्त्य नाम एक तारा का है और समुद्र नाम जलमय आकाश का है । वर्षा ऋतु के बाद अगस्त्य का उदय होता है अगस्त्य नाम तारा के उदय होतेही आकाशस्थ मेघ रूप जल नष्ट हो जाता है । अतः कहा जाता है कि "अगस्त्य समुद्र को शोषता है" । अब कथा वाचक देखने लगे कि इस का क्या अर्थ करें इस समय अगस्त्य का तारा और समुद्र का आकाश अर्थ भी विद्यमान नहीं रहा इन शब्दों का अर्थ भी बहुत कुछ परिवर्तित हो गया । इस अवस्था में वाचकों ने एक रोचक कथा बनाली और लोगों को सुना दी कि इस का भाव यह है । अगस्त्य एक ऋषि था वह किसी कारणवश समुद्र को पी गया । अब क्यों पी गया क्या कारण उपस्थित हुआ पुनः समुद्र कहां से आगया इत्यादि शङ्का होने पर इन सबों का भी समाधान बनाते गये । समयान्तर में यह

एक बड़ी लम्बी कथा बन गई जब जब लोगों ने कुछ शङ्का की तब तब उत्तर दिया गया कि ऋषि लोग समर्थ थे सब कुछ कर सकते थे इस पर शङ्का नहीं करनी चाहिये। प्रजाएं मूढ़ हो ही चुकी थीं। विश्वास कर लिया। जो अत्यन्त अज्ञानी थे वे इस पर अधिक प्रसन्न होने लगे कि आहा! हमारे ऋषि कैसे प्रतापशाली थे। अब देखिये यह कथा क्यों उत्पन्न हुई? अगस्त्य और समुद्र शब्द के प्राचीन अर्थ न जानने के कारण से। अथवा जो लोग प्राचीन अर्थ जानते भी होंगे उन्हों ने भी यह समझा होगा कि प्रजाएं इस गूढ़ भाव को नहीं समझ सकेंगी। अगस्त्य और समुद्र शब्द का अर्थ यदि समझावें भी तथापि सर्वसाधारण को समझने में बड़ी कठिनाई होगी। इस से अच्छा यही है कि इस के ऊपर कोई प्रबन्ध (Allusion) बना कर इन को समझा दिया जाय। इस प्रकार देश में हजारों कथाएं उत्पन्न हो गईं। ऐसी ही वार्ता इस वामन अवतार की आख्यायिका के साथ है। प्रकरण के अनुसार अर्थ न जानने से यह मिथ्या ज्ञान उत्पन्न हुआ है।

इस वामन अवतार का कारण भी सूर्य्य—देव ही है। सूर्य त्रिविक्रम है। त्रिविक्रम पद वारम्वार आया है। तीनों लोकों में अथवा तीनों स्थानों में जिस का विशेष क्रम अर्थात् पाद विक्षेप हो अर्थात् जिस का किरण तीनों लोकों में व्याप्त हो उसे त्रिविक्रम कहते हैं। सूर्य का किरण द्युलोक अन्तरिक्ष लोक और पृथिवी लोक में व्याप्त है इस हेतु सूर्य त्रिविक्रम है। अथवा प्रातःकाल मध्याह्न काल और सायङ्काल में किरणरूप-पाद को स्थापित करता हुआ सूर्य भासित होता है। उस से सूर्य "त्रिविक्रम" कहाता है। प्रातः-काल सूर्य्य बहुत छोटा सा प्रतीत होता है। उस समय 'बलि' जो अन्धकार वह प्रबल रहता है। सूर्य के उदय को मानो रोके हुए रहता है ज्यों ज्यों सूर्य ऊपर को बढ़ता जाता है त्यों त्यों बलि

(अन्धकार) पाताल को अर्थात् नीचे को चला जाता है। उस समय सूर्य के चरण रूप किरण तीनों लोकों में फैल जाते हैं बलि के रहने के लिये कोई स्थान नहीं मिलता। इस को विष्णु (सूर्य) पाताल भेज देता है। देवगण अर्थात् जीव गण सूर्य के उदय से बड़े प्रसन्न होते हैं। यही इस कथा का भाव है। अब इस पर आप लोग विचार करें।

एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा। हते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्य्यतप्यदनाथवत् ॥१॥ एकदा कश्यप स्तस्या आश्रमं भगवानगात्। निरुत्सवं निरानन्दं समाधे-र्विरतश्चिरम ॥२॥ स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः सभाजितो यथान्याय मिदमाह कुरूद्वह ॥३॥

भागवत ८। १६।

श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध के षोड़शाध्याय से वामनावतार की आख्यायिका का आरम्भ होता है। इस का संक्षेप अर्थ यह है। देवासुर-संग्राम होनेपर असुरगण विजयी हुए। और देवगणों के सब अधिकार छीन लिये गये। इस प्रकार जब देवमाता अदिति के पुत्र इधर उधर नष्ट भ्रष्ट होगये और इनका स्वर्ग राज्य भी असुरों ने लेलिया तब अदिति पुत्रों के दुःख से अतिशय दुःखिता हो अनाथवत् विलाप करने लगी। एक समय कश्यप महर्षि अदिति के आश्रम में आकर देखते हैं कि अदिति अति क्लेशार्त्ता है और आश्रम निरानन्द निरुत्सव हो रहा है। कश्यप जी ने इस का कारण पूछा। अदिति देवमाता ने सब कारण कह सुनाया। तत्पश्चात् कश्यप ने कहा कि ईश्वर की कैसी इच्छा प्रबल है यह सम्पूर्ण जगत् स्नेहबद्ध है। कहाँ यह आत्मा। कहाँ यह माया है प्रिये!

मेरे देव और असुर दोनों पुत्र हैं। इस हेतु असुर आप के भी पुत्र हुए यदि असुरों का विजय हुआ तो आप क्यों चिन्तित हैं। एवमस्तु, आप भगवान् की सेवा करें वही आप के मनोरथों को पूर्ण करेगा। उस की सेवा अमोघ है। इस प्रकार पति से आदिष्टा अदिति पति-प्रदर्शित उपाय के अनुसार व्रत करने लगी। कुछ समय के अनन्तर अदिति के गर्भ से वामन जी उत्पन्न हुए। सब देवगण ने मिलकर इनका उपनयन संस्कार किया। इसके अनन्तर असुराधिप बलि राजा का यज्ञ सुनकर वहां गये। बलि ने यथोचित सत्कार किया। भागवत में इस प्रकार सत्कार के विषय में लिखा है।

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते। अद्य नः पितर स्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम्। अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद्भवानागतो गृहान्। अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मजः त्वच्चरणावनेजनैः। हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव। इत्यादि।

हे ब्रह्मन्! आप का स्वागत हो। आप को नमस्कार हो। आप के लिये हम क्या करें। आज हमारे पितर तृप्त हुए। आज हमारा कुल पवित्र हुआ। आज यज्ञ अच्छे प्रकार से किया गया जो आप हमारे गृह को प्राप्त हुए हैं। आज हमारे अग्नि यथाविधि सुहुत हुए। हे द्विज! आप के चरणों के धोये हुए जलों से हम सब निष्पाप हुए। यह पृथिवी भी पुनीता हुई। हे वटो! आप क्या चाहते हैं। गौ, काञ्चन, सुन्दरधाम, विप्रकन्या, ग्राम, तुरग, गज, रथ, जो आप चाहते हों मुझ से मांगें। बलि के इस वचन को सुन प्रथम वामन जी ने बलि का यथेच्छ गुण वर्णन किया है इस के वंश की अच्छी कीर्त्ति

गाई है तब अन्त में यह कहा है । यथा:—

तस्मात्त्वत्तो महीमीषद्वृणेऽहं वरदर्षभात् । पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम । नान्यत्ते कामये राजन् वदान्यजगदीश्वरात् । नैनः प्राप्नोति वै विद्वान् यावदर्थप्रतिग्रहः । अधिकं योऽभिकांक्षेत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥ भा० ८ । १९ ॥

हे दैत्येन्द्र ! इस हेतु आप से मैं थोड़ी पृथिवी मांगता हूं । मुझ को अपने पैर से तीन पैर पृथिवी चाहिए इस से अधिक कामना मैं नहीं करता हूं । जितना प्रयोजन हो उतना प्रतिग्रह लेने में विद्वान् को पाप नहीं होता । अधिक जो आकांक्षा करता है वह चोर दण्ड के योग्य है । तत्पश्चात् वामन के वचन सुन बलि राजा बोले हे बटो ! आप के वचन वृद्धसमान हैं । परन्तु मुझ राजा से तीन पैर पृथिवी मांगते हैं सो अनुचित सा प्रतीत होता है एवमस्तु ! जो आप की कामना हो सो लेवें । यह कह कर बलि ने सङ्कल्पपूर्वक तीन—पद पृथिवी दी । तब वामन जी बहुत बढ़ने लगे । एक पैर से पृथवी, दूसरे पैर से द्युलोक माप लिया । तृतीय पैर को जगह ही नहीं रही । तब वामन जी बोले हे बलि महाराज ! अब मुझ को तीसरा पैर पृथिवी दो । यदि नहीं देते हो तो पाताल जाओ । क्योंकि तुम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की । इस प्रकार कह कर बलि राजा को पाताल भेज दिया है । इत्यादि कथा श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध में देखिये । वाल्मीकि-रामायण बालकाण्ड के २९ वां सर्ग में वामन अवतार की कथा आई है । कथा का भाव समान ही है किञ्चित् मात्र का भेद यह है कि कश्यप ने अपनी पत्नी अदिति के साथ स्वयम् तपस्या करके भगवान् से प्रार्थना की है कि आप मेरे और अदिति

के पुत्र होवें "पुत्रत्वं गच्छ भगवान् अदित्या मम चानघ" भागवत में केवल अदिति का व्रत ग्रहण करना है और रामायण में यहां पर शक्रकृत निषेध प्रभृति की भी चर्चा नहीं है।

अथ विष्णुर्महातेजा अदित्यां समजायत। वामनं रूप मास्थाय वैरोचनि मुपागमत्। त्रीन्पदानथ भिक्षित्वा प्रतिगृह्य च मेदिनीम्। आक्रम्य लोकान् लोकार्थी सर्वलोकहितेरतः॥

अनन्तर महातेजस्वी विष्णु जी अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए वामनरूप धारण कर विरोचनपुत्र बलि के निकट आए। उस से तीन पद मांगकर पृथिवी को ले सब लोकों का आक्रमण किया। इत्यादि। यह कथा पुराणों में परम प्रसिद्ध है। अनेक ग्रन्थों से प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि इस से ग्रन्थ बहुत विस्तार हो जायगा। अब इस पर विचार करना है कि इस आख्यायिका का मूल कारण क्या है। वेदवित् पुरुषों को विदित है कि शब्दार्थ के भ्रम से इस कथा की उत्पत्ति हुई है। जैसे अगस्त्यकृत समुद्रपान के तात्पर्य का निरूपण करते हुए कथकों ने कथा कल्पित की है वैसा ही कथा यहां पर कल्पित हुई है। इसका भाव पूर्व में कुछ कह चुका हूं अब विस्तार से कहता हूं सुनिए।

"विष्णु शब्दार्थ और विष्णुसूक्त"

अथ यद्विषितोभवति तद्विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वाव्यश्नोतेर्वा। निरुक्त दैवतकाण्ड। अथास्योपरि-भाष्यम्। अथ यद्यदा विषितः व्याप्तो यऽमेव सूर्य्यो

रश्मिभिर्भवति । ततदा विष्णुर्भवति । विशतेर्वा यदा विष्टःप्रविष्टः सर्वतोरश्मिभिर्भवति तदा विष्णुर्भवति । व्यश्नोतेर्वा विपूर्वस्या श्नोतेः । यदारश्मिभिरतिशयेन अयं व्याप्तो भवति व्याप्नोति वा रश्मिभिरयंसतदाविष्णुरादित्यो भवति ।

यद्यपि वैदिक भाषा में विष्णु शब्द अनेकार्थक है तथापि जिस विष्णु शब्द को लेकर वामन की कथा सृष्ट हुई है उसका आदित्य (सूर्य) अर्थ है इस में यास्काचार्य का प्रमाण (भावार्थ) जब वह सूर्य अपने (रश्मिभिः) किरणों से व्याप्त-पूर्ण होता है तब उसी सूर्य का नाम विष्णु होता है "विशप्रवेशने" धातु से इस शब्द की सिद्धि होती है । जब किरणों से सर्वत्र यह सूर्य प्रविष्ट होता है । तब विष्णु कहलाता है । अथवा "वि+अश" धातु से भी विष्णु शब्द सिद्ध होता है । इसका भी तात्पर्य यही है कि जो किरणों के द्वारा सर्वत्र फैल जाय उसे विष्णु कहते हैं । यहां यास्काचार्य का यह भाव है कि यद्यपि सूर्य सदा किरणों से युक्त ही रहता है परन्तु पृथिवी की रुकावट के कारण सूर्य को हम लोग सदा नहीं देख सकते । अतः प्रातःकाल सूर्य रश्मि रहित दीखता है । ज्यों २ ऊपर आता है त्यों २ अपने किरणों से संयुक्त होता हुआ भासित होता है । इस प्रकार जिस समय वह सूर्य, मानो, अपने समस्त किरणों से संयुक्त हो जाता है । उस के द्वारा सर्वत्र द्युलोक अन्तरिक्ष और पृथिवी पर प्रकीर्ण होजाता है उस अवस्था में उस सूर्य का नाम "विष्णु" होता है । इस से सिद्ध हुआ कि सूर्य का ही नामान्तर "विष्णु" है । अब यास्काचार्य इस का एक वैदिक उदाहरण देते हैं जहां पर विष्णु शब्द का अर्थ सूर्य होता है और उस का स्वयं अर्थ भी करते हैं यथाः—

इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढ मस्य पांसुरे । यदिदं किञ्च तद्विक्रमते विष्णुः । त्रेधा निधत्ते पदं त्रेधा भावाय पृथिव्या मन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीति औ- र्णवाभः । समूढमस्य पांसुरे प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यतेऽपिवोपमार्थे स्यात् समूढमस्य पांसुल इव पदं न दृश्यते इति ।

इस के ऊपर दुर्गाचार्य का भाष्य इस प्रकार है यथाः—

यदिदं किञ्चिद् विभागेन अवस्थितं तद्विक्रमते विष्णु रादित्यः । कथमिति ? यत आह "त्रेधा निधत्ते पदम्" निदधे पदं निधानं पदैः । क ? तत्र तावत्— पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः । पार्थिवोऽग्नि- र्भूत्वा पृथिव्यां यत्किञ्चिदस्ति तद्विक्रमते तदधितिष्ठति । अन्तरिक्षे विद्युदात्मना । दिवि सूर्य्यात्मना । यदुक्तम् । तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कम् । इति । समारोहणे । उदयगिरावुद्यन् पदमेकं निधत्ते विष्णुपदे मध्यान्दि- नेऽन्तरिक्षे । गयशिरसि अस्तंगिरौ । इत्यौर्णवाभ आचार्यो मन्यते एवम् । समूढमस्य पांसुरे अस्मिन् प्यायने एतस्मिन् अन्तरिक्षे सर्वभूतवृद्धिहेतौ यन्म-

ध्यदिनं पदं विद्यु दाख्यंपदं तत् समूढम् अन्तर्हितं न नित्यं दृश्यते। तदुक्तम्। स्वप्नमेतन्मध्यमं ज्योति रनित्यदर्शनम्। इति। अपिवोपमार्थेस्यात् समूढमिव पांसुले पदं न दृश्यते इति। यथा पांसुले प्रदेशे पदंन्य स्त मुत्क्षेपणसमनन्तरमेव पांशुभिराकीर्णत्वात् न दृश्यते एवमस्य मध्यमं विद्यु दात्मकं पद माविष्कृति समकालमेव व्यवधीयते नावतिष्ठत इत्यर्थः। इति।

भावार्थः—(विष्णुः) आदित्य=सूर्य्य (इदम्) जो कुछ यह विभाग से स्थित है इस सब में (विक्रमते) अपने किरणों से व्याप्त हो जाता है अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु लोक, जो पृथक् २ प्रतीत होता है। इन सबों में सूर्य्य फैल जाता है। कैसे फैलता है सो आगे कहते हैं (त्रेधा निदधे पदम्) तीन स्थानों में वह सूर्य्य अपने पद को अर्थात् अपने किरण को स्थापित करता है। वे तीन स्थान कौन हैं इस प्रश्न पर यास्काचार्य दो आचार्यों की सम्मति कहते हैं (पृथिव्याम्०) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु लोक में वह विष्णु अर्थात् सूर्य्य किरणों को स्थापित करता है अथवा किरणों से इन तीनों स्थानों में विस्तृत हो जाता है। यह शाकपूणि आचार्य्य का मत है। अब दूसरे आचार्य और्णवाभ कहते हैं कि वह विष्णु=सूर्य्य (समारोहणे) उदय गिरि पर उदित होता हुआ एक पद रखता है (विष्णुपदे) मध्यदिन अन्तरिक्ष में एकपद रखता है और (गयशिरसि) अस्ताचल में एक पद स्थापित करता है। अब आगे तृतीय चरण का अर्थ करते हैं। (पांसुरे) इस अन्तरिक्ष में (अस्य) इस सूर्य का (समूढम्) एक पद छिपा हुआ है अर्थात् नहीं दीखता है। अथवा

जैसे मृत्तिकामय स्थान में पद चिन्ह नहीं दीखता है। वैसे ही इस का अन्तरिक्ष में पद नहीं दीखता। दुर्गाचार्य का भाव यह है कि यहां विष्णु शब्द का सूर्य अर्थ है। वह विष्णु=सूर्य पृथिवीस्थ अग्निरूप से पृथिवी पर विद्युत रूप से अन्तरिक्ष में और अपने ही रूप से द्युलोक में इस प्रकार तीनों लोकों में विस्तृत होता है। परन्तु अन्तरिक्ष में जिस विद्युत् रूप से सूर्य व्याप्त होता है। वह विद्युत नहीं दीखती है। यदि कुछ दीखती भी है तो झट लुप्त हो जाती है। यास्काचार्य विस्पष्ट रूप से कहते हैं कि यह सूर्य का वर्णन है जिस हेतु सूर्य तीनों लोक में व्याप्त होता है। अतः वह त्रि विक्रम कहलाता है और जिस अवस्था में वह सर्वत्र प्रकीर्ण होता है। तब वह 'विष्णु' नाम से व्यवहृत होता है। तीनों लोकों में फैलना ही विष्णु (सूर्य) का त्रिविक्रमत्व है। इस से प्रतीत हुआ कि श्रीयास्काचार्य के समय में भी वामनावतार की कथा कल्पित नहीं हुई थी। यदि होती तो इस की चर्चा अवश्य करते।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्तधामभिः। त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्म्माणि धारयन्। विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतोव्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा। तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्। २०। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णुर्यत्परमं पदम्। २१।

ऋ० १।२२।

अर्थ-(विष्णुः) सूर्य (सप्तधामभिः) जगत के धारण पोषण करने वाले अपने सात प्रकार के किरणों के द्वारा (यतः+पृथिव्याः)

इस पृथिवी से लेकर द्युलोक पर्य्यन्त । सर्वत्र [विचक्रमे] विशेष रूप से भ्रमण करता है [अतः] इस पृथिवी से लेकर तीनों लोकों की [नः] हमारे [देवाः] अन्य बृहस्पति शुक्र आदि नक्षत्र और वायु आदि देव [अवन्तु] रक्षा करें। ईश्वर कहता है कि जहां जहां सूर्य अपनी किरणों के द्वारा व्याप्त होता है। वहां २ सूर्य तो इन स्थानों की रक्षा करता ही है परन्तु अन्य वायु आदि देव भी हमारे इन स्थानों को अपने अपने कार्य्य से रक्षा करें। १६। १७ का अर्थ हो चुका है। [अदाभ्यः] अहिंस्य अविनश्वर चिरस्थायी [गोपाः] तेज से जगत की रक्षा करने वाला [विष्णुः] सूर्य्य (त्रीणि + पदा) पद = स्थान पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीन स्थानों में [विचक्रमे] भ्रमण करता है अथवा तीन स्थानों में मानो तीन पद रखता है। जैसा कि पूर्व में वर्णन किया है। क्या करता हुआ (अतः) इस भ्रमण से (धर्म्माणि) प्राणाओं में विविध प्रकार के धर्म्मों का (धारयन्) पोषण करता हुआ। सूर्य्य के उदय से ही लोग धर्म्म कर्म्म करना आरम्भ करते हैं। इस हेतु धर्म्म का भी पोषक मानो सूर्य ही है । यहां सूर्य (त्रीणि + पदा) तीन पद अर्थात् तीन पैर चलता है। त्रिशब्द अल्प-वाचक है। तब यह अर्थ हुआ कि पृथिवी आदि तीनों लोकों की रक्षा के लिये सूर्य को केवल तीन पैर चलना पड़ता है अर्थात् बहुत कम चलना पड़ता है। क्योंकि सूर्य अपनी ही कक्षा पर भ्रमण कर-ता है। पृथिवी आदि के समान किसी दूसरे की प्रदक्षिणा नहीं कर-ता इस हेतु मानो महाराजवत् किञ्चित् भ्रमण से ही सूर्य सब की रक्षा कर रहा है। मानों तीन लोकों की रक्षा के लिये इसे केवल तीन पद ही रखना पड़ता है। यह आलङ्कारिक वर्णन है। १८। हे मनुष्यो ! (विष्णोः) सूर्य के (कर्माणि) पालन आदि कर्मों को (पश्यत) देखो। (यतः) जिस से (व्रतानि) व्रत = धर्म्म कर्म्म (पस्पशे) करते हैं। जो सूर्य (इन्द्रस्य) वायु का [युज्यः] योग्य अनुकूल [सखा] मित्र है सूर्य्य की स्थिति से ही जगत् के सब कर्म्म

धर्मों स्थित हैं। क्योंकि सूर्य के कारण वायु चलता है। और वायु से सब जीवित हो रहे हैं। जीवन से सब व्रत होते है। इसी हेतु इस मन्त्र में इन्द्र अर्थात् वायु का सखा सूर्य कहा गया है। और सूर्य से व्रत का होना वर्णित हुआ है। १९। [सूरयः] विद्वान् [सदा] सर्वदा [विष्णोः] सूर्य के [तत्] उस (परमम्) उत्कृष्ट [पदम्] पदको [पश्यन्ति] देखते हैं अर्थात् विद्वान् सूर्य के तत्त्व को जानते हैं। यहां दृष्टान्त देते हैं (दिवि+इव) जैसे आकाश में [आततम्] सब प्रकार से विस्तृत [चक्षुः] नयन सब कुछ देखता है अर्थात् किसी अवरोध के न होने के हेतु जैसे आकाश में प्रेरित नयन आकाशस्थ सब पदार्थ को विशद रूप से देखता है। तद्वत् उस परम पद को विद्वान् देखते हैं। २०। (विष्णोः+यत्+परमं+पदम्) विष्णु का जो परम पद है (तत्) उसको [विपन्यवः] सदा स्तुति प्रार्थना करने वाले अथवा जगत के मिथ्या जञ्जाल से जो निस्पृह हैं और [जागृवांसः] जागरण करने वाले हैं [विप्रासः] वे मेधावी [समिन्धते] प्रकाशित करते हैं। २१। सूर्य का तत्त्व जानना भी परम विद्या का कार्य्य है। आप लोगों को हास्यसा यह वाक्य प्रतीत होगा। आप लोग कहेंगे कि सूर्य का जानना कौनसी विद्या की बात है। हां, ब्रह्म के जानने के लिये सारी विद्या की आवश्यकता है। हे विद्वानो! यह बात मत कहें। देखिये आज कल विद्या विना कैसा अन्धकार देश में फैला हुआ है। सूर्य ग्रहण लगने पर लाखों आदमी कुरुक्षेत्र आदि स्थानों को दौड़ते हैं। यदि ग्रहण समझ जांय तो वे लोग क्यों कर इस अविद्या में फंस कर मरें। पुनः पृथिवी किस आधार पर है आज काल नाना उत्तर लोग देते हैं। परन्तु वे सब ही मिथ्या और कपोल कल्पित हैं। यदि सौर विद्या को जानते तो ऐसी मिथ्या कल्पना नहीं करते। पुनः रात दिन कैसे होता है ऋतु क्योंकर परिवर्तित होता है। चन्द्र क्यों घटता बढ़ता है। इत्यादि ज्ञान सूर्य सम्बन्धी विद्या के जानने से ही होता है। हे शास्त्रवेत्ताओ!

हम क्या वर्णन करें। आप लोग निश्चय जानें जिस ने सूर्य्य के गुणों को नहीं जाना वह सर्वदा अविद्या अज्ञान में फंसा रहेगा। वह ईश्वर को क्या जानेगा। प्रथम ईश्वरीय विभूतियां जाननी चाहियें। सूर्य्य चन्द्र पृथिवी आदि ईश्वर की विभूतियां हैं अज्ञानी को समझाने पर भी सूर्य सम्बन्धी आकर्षण आदि विद्याएं समझ में नहीं आवेंगी इस हेतु मन्त्रों में कहा गया है कि विद्वान् मेधावी रात्रिन्दिवा चिन्तन करनेवाले एकान्त सेवी जन इस सौर-विद्या का साक्षात् अनुभव करते हैं। वे ज्ञानी पुरुष धन्य हैं।

ये मन्त्र ईश्वर पक्ष में भी घटते हैं। विष्णु नाम ब्रह्म का भी है। यदि कहें कि इस पक्ष में "सप्तधाम" और "त्रिपद" आदि शब्दों का क्या अर्थ होगा। हे बुधवरो! ईश्वर पक्ष में "सप्त" शब्द का "सर्पणशील" अर्थात् चलनेवाला अर्थ होगा। संख्या नहीं जैसे "जगत्" और "संसार" शब्द का अर्थ है वही अर्थ "सप्त" का भी है। इस अर्थ में अन्य आचार्य्य ने भी "सप्त" शब्द का प्रयोग किया है। और "त्रिपद" शब्द का अर्थ तीन स्थान है अब मन्त्रों का अर्थ सुनिये।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्तधामभिः।

(यतः) जिस कारण (विष्णुः) सर्वत्र व्यापक परम ब्रह्म (पृथिव्याः) पृथिवी से ले कर जितने (सप्तधामभिः) सर्पणशील= गमनशील स्थान हैं उन के साथ जो [विचक्रमे] व्यापक हैं अर्थात् सब में व्यापक हैं [अतः] इस हेतु [देवाः] विद्वान् गण [नः] हम को [अवन्तु=अवगमयन्तु] समझावें। अर्थात् वेद से यह निश्चय है कि ब्रह्म सर्व व्यापक है॥ किस प्रकार से वह व्यापक है उस का क्या रूप है। वह क्यों नहीं दीखता है। व्यापक है तो

वह क्या करता है इत्यादि विषय इन साधारण प्रजाओं को समझ में नहीं आते हैं. विद्वान् समझाएं ऐसी प्रार्थना प्रजाएं विद्वानों से करती हैं। १५ ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे । १६ ॥

[विष्णुः] सर्वं व्यापक परमात्मा [इदम्] इस दृश्यमान जगत् में [विचक्रमे] व्यापक है। केवल इसी दृश्यमान जगत् में ही व्यापक नहीं है किन्तु [त्रेधा] तीनों स्थान में पृथिवी अन्तरिक्ष द्यु लोक में [पदम्] अपना स्थान [निदधे] निहित = स्थापित किया है। जो अदृश्य वा दूर वा निकट स्थान हैं उन सबों में वह रम रहा है। अथवा [त्रेधा] तीन प्रकार से [पदम्] स्थान = जगत् को [निदधे] निहित अर्थात् स्थापित किया है। प्रत्येक वस्तु वाष्प, द्रव और स्थूल रूप में बनाई हुई है। प्रत्येक वस्तु आकर्षण, विकर्षण और गमन युक्त है। प्रत्येक वस्तु सत्त्व रज और तम से युक्त है। प्रत्येक वस्तु प्रकृति जीवात्मा और परमात्मा से युक्त है। इत्यादि अनेक चिह्न से यह जगत् संयुक्त है इस हेतु कहा है कि इस पद [स्थान = जगत्] को तीन प्रकार से स्थापित किया है। अब आगे कहते हैं कि यद्यपि ब्रह्म सर्व-व्यापक है। तथापि [अस्य] इस ब्रह्म का तत्त्व [पांसुरे] अज्ञानरूप धूलिमय प्रदेश में (समूढम्) छिपा हुआ है। अज्ञानता के कारण वह नहीं दीखता। यहां "त्रेधापदम्" से यह भी सूचित होता है। ईश्वर किसी एक स्थान में कहीं बैठा हुआ नहीं है जैसे कि अज्ञानी जन मानते हैं। किन्तु वह सर्वत्र विद्यमान है। यह उपदेश मन्त्र देता है। १७ ॥]

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ।

(गोपाः) रक्षक (अदाभ्यः) अहिंस्य अविनश्वर (विष्णुः) परमात्मा । निश्चय हे मनुष्यो ! [त्रीणि+पदा] तीनों स्थानों में (विचक्रमे) प्राप्ति अर्थात् व्यापक है । तीनपद से सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका ग्रहण है (अतः) इस व्यापकता से (धर्माणि) समस्त पदार्थ शक्तियों को (धारयन्) धारण करता हुआ वह स्थित है । पदार्थों की शक्तिका नाम ही संस्कृत में धर्म होता है । जैसे अग्नि का धर्म अर्थात् अग्नि का गुण वा शक्ति । यदि ब्रह्म व्यापक नहीं होता और अपनी धारणा से सब की यथोचित रक्षा नहीं करता तो कैसे यह जगत् स्थित रहता । १८॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।

हे मनुष्यो ! प्रत्यक्षतया (विष्णोः) परमात्मा के (कर्माणि) सृजन पालन संहरण रूप कर्मों को (पश्यत) देखो । (यतः) जिस कारण उस परमात्मा ने (व्रतानि) शुभ कर्म अथवा ज्ञानों को (पस्पशे) फैलाया है । जिस हेतु ईश्वर स्वयं सृजन आदि कर्म करता है । और शुभ कर्म वा ज्ञान को उस ने इस जगत् में विस्तृत किया है अतः इस को देखना वा जानना आवश्यक है । हे मनुष्यो ! वह परम दयालु है । (इन्द्रस्य) इन्द्रियों से ज्ञान करने वाला जो हम लोगों का आत्मा है । उस का (युज्यःसखा) वह अनुकूल मित्र है । परमात्मा जीवात्मा का परम हितैषी है । इस हेतु इस को कर्म करना उचित है । क्योंकि इस का मित्र ईश्वर स्वयं कर्म कर रहा है । १९ । यद्यपि ईश्वर का कर्म प्रत्यक्ष है तथापि इस को मेधावीजन ही देखते हैं । सो आगे कहते हैं :—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षु-

ाततम् ॥ २० ॥

(सूरयः) विद्वान् जन (विष्णोः) ईश्वर के (तत्+परमं+पदम्) उस परम पद को अर्थात् ईश्वरीय तत्त्व को (सदा) सर्वदा (पश्यन्ति) देखते हैं अर्थात् जानते हैं इस में दृष्टान्त कहते हैं [दिवि+इव] जैसे आकाश में [आततम्] व्याप्त वस्तु को [चक्षुः] नयन देखता है। अथवा आकाश में प्रदित नयन जैसे देखता है तद्वत्। २०। जब ये ही विद्वान् जन उस पद को प्रकाशित करते हैं तब ही उस का ज्ञान होता है सो आगे कहते हैं।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥

(विपन्यवः) जो सदा स्तुति प्रार्थना करने वाले हैं या जो सांसारिक व्यवहारों से पृथक् हैं (जागृवांसः) ईश्वरीय विभूति चिन्तन में जो सदा जागरित हैं ऐसे (विप्रासः) मेधावी जन (विष्णोः यत्+परमम्+पदम्) विष्णु का जो परम पद है (तत्) उस को (सम्+इन्धते) अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हैं। २१। इस के आगे और भी विष्णु सूक्त लिखते हैं जिस से आप लोगों को विस्पष्ट रूप से सुबोध हो जाय कि किस प्रकार जगत् में भ्रम उत्पन्न होता है इन मन्त्रों में आप ने देखा कि बलि वा वामन आदि की वार्ता नहीं है। केवल "त्रिपद" और "विक्रमण" करने का वर्णन आता है। एवमस्तु आगे देखिये:—

विष्णोर्नु कं वीर्य्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि-यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः।

ऋ० १। १५। ५४। १ ॥

अर्थ (नुकम्) शीघ्र विष्णोः सूर्य के (वीर्य्याणि) पराक्रम=

शक्तियों को (प्रवोचम्) कहता हूं। अर्थात् सूर्य की शक्तियों को प्रकाशित करता हूं। उन्हीं सूर्यवीर्य दिखलाते हैं। (यः) जिसने (पार्थिवानि) पृथिवी सम्बन्धी (रजांसि) रज=धूलियां (विममे) निर्माण कीं। और जिसने (उत्तरम्) पृथिवी की अपेक्षा उत्तम अथवा ऊपर (सधस्थम्) बृहस्पति आदि ग्रहों के रहने के स्थान को (अस्कभायत्) अपनी आकर्षण शक्ति से स्तम्भित अर्थात् रोक रक्खा है। पुनः वह सूर्य कैसा है [त्रेधा] तीनों स्थानों में अग्नि, वायु और सूर्य रूप से [विचक्रमाणः] भ्रमण करता हुआ। पुनः कैसा है। [उरुगायः] बड़े बड़े विद्वानों से गीयमान है। हे विद्वानो! ईश्वर सम्पूर्ण जगत् का साधारण कारण है। परन्तु विशेष २ कारण अन्य २ पदार्थ है। जैसे पानी न हो तो अन्न की उत्पत्ति न हो। इस हेतु अन्न की उत्पत्ति का कारण जल है। यदि वायु न हो तो सब पदार्थ शीघ्र नष्ट हो जांय। इस हेतु जीवन का वायु कारण है। इस प्रकार आप देखें कि ईश्वर सामान्य कारण है और अन्य २ पदार्थ विशेष कारण हैं। इसी प्रकार इस पृथिवी का विशेष कारण सूर्य ही है सूर्य से ही यह पृथिवी निकली है। पहले यह अग्नि गोलक थी। धीरे २ इस की अग्नि शान्त होती जाती है। अब भी इस के अभ्यन्तर में अग्नि बहुत विद्यमान है। पुनः यह पृथिवी कभी २ जल से पूर्ण हो जाती है। जहां पहले समुद्र था वहां अब स्थल है इत्यादि परिवर्त्तन इस में होता रहता है। सूर्य के ही कारण से वायु चलता है। मेघ होता है। वर्षा होती है। वायु आदि के कारण पृथिवी के ऊपर से क्रमिक ठंढी होती गई। और इस में विविध ओषधियां होने लगी। यथार्थ में इस सब का कारण सूर्य देव ही है। इसी हेतु वेद मन्त्र कहता है कि सूर्य ने पृथिवी की धूलि बनाई। और सूर्य अपने आकर्षण से अनेक ग्रहों को थाम्हा रक्खा है इस हेतु मन्त्र कहता है कि उत्तर=ऊर्ध्व=स्थान को पकड़ रक्खा है। इस हेतु इस

का यश बहुत है द्यु लोक से पृथिवी तक, किसी न किसी रूप से यह सूर्य विद्यमान है। अतः सूर्य 'त्रेधा विचक्रमाण' है। ईश्वर पक्ष में (विष्णोः) सर्वव्यापक परमात्मा के वीर्यों को मैं सदा और शीघ्र गाया करूं। अर्थात् वृद्धावस्था वा आपत्ति आने पर ही इस वीर्य को गाऊं सो बात नहीं किन्तु (नुकम्) शीघ्र अर्थात् बाल्यावस्था से ही इस की कीर्ति गाऊं। वह कैसा है। (यः) जो (पार्थिवानि) स्थूल-बड़े २ (रजांसि) लोक लोकान्तरों को (विममे) बनाया करता है रजस् नाम लोक का है "लोका रजांसि उच्यन्ते" निरुक्त ४। १९। पुनः जो (उरुगायः) ऋषि महर्षि बड़े २ विद्वानों से गीयमान है और (यः) जिस ने (त्रेधा+विचक्रमाणः) तीनों स्थानों में व्यापक हो कर (उत्तरम्+सधस्थम्) पृथिवी से लेकर ऊपर २ सब स्थान को (अस्कभायत्) अपने २ स्थान पर स्थिति के लिये रोक रक्खा है॥ १॥

प्र तद्विष्णुःस्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥ २॥

(तत्) यह (विष्णुः) सूर्य (वीर्येण) तेज आदि बल के कारण (प्र+स्तवते) अच्छे प्रकार स्तुत्य होता है अर्थात् सूर्य के गुण का वर्णन होता है। (मृगः+न+भीमः) 'न' शब्द वेद में 'इव' 'यथा' आदि अर्थ में भी आता है। जैसे पशुओं में सिंह भयङ्कर और बलिष्ठ होता है वैसे ही ग्रहों के बीच सूर्य भीम है [कुचरः] पृथिवी आदि सब लोक में विचरण करने वाला है 'कुषु सर्वासु भूमिषु लोकादये सचारी' (गिरिष्ठाः) पर्वतवत् उच्च स्थान में रहने वाला। और (यस्य) जिस के (त्रिषु) तीन (उरुषु) विस्तीर्ण (विक्रमणेषु) पाद रखने के स्थानों में (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणी (क्षियन्ति) निवास करते हैं। इस में सन्देह नहीं कि जहां तक सूर्य का किरण

विकीर्ण है वहां तक ही प्राणिओं का निवास है। अनेक सूर्य हैं। उन की गरमी सर्वत्र प्राप्त होती रहती है। वहां २ सृष्टि होती रहती है। सूर्य की उष्णता त्रिलोक व्यापिनी है इस कारण सूर्य 'त्रिविक्रम' कहलाता है। और सूर्य की व्यापकता का नाम 'त्रिविक्रमण' है।

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे। य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः॥३॥

अर्थः—(विष्णवे) सूर्य को (मन्म) मननीय उत्तम (शूषम्) शोषणशक्ति (एतु) प्राप्त है। वह सूर्य कैसा है (गिरिक्षिते) गिरि=मेघ। मेघ का क्षय करने वाला पुनः (उरुगायाय) जिस के यश को बहुत विद्वान् गाते हैं पुनः (वृष्णे) वर्षा के देनेवाला। पुन (यः) जो सूर्य (एकःइत्) एक ही अकेला ही (इदम्) इस (दीर्घम्) दीर्घ (प्रयतम्) प्रकीर्ण सर्वत्र विस्तृत (सधस्थम्) सहस्थान अर्थात् तीनों लोकों को (त्रिभिः+पदेभिः) तीन पदों से अर्थात् अग्नि वायु, और सूर्य रूप से (विममे) प्राप्त है॥ ३॥

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति। य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा॥४॥

अर्थः—(यस्य) जिस सूर्य के (त्री+पदानि) तीन स्थान (मधुना) मधु से अर्थात् आनन्द से (पूर्णा) पूर्ण हैं। पुनः (अक्षीयमाणा) जिन का कभी क्षय नहीं होता। पुनः (स्वधया) अन्नादि सामग्री से जो (मदन्ति) स्थापित प्राणियों को आनन्दित करते हैं

ऐसे ये तीनों स्थान हैं। (यः+उ) जो सूर्य (एकः) अकेला ही (पृथिवीम्) पृथिवी को (उत) और (द्याम्) द्युलोक को और (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) भूतजात अर्थात् प्राणियों को (त्रिधातु) तीन धातुओं के समान (दाधार) पकड़े हुए हैं॥ ४॥

तदस्य प्रियमभिपाथोअश्यां नरोयत्र देवयवोमदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धु रित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥५॥

अर्थ—[अस्य] इस सूर्य के [तत्+प्रियम्] उस प्रिय [पाथः] आकाश को [अभि+अश्याम्] मैं प्राप्त हूं। पाथ=आकाश। यास्क आदि आचार्य ने ऐसा ही अर्थ किया है। यहाँ 'अश्याम' एक वचन उपलक्षण मात्र है। सब प्राणी सूर्य के प्रिय आकाश में निवास करते हैं। इसी को आगे वर्णन करते हैं [यत्र] जिस आकाश में [देवयवः] दैवीशक्ति—युक्त अथवा देव-सूर्य के चाहने वाले [नरः] नर [मदन्ति] आनन्द प्राप्त करते हैं [उरुक्रमस्य] सम्पूर्ण जगत् का आक्रमण करने वाला [विष्णोः] सूर्य के [परमे+पदे] परम पद में [मध्वः+उत्सः] आनन्द का उत्स-झरनो है। [इत्था] इस प्रकार [सः+हि+बन्धुः] वही सूर्य सब का बन्धु है। विचारने से विद्वानों को विदित होता है कि सूर्य ही प्राणियों का जीवन है। किरण ही सूर्य का पद है। वह सब का उपकारी है इस हेतु वह "परम" कहाता है। और जहां जहाँ वह परमपद [सूर्य किरण] है वहां २ निःसन्देह आनन्द है। इसी हेतु मन्त्र में (मध्वः+उत्स) कहा है॥५॥

तां वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा

अयासः । अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव-
भाति भूरि ॥ ६ ॥

अर्थ—ईश्वर कहता है कि हे नर नारियो । [वाम] तुम दोनों के [वास्तूनि] सुख पूर्वक—निवास योग्य स्थान [गमध्यै] गमन के लिये [उश्मसि] हम वहां चाहते हैं । [यत्र] जहां [भूरिशृङ्गाः] बहुत सींग वाले [अयासः] सदा गमनागमनवाले [गावः] किरण हैं "गावः" शब्द का अर्थ यहां सबों ने किरण ही किया है अर्थात् मनुष्यों का वास वहां हो, जहां सूर्य के किरण आते हों । [अत्र+अह] यहां ही जहां सूर्य के किरण अच्छे प्रकार आते जाते हैं वहां ही [उरुगायस्य] बहुतों से गीयमान [वृष्णः] वर्षा देने वाले सूर्य का [तत् परमम् पदम्] वह परम पद=किरण स्थान [भूरि] बहुत [अवभाति] शोभित होता है ।६।
इस सूक्त में छः मन्त्र हैं । इन का अर्थ ईश्वर पक्ष में भी घटता है । विस्तार के भय से अर्थ नहीं किया विद्वान् लोग ईश्वर पक्ष में भी लगा लेवें । आप लोग देखते हैं कि उरुगाय, क्रम, त्रिपद आदि शब्द विष्णुसूक्त में आते हैं । अन्तिम षष्ठ मन्त्र में 'गो' पद किरण के लिये साक्षात् आया हुआ है । और यह उपदेश होता है कि सूर्य के किरण जहां हों वह स्थान अच्छा है । इन ही मन्त्रों से सायण आदि वामनावतार सिद्ध करते हैं । और इसी 'गोपद' के कारण "त्रिलोक" को "गोलोक" भी कहते हैं एवमस्तु । विष्णुसूक्त से और भी मन्त्र उद्धृत करते हैं :—

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं

परमस्य वित्से ॥

ऋग्वेद मं॰ ७। सूक्त ६६ । १ ॥

(परः+मात्रया) हे बहुत अपरिमित (तन्वा) किरणरूप शरीर से (वृधान) बढ़ने वाले (विष्णो) सूर्य ! (ते) आप की (महित्वम्) महिमा को (न+अन्वश्नुवन्ति) कोई नहीं व्याप्त कर सकता अर्थात् कोई नहीं जान सकता। हे सूर्य [ते] आपके (उभे) दोनों (रजसी) लोक (पृथिव्याः) पृथिवी से लेकर अन्तरिक्ष ये जो दोनों लोक हैं उन को हम लोग अच्छे प्रकार (विद्म) जानते हैं। (देव) हे देव (त्वम्) आप ही (परमस्य) परम जो अन्य लोक लोकान्तर हैं उनके विषय में (वित्से) जानते। अर्थात् ये दो लोक हम साधारण मनुष्यों के ज्ञान गम्य हैं। इन के अतिरिक्त लोक लोकान्तरों को तो सूर्य देव ही जानता है। यहां पुरुषत्व का आरोप करके वर्णन है। जिसको अङ्गरेजी में (Personification) कहते हैं। ऐसे वर्णन से कोई क्षति नहीं ॥१॥

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप। उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥२॥

अर्थः— विष्णो+देव) हे दानादिगुण युक्त सूर्य देव! (न+जायमानः) न विद्यमान प्राणी (न+जातः) और न हो चुके हैं वे प्राणी (ते) आपके (महिम्नः) महिमा के (परमम्=अन्तम्) पर अन्त को (आप) पाते हैं आप का] कौन महिमा है सो आगे कहते हैं (ऋष्वम्) दर्शनीय (बृहन्तम्) महान् (नाकम्) द्युलोक को अर्थात् आप के परितः स्थित ग्रहों को (उद+अस्तभ्नाः) आप ने

ऊपर ही रोक रक्खा है। जिस से वे न गिरजांय इस प्रकार आप इन को पकड़े हुए हैं। यह आप की महान् दहिमा है। और (पृथिव्याः) पृथिवी की (प्राचीम्+ककुभम्) प्राची दिशा को (दाधर्थ) धारण किये हुए हैं। यह उपलक्षणमात्र है। सम्पूर्ण पृथिवी को आप पकड़े हुए हैं॥ २॥

इरावती धेनुमती हि॒भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवी मभितो मयूखैः॥३॥

अर्थः—ये द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों (मनुषे) मनुष्य के लिये (इरावती) अन्नादि पदार्थ देने वाले हैं पुनः (धेनुमती) गौ आदि पशुओं से युक्त हैं (सूयवसिनी) शोभन २ पदार्थ देने वाले हैं (दशस्या) सर्वदा कुछ न कुछ देने वाले ऐसे जो (हि) निश्चय (भूतम्) होते हैं। ये (रोदसी) अवरोधन करने वाले अपनी ओर आकर्षण करने वाले दोनों लोक हैं। (एते) इन को (विष्णो) हे सूर्य! आप (व्यस्तभ्नाः) पकड़े हुए हैं और (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभितः) चारों तरफ से (मयूखैः) किरणों से अर्थात् आकर्षण शक्ति से (दाधर्थ) आप पकड़े हुए हैं। संस्कृत भाषा में 'मयूख' नाम किरण का है यह अति प्रसिद्ध है। यहां किरण-पद से सूर्य की आकर्षण-शक्ति का ग्रहण है। इसी शक्ति से पृथिवी अपने स्थान पर भ्रमण करती हुई स्थित है। अन्यान्य कोई पदार्थ इस को धारण करने वाला नहीं। इस वैदिकभाव को न समझ कर सायण महीधर आदिक भाष्यकर्त्ताओं ने कैसा २ अनर्थ किया है सो देखिये। यहां सायण अर्थ करते हैं यथाः—

'आपच पृथिवीं प्रथिता मिमां भूमिम्। अभितः सर्वत्र

स्थितः मयूखैः पर्वतैर्दाधर्थ धारितवानसि यथा न चलति तथा दृढीकृतवानित्यर्थः ।

महीधर लिखते हैं यथाः—

पृथिवीं मयूखैः स्वतेजोरूपैर्नानाजीवैर्वराहाद्यनेकावतारैर्वा अभितो दाधर्थ दधर्थ सर्वतो धारितवानसि ।

मयूख शब्द का अर्थ सायण 'पर्वत' करते हैं और समझते हैं कि भगवान् ने इस पृथिवी के ऊपर हिमालय आदि पर्वत स्थापित किये हैं जिस से पृथिवी चलायमान हो कर नष्ट न होजाय। हे विद्वानो जिनको पृथिवी का आधार या स्थिति नहीं ज्ञात है वे वेदों का भाष्य क्या कर सकते हैं। प्रत्युत वेदों पर कलङ्क लगाये हैं। इसी प्रकार महीधर 'मयूख' शब्द का अर्थ 'नानाजीव' और वराहादि अनेक अवतार करते हैं। यह सब भ्रम इन भाष्य-कारों को इस लिये हुआ है कि वे लोग आकर्षण विद्या से अपरिचित थे और पृथिवी और सूर्य के गुणों को नहीं जानते थे ॥ २ ॥

त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां विचक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ।३
वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ।४

ऋ० मं० ७।१०० ॥

त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति । ऋ० ८।२९।७

इत्यादि मन्त्रों में भी इसी त्रिविक्रम सूर्य का वर्णन है। अब आगे

ऐसे मन्त्र मिलते हैं जहां सायणादि को भी विष्णु—शब्द का अर्थ सूर्य करना पड़ा है । यथा:—

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीं रवीविपत् । बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ।

ऋ० १ । १५५ । ६॥

अर्थः, यह आदित्यात्मा विष्णु (चतुर्भिः + साकम्) चार के साथ (नवतिम् + च) ९० अर्थात् कालावयवों को (नामभिः) अपनी प्रेरणा विशेष से (वृत्तम् + न + चक्रम्) वर्तुलाकार = गोलाकार चक्र के समान (व्यतीन्) विविध प्रकार से (अवीविपत्) घुमाते हुए स्थित हैं । आगे सायण ९४ चौरानवे का हिसाब इस प्रकार लगाते हैं । एक सम्वत्सर । दो अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन) पांच ऋतु । द्वादश मास । चतुर्विंशति २४ अर्धमास । तीस अहोरात्र । आठ प्रहर और द्वादश लग्न ये सब मिल कर ९४ होते हैं । आगे सायण शङ्का करते हैं कि आदित्य तो अन्य ग्रहों के समान स्वयं भ्रमण करते फिर दूसरों को कैसे घुमा रहे हैं । इस के उत्तर में कहते हैं कि यह दोष नहीं । क्योंकि सूर्य का दूसरा रूप ध्रुव विष्णु है जो सभी को घुमा रहे हैं । अथवा सूर्य के ही भ्रमण के अधीन अन्यों का भ्रमण है । इस हेतु कहा गया है कि सूर्य घुमा रहे हैं । इस प्रकार कालात्मक विष्णु (बृहच्छरीरः) बड़ा शरीर-वाले (ऋक्वभिः) स्तुतियों से (विमिमानः) सबों को यथा-स्थान में स्थापित करते हुए स्थित हैं पुनः (युवा) नित्यतरुण इसी हेतु (अकुमारः) अनल्प वह विष्णु (आहवम्) यज्ञ देश में (प्रत्येति) आते हैं । यह सायणाचार्य के भाष्य का अभिप्राय है । यहां 'विष्णु' का अर्थ कालात्मक आदित्य किया है । विवश हो कर सायण को यह अर्थ करना पड़ा है क्योंकि

यहां ९४ चौरानवे का वर्णन है जो सूर्य में ही घटते हैं। परन्तु तथापि सायण ने विष्णु को सूर्य का मूर्त्यन्तर माना ही है॥ यहां सायण ने 'चतुर्भिः साकं नवतिम्' इस पद की व्याख्या में क्या ही अशुद्धि की है। ९४ चौरानवे संख्या गिनाने के लिये क्या हिसाब लगाया है॥ यहां इस प्रकार अर्थ हो सकता है यथाः=९०×४=३६० नब्बे को चार से गुणा करने पर ३६० होता है॥ इतने वर्ष में दिन होते हैं। वेद में ३६० दिनों का वर्ष मानने की बात बहुत आती है [यद्यपि ३६४ वर्ष में दिन होते हैं तथापि यहां जो ३६० कहे गये हैं इस का कारण अधिक मास है वेद में अधिक मास भी माना गया है जिस से इन की पूर्ति हो जाती है) इनको ही मानो सूर्य घुमा रहे हैं। पुनः पुनः वेही ऋतु वेही दिन आते रहते हैं। यह इसका विस्पष्ट भाव प्रतीत होता है। चतुर्भिःसाकम्+नवतिं। का अर्थ है कि ४×९० को गुणा कर के जो दिन की संख्या आती है उन्हें सूर्य घुमा रहे हैं अथवा प्रधानतया ९४ पदों को अपने साथ सूर्य घुमा रहे हैं। यहां पर सूर्य को 'युवा' और "अकुमार,, कहा है।

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम्। ऋ० । ८ । १५ । ९

सायणकृत अर्थः-हे इन्द्र! (बृहन्) बड़े [क्षयः] और निवास के कारण [विष्णुः मित्रः+वरुणः] विष्णु मित्र और वरुण [त्वाम्] आपकी [गृणाति] स्तुति करते हैं [त्वाम्+अनु] आप के पीछे (मारुतम्+शर्धम्) मारुतसम्बन्धी बल [मदति] मदता है। मदोन्मत्त होता है। यहां विष्णु इन्द्र की स्तुति करता है। वह विष्णु, कौन है?

उत नः सिंधुरपां तन्मरुतस्तदश्विना।

इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सयोषसः । ऋ० ८।२५।१४

अर्थ—[उत] और (अर्यमा + सिन्धुः) जल देने वाला मेघ (नः) हमारे (तत्) उस धन की रक्षा करे। [मारुतः] मरुद्गण (तत्) उस धन की रक्षा करें [अश्विना] अश्विदेव रक्षा करें (इन्द्रः + विष्णु) इन्द्र और विष्णु और (मीढ्वांसः) सब कामों के सेचन करने वाले सकल देव (सयोषसः) संगत हो अर्थात् मिलकर धनकी रक्षा करें॥ यह सायण का अर्थ है। यहाँ सब देवों के साथ धनरक्षा के लिये विष्णु प्रार्थित हुआ है। क्या एक ही विष्णु धनकी रक्षा करने में समर्थ नहीं है।

"इन्द्र, विष्णु और आख्यायिका"

इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥

ऋ० ७।९९।५॥

सायण कृतार्थानुवादः—(इन्द्राविष्णू) हे इन्द्र विष्णु! आप दोनों ने (शम्बरस्य) शम्बर नाम असुर के (दृंहिताः) दृढीकृत (नव + नवतिं + च) ९९ निन्नानवे (पुरः) नगर [श्नथिष्टम्] नष्ट कर दिये। और [शतम् + सहस्रम् + च] सौ और सहस्र [वर्चिनः + असुरस्य] तेज युक्त असुर के (अप्रति + वीरान्) वीर साथ ही (हथः) छिन्न भिन्न कर मार दिये। इसी मन्त्र के समान एक यह मन्त्र है।

अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद् भरता सोम मस्मै ।

ऋ० २।१४।६ ॥

हे [अध्वर्यवः] अध्वर्यु । [यः] जिस इन्द्र ने [शम्बरस्य] शम्बर नाम मायावी असुर के [पूर्वीः] पुरातन [शतं+पुरः] सौ नगर [अश्मनेव] पत्थर के समान वज्र से [बिभेद] तोड़डाले और [यः] जिस [इन्द्रः] इन्द्र ने [वर्चिनः] तेज युक्त, अथवा वर्चीनामक असुर के [शतम्+सहस्रम्] सौ और सहस्र वीर [अपावपत] पृथिवी पर मार गिराये। [अस्मै] इस इन्द्र को [सोमम्+भरत] सोम दो ।

यहां आप लोग देखते हैं कि इन्द्र और विष्णु मिलकर युद्ध करते हैं परन्तु इन्द्र प्रधान और विष्णु गौण हैं। क्योंकि शम्बर की नगरों को इन्द्र अकेला ही नाश करने वाला है। जैसा कि द्वितीय मन्त्र में वर्णित है। एवमस्तु। यहां पर भी सायण ने अर्थ में बड़ी अशुद्धि की है॥ हम आप लोगों से कह चुके हैं कि 'शम्बर" नाम मेघ का है। निघण्टु १। १०। देखिये। और ९९ यह संख्या समस्तार्थक है अर्थात् सम्पूर्ण वाचक है। क्योंकि ९ से अधिक अङ्क नहीं होते ९९ में भी नौ ही नौ हैं। इस हेतु शत सहस्र पद आए हैं जो अनन्त वाचक हैं अर्थात् सब। इन्द्र नाम यहां वायु का है और विष्णु नाम सूर्य का है। वायु और सूर्य दोनों मिलकर शम्बरासुर अर्थात् मेघ देवता के निखिल नगरों को भ्रष्ट कर देते हैं। वायु से विशेष कर मेघ छिन्न भिन्न होजाता है। अतः वायु वाचक इन्द्र की यहां प्रधानता कही गई है। इन्द्र और विष्णु ये दोनों शब्द बहुधा साथ २ आये हैं ऋग्वेद मण्डल ६ सूक्त ६९ देखिये। इस सूक्त में ८ मन्त्र हैं आठों मन्त्रों में इन्द्र विष्णु आया है।

१—इन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।

२—इन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।

३—इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा ।

४—इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।

५—इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यम् ।

६—इन्द्राविष्णू हविषा वावृधाना ।

७—इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्यसोमस्य ।

८—इन्द्रश्च विष्णो यदस्पृधेथाम् ।

विश्वेत्ता विष्णुराभर दुरुक्रमस्त्वेषितः ।

शतं महिषान् क्षीरपाक मोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ॥

ऋ० ८ । सू० ७७ । मन्त्र १० ।

सायणकृतार्थानुवाद :—यहां सायण कहते हैं कि निरुक्तकार और ऐतिहासिक के मत के भेद से इस ऋचा की योजना अर्थात् अर्थ दो प्रकार से होते हैं । निरुक्तकार के पक्ष में यह अर्थ होता है । हे इन्द्र [ता] जो जल आप को उत्पन्न करना उचित था उस जल को [विष्णुः] व्यापनशील आदित्य ही [आभरत्] लोगों को दे रहे हैं, वह विष्णु कैसा है । (उरुक्रमः) बहुत गति वाला हे इन्द्र ! (त्वेषितः) आप से प्रेरित हो, वह विष्णु केवल जल को नहीं लेआते हैं, किन्तु (शतम् × महिषान्) सैकड़ों पशुओं को लाते हैं । सायण कहते हैं यहां, महिष शब्द गवादिक का उपलक्षक है । अथवा शतशब्द अपरिमितवाची है और 'महिष' नाम 'महत्' का है अर्थात् यज्ञ का नाम यहां 'महिष' है । अर्थात् यजमान को वह आदित्य असंख्य यज्ञ देते हैं और (क्षीर पाकम्) पायस= खीर देता है 'क्षीरपाक' यह पुरोडाशादि का उपलक्षक है और (ओदनम्) सब के लिये दृष्टिदान द्वारा ओदन देते हैं और (इन्द्रः) इन्द्र [वराहम्] जल पूर्ण मेघ का हनन करते हैं । वह मेघ कैसा है

[एमुषम्] जल के चुरानेवाला। यह निरुक्त पक्ष का अर्थ हुआ इस पक्ष में विष्णु का आदित्य अर्थ सायण ने किया है और वराह शब्द का 'मेघ' अर्थ किया है अब ऐतिहासिक पक्ष का अर्थ करते हैं। सा० का० चरक ब्राह्मण में इतिहास कहा है कि विष्णु जो यज्ञ रूप ने देवताओं से अपने आत्मा को छिपा लिया। उस को अन्य देवता नहीं जानसके परन्तु इन्द्र ने उसको जान लिया। उस ने इन्द्र से कहा कि आप कौन हैं? । इन्द्र ने उत्तर दिया कि मैं असुरों का दुर्ग हनन करने वाला हूं। परन्तु आप कौन हैं? उसने कहा कि मैं दुर्गादाहर्ता हूं। यदि आप असुरों के दुर्ग हनन करने वाले हैं। तो यह धन का चोर वराहासुर,प्रस्तरमयी २१ इक्कीस पुरियों के पार में वास करता है। वहां असुरों का बहुत अच्छा धन है। उसको आप मारें। इन्द्र ने उस की सब नगरियों का भेद कर उस का हृदय तोड़ डाला और उस समय जो कुछ वहां धन था। विष्णु उसी ले आए। इतना इतिहास कह अब आगे अर्थ करते हैं। हे इन्द्र! [त्वेषितः] आप से प्रेरित वह [विष्णु] यज्ञरूपी विष्णु अर्थात् जब विष्णु ने यह कहा कि "मैं दुर्गादाहर्ता" हूं तब आपने कहा कि यदि आप दुर्गादाहर्ता हैं तो उस से धन ले आवें इस प्रकार आप से प्रेरित वह यज्ञरूपी विष्णु [उरुक्रमः] शीघ्रगतिमान् हो कर [विश्वा+इत्+] उन सब धनों को [अभरत्] ले आए। किन किन पदार्थों को ले आए सो आगे कहते हैं [शतम्+महिषान्] अनेक प्रशस्त पदार्थों को अथवा उस असुर के वाहन रूप महिषों को ले आए। और [क्षीरपाकम्+ओदनम्] पक्का हुआ ओदन को। [इन्द्रः] इन्द्रने (एमुषम्) धन के चोराने वाले (वराहम्) वराह रूपी असुर को हृदय में ताड़न किया। यह सायण भाष्य का अर्थ है। यहां सायण द्वितीय ऋचा दे कर इस इतिहास की पूर्त्ति करते हैं वह ऋचा यह है।

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता॥

ऋ० १।६१॥ मन्त्र॥७॥

सायणकृतार्थानुवाद (इद्+उ) निश्चय (मातुः) सृष्टि द्वारा सकल जगत् के निर्माण करने वाले (महः) महान् (अस्य) इस यज्ञ के सम्बन्धी (सवनेषु) प्रातस्सवनादि तीनों सवनों में (पितुं) सोमलक्षण अन्न को (सद्यः) तत्काल (पपिवान्) ज्यों ही अग्नि में डाला गया त्यों ही अग्नि ने उस का पान कर लिया और (चारु) अच्छे २ (अन्ना) धानाकरंभादिहविर्लक्षणरूपान्न खाए और (विष्णुः) जगत् का व्यापक विष्णुः (पचतं) असुर के परिपक्व धन (मुषायद्) चोरी कर ले आये (सहीयान्) अतिशय बलवान् (अद्रिमस्ता) वज्र के फेंकने वाले इन्द्र ने (तिरः) प्राप्त हो कर (वराहम्) मेघ को ताड़ित किया अथवा विष्णु जो स्तुत्य दिवसात्मक यज्ञ है क्योंकि यज्ञ ही विष्णु रूप हो कर देवताओं से छिप गया था वह विष्णु असुर के परिपक्व धन चोरा कर ले आया तदनन्तर दीक्षोपसदात्मक सात दिनों के पर में विद्यमान जो अद्रि उस के नाश करने वाला इन्द्र सातो दुर्गों के निकट जो उत्कृष्ट दिवस रूप यज्ञ को ताडित किया यहां पर सायण भाष्य विस्पष्ट नहीं है क्योंकि विष्णु कृत असुरों का धन हरण करना और वराहरूप मेघ का वा दिवस का वा यज्ञ का इन्द्रकृत हनन होना इन दोनों से कुछ सम्बन्ध नहीं है इन दोनों ऋचाओं से सायण ने सिद्ध किया है कि एक असुर था जिस को इन्द्र ने मारा और उस के धन विष्णु ले आये परन्तु सायण ने इस के अर्थ करने में बड़ी असावधानता दिखाई है कभी वराह शब्द का अर्थ मेघ और कभी उत्कृष्ट दिवस रूप यज्ञ करते हैं इसी प्रकार विष्णु शब्द आदि के अर्थ करने में भी अशुद्धि की है। यथार्थ में इन मन्त्रों का अर्थ सायण ने नहीं समझा। यहां विष्णु का अर्थ सूर्य और इन्द्र

का अर्थ वायु है और वराह और ओदनादि शब्द मेघ वाचक हैं सूर्य का किरण वायु की द्वारा मेघ उत्पन्न किया करता है जिस के द्वारा जगत् में नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं जब मेघ बन जाता है तब इन्द्र अर्थात् वायु मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है यही इन्द्रकृत वराह-हनन है। अब द्वितीय अन्न को इस के साथ जो सायण ने मिलाया है सो ठीक नहीं है यहां विष्णु शब्द का अर्थ यज्ञ है उस से जगत् में विशेष आनन्द होता है यही विष्णु कृत अन्न का हरण है परन्तु यह अन्न जब तक वायु देवता कृपा न करे और मेघ को छिन्न भिन्न कर न बरसावें तो नहीं हो सकता यही इन्द्रकृत वराहहनन है वराह नाम मेघ का है इस में निघण्टु और निरुक्त प्रमाण है॥

अत्र निरुक्तं वराहोमेघोभवति वराहारो वरमाहारमाहार्षीदिति च ब्राह्मणम्। अत्रसायणकृतार्थः। वरमुदकम् आहारो यस्य यद्वा वरमाहरतीति वराहारः सन् पृषोदरादित्वात् वराह इत्युच्यते यज्ञपक्षेतु वरंच तदहो वराहः राजाहः सखिभ्यःइति समासान्तटच् प्रत्ययः

निघण्टु में मेघ-नामों में 'वराह' शब्द आया है। वराह-शब्द का अर्थ यास्काचार्य्य अपने निरुक्त में करते हैं यथा:—'वराह' नाम मेघ का है क्योंकि वर=जल। आहार=भोजन खाद्यवस्तु। जिस का भोजन जल है उसे 'वराह' कहते हैं। सायण ने व्याकरणानुसार 'वराह' शब्द की सिद्धि की है सायण और भी कहते हैं कि 'वराह' नाम यज्ञ का भी है क्योंकि वर=उत्तम। अहः=दिन। जो उत्तम दिन हो उसे 'वराह' कहते हैं। जिस दिन यज्ञ होता है वह सब से उत्तम दिन है अतः यज्ञ का नाम वराह है॥ इस प्रकार सायण आदि भाष्यकार कभी २ साधुशब्दार्थ करते हुए भी क्योंकर भ्रम में पड़जाते हैं सो नहीं मालूम। पुनः—

किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि। मा वर्पो अस्मदपगूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ।

ऋ० ७।१००।६॥

इस ऋचा के व्याख्यान में सायण लिखते हैं यथा—

पुरा खलु विष्णुः स्वं रूपं परित्यज्य कृत्रिमरूपान्तरं धारयन् संग्रामे वसिष्ठस्य साहाय्यं चकार। तं जानन् ऋषिरनया प्रत्याचष्टे ॥

पूर्व काल में अपना रूप त्याग कृत्रिम दूसरा रूप धारण कर विष्णु भगवान् ने संग्राम में वसिष्ठ जी की सहायता की इस को जानते हुए ऋषि ने इस ऋचा से कहा है। यहां हमें सायण की बुद्धि के ऊपर बहुत शोक होता है। इस अवस्था में वेद नित्य कैसे रहा। एवमस्तु यह ऋचा निरुक्त में भी आया है। यास्क० कहते हैं॥

शिपिविष्टो विष्णुरिति विष्णोर्द्वे नामनी भवतः।

कुत्सितार्थीयं पूर्वं भवतीत्यौपमन्यवः।

विष्णु के दो नाम हैं एक 'शिपिविष्ट' और दूसरा 'विष्णु' 'शिपिविष्ट' यह नाम निन्दासूचक है ऐसा औपमन्यव आचार्य मानते हैं। इतना कहकर पुनः यास्क अपना मत प्रकाशित करते हैं।

'अपिवा प्रशंसानामैवाभिप्रेतंस्यात्' अथवा 'शिपिविष्ट' नाम प्रशंसा सूचक ही है। यहां इस शब्द के दो अर्थ इस प्रकार हैं।

शेप इव निर्वेष्टितोऽसि अप्रतिपन्नरश्मिः।

अथवा—शिपिविष्टोऽस्मि इति प्रतिपन्नरश्मिः। शिपयोऽत्र रश्मय उच्यन्ते तैः राविष्टोभवति।

उदय काल में सूर्य अच्छे प्रकार शोभित नहीं होता है। समस्त किरण लुप्त प्रतीत होते हैं और रक्त भासित होने से कुरूप सा दीखता है। अर्थात् अपने किरणों से विरहित होने के कारण "शिपिविष्ट" यह नाम निन्दा सूचक है। अथवा शिपि = किरण उन से जो सम्यक् आविष्ट = सम्यक् परिपूर्ण वह शिपिविष्ट॥ इस पक्ष में प्रशंसासूचक है अर्थात् एक पक्ष में 'शेर' (कुरूप वस्तु) के समान जो भासित हो। द्वितीयपक्ष में शिपि (किरण) से आविष्ट हो। इस प्रकार इस के दो अर्थ होते हैं।

अथ मन्त्रार्थः—(विष्णो) हे सूर्य! (ते) आपको (किम्) क्या [परिचक्ष्यम् + भूत] प्रख्यात = प्रकाशित करना है अथवा (ते) आप (किम्) क्या यह [परिचक्ष्यम्] कररहे हैं (यत्) जो आप (प्र + ववचे) कहते हैं कि मैं (शिपिविष्टः + अस्मि) शिपिविष्ट हूं। हे सूर्य! (अस्मत्) हम लोगों से आप (एतत्) इस (वर्पः) रूप को (मा) नहीं (अप + गूह) छिपावें (यत्) जिस रूप को (अन्यरूपः) रूपान्तर होकर = अन्य रूपको धारण कर (समिथे) आकाश में (यत् + बभूव = प्राप्नोषि) प्राप्त होते हैं उस रूपको आप हम लोगों से न छिपावें।

इस मन्त्र का भाव बहुत विस्पष्ट है। हे आर्य्यसन्तानो! सोचो। प्रातःकाल के सूर्य का यह वर्णन है॥ मानों प्रातःकाल का सूर्य कहता है कि मैं "शिपिविष्ट" हूं अर्थात् मुझ में किरण—प्रकाश नहीं है आप लोगों को कैसे प्रकाशित करूं। इस पर सब देव मिलकर कहते हैं कि आप यह क्या कहरहे हैं आप तो 'शिपिविष्ट' हैं अर्थात् आप किरणों से शोभित हैं। मान भी लेवें कि आप में इस

समय किरण नहीं हैं। तथापि हे विष्णो! जब इस प्रातःकालिक 'शिपिविष्ट रूप' को त्याग 'विष्णुरूप' अर्थात् व्यापक रूप को धरते हैं तब आप उस रूप से हम देवों की रक्षा कर सकते हैं। इस व्यापक—विष्णुरूप को मत छिपावें। इस वर्णन से विस्पष्टतया प्रतीत होता है कि प्रातःकालिक सूर्य को 'शिपिविष्ट' कहते हैं और जब इस के किरण सर्वत्र पृथिवी पर फैल जाते हैं तब वह 'विष्णु' कहलाता है अब आगे कहते हैं कि आप का जो प्रातःकालिक 'शिपिविष्ट' रूप है वह भी प्रशंसनीय है मैं उसी की प्रशंसा करता हूं॥

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्टनामार्य्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्। तन्त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके॥ ५॥

अर्थ— यास्काचार्य्य ने प्रथम षष्ठ का अर्थ कर तब पञ्चम का अर्थ किया। वही क्रम मैंने भी रक्खा। (शिपिविष्ट) हे किरणों से युक्त सूर्य्य! (ते) आप के (तत्+नाम) उस प्रसिद्ध 'शिपिविष्ट' नाम को (प्र+शंसामि) प्रशंसा करता हूं। क्योंकि (वयुनानि+विद्वान्) आप के सम्बन्ध में जितने ज्ञान हैं अर्थात् आप को जानने के लिये जितनी विद्याएं हैं उन सबों को जानने वाला मैं हूं क्योंकि (अर्य) मैं सब विद्याओं का स्वामी हूं। हे सूर्य्य! तथापि आप महान् हैं। मैं लघु हूं। सो आगे कहते हैं। (तवसम्) अति महान् (त्वाम्) आप को (अतव्यान्) अमहान्=लघु मैं (गृणामि) स्तुति करता हूं आप कैसे हैं (अस्य+रजसः) इस पृथिवी के (पराके) बहुत दूर (क्षयन्तम्) स्थित हैं॥ ५॥ भाव इसका यह है कि सूर्य इस पृथिवी से बहुत दूर है इस हेतु इस के सम्बन्ध में कुछ जानना अति कठिन है॥ परन्तु ऋषि लोग तथापि इस को अच्छे प्रकार जानते हैं। इस हेतु प्रातः

कालिक सूर्य को निन्दनीय, अथवा किरणरहित नहीं समझते हैं अज्ञानी तो अवश्य ही प्रातःकाल सूर्य को किरणरहित ही समझते हैं परन्तु ज्ञानी लोग नहीं। वे समझते हैं कि पृथिवी की अवरोध (रुकावट) से सूर्य इस प्रकार भासित होता है। यथार्थ में सूर्य ऐसा नहीं है। इस हेतु ऋषि कहते हैं कि प्रातःकालिक सूर्य की प्रशंसा करता हूं अर्थात् मैं इस को समझता हूं अन्य लोग नहीं समझ रहे हैं। यहां सौरविद्या का वर्णन है।

'यज्ञवाचक विष्णु शब्द'

दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन छन्दसा।
ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः।
अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा। ततो निर्भक्तो०। पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो०। अस्मादन्नात्। अस्यै प्रतिष्ठायै। अगन्म स्वः। संज्योतिषा भूम।

यजुः २। २५।

(विष्णुः) यज्ञ (जागतेन + छन्दसा) जगतीछन्द से अनुष्ठीयमान हो (जिस में जगती छन्द पढ़े गये हों ऐसा यज्ञ) (दिवि) द्युलोक को (व्यक्रंस्त) प्राप्त होता है (ततः) उससे अर्थात् यज्ञ के फैल जाने से (निर्भक्तः) दुष्ट पदार्थ वा दूषित वायु आदि निकल जाता है। कौन निकल जाता है सो आगे कहते हैं (यः) जो दुष्ट वायु आदि वस्तु (अस्मान्) हम जीवों से (द्वेष्टि) द्वेष रखती है और (वयम्+च) हम लोग जिस से (द्विष्मः) द्वेष रखते हैं। ऐसी वस्तु उस

यज्ञ के द्वारा विनष्ट हो जाती है अर्थात् अग्नि में प्रक्षिप्त जो रोग-नाशक पुष्टिप्रदायक और जलादिसंशोधक हवनसामग्री, वह भस्म होकर वायुद्वारा बहुत दूर तक पहुंचती है और वहां २ पहुंच कर रोगादिजनक वस्तु को नष्ट कर देती है। इस हेतु वेद में कहा जाता है जो वस्तु हम लोगों से द्वेष करती है एवं जिससे हम लोग द्वेष करते हैं वह वस्तु यज्ञ के द्वारा नष्ट होजाती है। आगेभी यही भाव समझना चाहिये। (विष्णुः) यज्ञ (त्रैष्टुभेन+छन्दसा) त्रिष्टुप्छन्दसे अनुष्ठीयमान हो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षलोक को (व्यक्रंस्त) प्राप्त होता है। (तत+निर्भक्तः] पूर्ववत्। [विष्णुः) यज्ञ (गायत्रेण +छन्दसा] गायत्रीछन्द से अनुष्ठीयमान हो [पृथिव्याम्] पृथिवीलोक में [व्यक्रंस्त] फैल जाता है [तत+निर्भक्तः] पूर्ववत् ।[अस्मात्+अन्नात्] जगत् में प्रत्यक्षतया दृश्यमान जो अन्न अर्थात् खाद्य सामग्री है। जाति में यहां एक वचन है उसके निमित्त यह यज्ञानुष्ठान है केवल इसी के लिये नहीं। किन्तु [अस्यै+प्रतिष्ठायै] इस प्रत्यक्षप्रतिष्ठा के लिये भी यज्ञानुष्ठान है [स्वः] सुख [अगन्म] पाते हैं व [ज्योतिषा] ईश्वरीयज्योति=प्रकाश से [सम्+अभूम] संगत होते हैं अर्थात् यज्ञ से ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों कार्य्य सम्पन्न होते हैं॥ इस मन्त्र में विष्णु शब्द का अर्थ महीधर भी 'विष्णुर्यज्ञपुरुषः' यज्ञ ही करते हैं। हमारे आचार्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीजी भी 'योवेवेष्टि व्याप्नोति अन्तरिक्षस्थ वाय्वादि पदार्थान् स यज्ञः' ।-यज्ञोवै विष्णुः शतपथ यज्ञ ही अर्थ करते हैं इस में शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण भी दिया है। एक मन्त्र और भी ऐसा ही है वह भी सुनिये:—

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द आरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व। विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द आरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व। विष्णोः

क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्द आरोह दिवमनु विक्रमस्व। विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽनुष्टुभं छन्द आरोह दिशोऽनु विक्रमस्व। यजु। १२। ५।

अर्थः—यहां यज्ञ के फैलने का वर्णन है। यज्ञ का जो क्रम अर्थात् यज्ञ की सामग्री का जो चारों तरफ गमन है उसको सम्बोधन कर कहते हैं। आप [विष्णोः + क्रमः + असि] यज्ञ के क्रम है इसी हेतु [सपत्नहा] सपत्न अर्थात् जीवों के आरोग्य के नाशकरनेवाले जो शत्रु हैं उनको भी आप नष्ट करनेवाले हैं। हे यज्ञक्रम। प्रथम आप [गायत्रम्+छन्दः+आरोह] गायत्री छन्द को प्राप्त करें [अनु] तत्पश्चात् [पृथिवीम्] पृथिवी पर [विक्रमस्व] फैलें। आप [विष्णोः +क्रमः+असि] यज्ञ के क्रम हैं। इसी हेतु (अभिमातिहा) अभिमाति घातक पाप उसको नष्ट करने वाले हैं (त्रैष्टुभ + छन्दः + आरोह) त्रिष्टुभ् छन्द को प्राप्त करें (अनु) पश्चात् (अन्तरिक्षम् + विक्रमस्व) अन्तरिक्ष लोक में व्याप्त होवें। पुनः (विष्णोः+क्रमः+असि) विष्णु के आप क्रम हैं। इसी हेतु (अरातीयतः+हन्ता) शत्रु के हनन करनेवाले हैं [जागतम्+छन्दम् आरोह] जगती छन्द को प्राप्त करें [अनु] पश्चात् [दिवम्] द्युलोक तक [विक्रमस्व] फैल जांय। पुनः (विष्णोः+क्रमः+ असि) यज्ञ के आप क्रम हैं इसी हेतु (शत्रूयतः) शत्रुओं के (हन्ता) नाश करने वाले हैं (आनुष्टुभं+छन्दः+ आरोह) अनुष्टुभ् छन्द को प्राप्त करें (अनु) तत्पश्चात् (दिशः) सर्व दिशाओं में (विक्रमस्व) फैलजांय। यह मन्त्र विद्वान् में भी घटता है। क्योंकि विद्वान भी विष्णु अर्थात् सर्व व्यापक ब्रह्म के क्रम अर्थात् पराक्रम= प्रताप स्वरूप हैं। अर्थात् उसके तत्त्ववित् हैं। वे गायत्री आदि छन्दों से निःसृत अर्थ को जान विविध यज्ञादि प्रस्तुत कर पृथिवी से लेकर द्युलोक पर्यन्त गमन कर सकते हैं॥ ५॥ इन दोनों मन्त्रों में एक रहस्य यह है। शतपथादि में कहा गया है कि:—

गायत्री वै प्रातः सवनं वहति । त्रिष्टुभ्माध्यंदिनं सवनम् जगती तृतीयसवनञ्च् । शत० कां० ४ । २ ॥
गायत्रं वै प्रातःसवनम् । त्रैष्टुभं माध्यदिनं सवनम् । जागतं तृतीयसवनम् । शत० कां० ४ । ५ ॥

यज्ञ में प्रतिदिन तीन सवन (यज्ञ) होते हैं। प्रातः सवन, माध्यदिनसवन और तृतीय सवन। प्रातः काल के सवन में मुख्यतया गायत्री छन्द के मन्त्र पढ़े जाते हैं और माध्यदिन सवन में त्रिष्टुभ छन्द के मंत्र और तृतीय सवन में जगती छन्द के मन्त्र पठित होते हैं। यह यज्ञ का एक साधारण नियम है। यह नियम ईश्वरीय आज्ञानुकूल ही है। अब आप लोग 'दिवि विष्णु र्व्यक्रंस्त' इस मंत्र पर ध्यान दीजिये। मन्त्र कहता है कि 'जगती छन्द के साथ यज्ञ द्युलोक को प्राप्त होता है'। यह तृतीय सवन का वर्णन है। तृतीय सवन में जगती छन्द पढ़े जाते हैं। और द्युलोक पदार्थ के शोधन के लिये होता है। पुनः मन्त्र कहता है कि 'त्रिष्टुभ छन्द से यज्ञ अन्तरिक्ष को प्राप्त होता है' यह माध्यदिन सवन का वर्णन है जिसमें त्रिष्टुभ छंद पढे जाते हैं। और यह अन्तरिक्षस्थ पदार्थ के शोधन के लिये होता है। पुनः मन्त्र कहता है कि 'गायत्री छन्द से यज्ञ पृथिवी में फैलता है' यह प्रातः सवन का वर्णन है। इस में गायत्री छन्द पढ़े जाते हैं और पृथिवीस्थ पदार्थ शोधन के लिये होता है॥

द्वितीय मन्त्र (विष्णोः + क्रमोऽसि) का भी भाव समान ही है। इन दो मंत्रों से विस्पष्ट है कि विष्णु नाम यज्ञ का है। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु क्रमका वर्णन है। और वहां कहा गया है कि विष्णु नाम यज्ञ का है। इस प्रकार वेदों के बहुत स्थलों में विष्णु शब्द यज्ञार्थ में प्रयुक्त हुआ है। हे विद्वानों! यदि सब प्रयोग यहां दरसावें तो ग्रंथ बहुत विस्तार हो जायगा। हमने आप लोगों को बहुत

से मंत्रों का अर्थ सुनाया इस में सन्देह नहीं कि विष्णु सम्बन्धी मन्त्र बहुत हैं। जिनका अर्थ नहीं किया आप लोग स्वयं प्रकरणानुकूल विचार लेवेंगे। परन्तु आप लोग निश्चय जानें कि वामनावतार की कथा से इन का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इस की चर्चा आई है उसे भी संक्षेप से सुना देना हम उचित समझते हैं।

देवाश्च वा असुराश्च। उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे ततो देव। अनुव्यमिवासु रथहासुरा मेनिरेऽस्माक मे वेदं खलुभुवनामिति ॥१॥
ते होचुः हन्तेमां पृथिवीं विभजामहै तां विभज्योपजीवमे तिता औक्षणैश्चर्मभिःपश्चात् प्राञ्चो विभजमाना अभियु ॥२ तद्वै देवा शुश्रुवुः। विभजन्ते ह वा इमामसुराः पृथिवींप्रेत तदेष्यामो यत्रेमामसुरा विभजन्तेके ततः स्यामयदस्यै न भजेमहीति। ते यज्ञ मेव विष्णु पुरस्कृत्येयुः ॥

शत० कां० १ । २

अर्थः—निश्चय, देव और असुर दोनों ही प्रजापति के सन्तान थे और वे दोनों अपनी २ श्रेष्ठता के लिये सदा स्पर्धा किया करते थे। एक समय, देव गण लोभित से होगये। असुरों ने विचार किया कि, निश्चय, यह सम्पूर्ण भुवन हम लोगों का ही है ॥ १ ॥ इस हेतु वे परस्पर बोले कि हे भाइयों! आते जाओ हम लोग मिलकर इस पृथिवी का विभाग करें और इस का विभाग कर जीवें। यह सम्मति करके उन्हों ने बैल के चर्म से पृथिवी का पश्चिम से पूर्व तक विभाग करना आरम्भ किया ॥ २ ॥ देव गणों ने यह सुन लिया और पर-

स्पर बोल उठे कि इस पृथिवी को असुर लोग बांट रहे हैं। आओ भाई हम लोग भी वहां चलें जहां असुर लोग बांट रहे हैं। हम लोग क्या होंगे यदि इस पृथिवी में भाग नहीं पावेंगे। वे यज्ञस्वरूप विष्णु को आगे कर वहां चले।

ते होचुः। अनु नोऽस्यां पृथिव्यामाभजतास्त्वेव नोऽप्यस्यां भाग इति। ते हासुरा असूयन्त इवोचुर्यावदेवैष विष्णोरभिशेते। तावद्वो दद्म इति॥४॥ वामनो ह विष्णुरास तद्देवा नजिहीडिरे महद्वै नोऽदुर्ये नो यज्ञसम्मितमदुरिति॥५॥ ते प्राञ्चं विष्णुं निपाद्य। छन्दोभिरभितः पर्य्यगृह्णन्। गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामीति दक्षिणतस्त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामीति पश्चाज्जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामीत्युत्तरतः॥६॥ तं छन्दोभिरभितः परिगृह्याग्निं पुरस्तात्समाधाय तेनार्चन्तः श्राम्यन्तश्चेरुस्तेनेमाᳬ सर्वां पृथिवीᳬ समविन्दत यद्यदनेनेमाᳬ सर्वाᳬ समविन्दत तस्माद्वेदिर्नाम तस्मादाहुर्यावती वेदिस्तावती पृथिवीत्येतया हीमाᳬ सर्वाᳬ समविन्दन्नेवᳬ ह वा इमाᳬ सर्वाᳬ सपत्नानाᳬ संवृङ्क्ते निर्भजत्यस्यै सपत्नान्य एवमेतद्वेद॥७॥

वे देव बोले। इस पृथिवी में हम लोगों को भाग दीजिये। क्योंकि इस में हमारा भी भाग है। देवों के इस वचन को सुन कुछ

उदासीनता और ईर्ष्या से असुरों ने कहा कि जितनी भूमि के ऊपर यह विष्णु शयन कर रहा है उतनी हम आप को दे सकते हैं अधिक नहीं । ४ । निश्चय इस समय विष्णु वामन अर्थात् आकार में छोटा था । असुरों के इस उत्तर पर वे देव अप्रसन्न नहीं हुए । प्रत्युत कहने लगे कि इन्होंने हम को बहुत कुछ दिया जिन्होंने यज्ञ सम्मित (यज्ञ के बराबर) दिया है । ५ । तब देव इस विष्णु को पूर्व की ओर स्थापित कर वैदिक छन्दों से चारों ओर घेरने लगे । यजुर्वेद अध्याय १ मन्त्र २७ के एक एक पद लेकर देव कहते हैं कि "गायत्रेण त्वा छन्दसापरिगृह्णामि" अर्थात् आप को गायत्री छन्द से घेरता हूं इतना कह दक्षिण तरफ 'त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि' आप को त्रिष्टुभ छन्द से घेरता हूं इतना कह पश्चिम तरफ, 'जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि' 'अर्थात् जगती छंद से घेरता हूं' इतना कह उत्तर घेर दिया है । इस प्रकार उस विष्णु को चारों तरफ छन्दों से परिवेष्टित कर और पूर्व की ओर अग्नि प्रज्वलित कर उसके साथ श्रम करने लगे । उस से उन्होंने सम्पूर्ण पृथिवी पर अधिकार पाया । इत्यादि । इसी प्रकार अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में भी त्रिविक्रम की चर्चा आई है । ग्रन्थ के विस्तार के भय से उद्धृत नहीं करते हैं ।

यहां पर भी सूर्य का ही वर्णन है । आप लोग देखते हैं कि यहां देव और असुर अपने २ अधिकार के लिये स्पर्धा कर रहे हैं । प्रकाश का नाम 'देव' और अन्धकार का नाम 'असुर' है । सन्ध्या काल का यह वर्णन है । पृथिवी पर यह भासित होता है कि सूर्य पूर्व से पश्चिम जाता है यद्यपि यह सत्य नहीं तथापि जैसा भासित होता है तदनुसार यह वर्णन है । इस हेतु मान लिया जाय कि सूर्य पश्चिम की ओर आ गया है । अब सन्ध्या होने पर है इस

समय पृथिवी पर से (जहां सन्ध्या हो रही है) सूर्य्य बहुत छोटा और प्रकाश रहित भासित होने लगता है और अन्धकार फैलना आरम्भ होता है। अतः असुर जो अन्धकार वे प्रसन्न हुए कि अब हमारा ही सब राज्य आया आओ परस्पर बांटें। देव अर्थात् प्रकाश बेचारे दुःखित हुए कि हमारा कुछ नहीं रहा। अन्धकार पश्चिम से लेकर पूर्वतक फैल गया। यही असुरोंका पश्चिम से पूर्वतक मापना है अब मानों प्रकाशदेव रात्रिभर काट प्रातःकाल होते ही असुरों के निकट पहुँचे। परन्तु अकेले ही नहीं पहुंचे किन्तु विष्णु को साथ लेकर जो विष्णु उस समय वामन" अर्थात् बहुत छोटा था अर्थात् प्रातःकाल सूर्य्य छोटा, अपने किरणों से रहित और निस्तेज भासित होता है। इस वामन विष्णु को लेकर प्रातःकाल देव असुर के निकट आ बोले कि अब हम को भी इस में भाग दीजिये। असुरों ने विष्णु को छोटा देख कहा कि जितनी भूमि पर विष्णु लेटे हुए हैं उतनी ले लो। देव इस से अप्रसन्न नहीं हुए क्योंकि वे देव समझते थे कि अब थोड़ी ही देर में यह वामन विष्णु अर्थात् प्रातःकाल का सूर्य अपने किरणों से त्रि-लोक-व्यापी हो जायेगा। फिर सर्वत्र हमारा ही राज्य हो जायगा असुरों ने यह स्वीकार कर ही लिया अब चिन्ता किस बात की। देवगण इतने में विष्णु की स्तुति गुणगान करने लगे। अर्थात् प्रात.काल बीतने लगा सूर्य बढ़ने लगे। असुर=अन्धकार भागने लगे। देवगण मुदित हुए। यही इस का तात्पर्य्य है। यह लीला प्रतिदिन हुआ करती है। रात्री में असुरों का राज्य और दिन में देवों का राज्य। हे आर्यों! कैसा इसका भाव था अब किस प्रकार रूपान्तर में प्राप्त हो गया है। निःसन्देह यहां विष्णु के साथ वामन शब्द का पाठ आया है। परन्तु आप लोगों ने देखा किस भाव से यहां "वामन" शब्द का प्रयोग हुआ है। आर्यसंतानों! अब आप विचार करें कैसे यह आख्यायिका धीरे २ विस्तार रूप में आती गई। और आज किस

भयङ्कर रूप में प्रसिद्ध है। श्रीयुत मेक्स मूलर शतपथ का अनुवाद करते हुए 'वामन' शब्द के ऊपर इसी अभिप्राय कि टिप्पणी देते हैं। इसे भी देखिये :—

This legend is given in Muir's Original Sanskrit Texts, IV. p. 122, where it is pointed out that we have here the germ of the Dwarf Incarnation of Vishnu; and in A. Kuhn's treatise, 'Ueber Entwicklungsstufender Mythenbildung,' p. 128, where the following remarks are made on the story : Here also we meet with the same struggle between light and darkness; the gods of light are vanquished and obtain from he Asuras. who divided the earth between themselves, only as much room as is covered by Vishnu, who measures the atmosphere with his three steps. He represents (though I can not prove it in this place) the sun-ligh, which, on shrinking into dwarf's size in the evening, is the only means of preservation that is left to the gods who cover him with metres. i. e. with sacred hymns (probably in ordto defend him fromthe powers of darkness), and in the end kindle Agni in the east—the dawn—and thereby once more obtain possession of the earth" Compare also the corresponding legend in Taitt Br. III, 2,9,7.

'विष्णु शब्द के प्रयोग पर विचार'

विष्लृ व्याप्तौ १। विश प्रवेशने २। और विपूर्वकअशूव्याप्तौ संघाते च ३। इन धातुओं से इस शब्द की सिद्धि होती है। पूर्वाचार्य्य ऐसा ही मानते आए हैं। तब इस का अर्थ हुआ कि जो सब जगह व्याप्त हो अथवा जिस का प्रवेश सर्वत्र हो उस को 'विष्णु' कह सकते

है। यह अर्थ सम्पूर्ण रूप से तो केवल परमात्मा ही में घट सकता है। इस हेतु परमात्मा में यह शब्द मुख्य है और सूर्य और यज्ञादि में गौण है। सूर्य्य प्रथम बहुत बड़ा है इस पृथिवी की अपेक्षा १३ लक्ष गुणा बड़ा है। इस हेतु इस की व्यापकता भी बड़ी है। और दूसरा अपने किरणों व्यापक और प्रत्येक वस्तु में प्रविष्ट भी हो जाता है। क्योंकि सूर्य की गरमी सर्वत्र पहुंच जाती है। इन कारणों से सूर्य को किसी अंश में 'विष्णु' कह सकते हैं। इसी प्रकार यज्ञ भी बहुत दूर तक फैल जाता है। इस हेतु इस को भी विष्णु कहते हैं॥ अब गंभीर विचार की बात है कि मनुष्य को वैदिक शब्द के द्वारा ही सब कुछ ज्ञान हुआ है यह विषय निर्विवाद है॥ शब्द का जैसा अर्थ है वैसा ही प्रयोग भी वेद में दिखलाया गया है। एक पदार्थ के नाम अनेक भी हैं॥ वे सब गुण वाचक हैं। इस हेतु गुण के अनुसार शब्द का प्रयोग किया गया है। अर्थात् जहां ईश्वर की व्यापकता कहना है वहाँ प्रायः विष्णु शब्द का प्रयोग होगा। जहाँ परम ऐश्वर्य कहना है वहां इन्द्र। इत्यादि। इसी प्रकार सूर्य आदि में भी। अब वेद में शङ्का हो सकती है कि सूर्य्य एकदेशी परिच्छिन्न वस्तु है। फिर वह व्यापक कैसे हो सकता है। यदि व्यापक नहीं तो विष्णु नाम भी नहीं होना चाहिये। इस का समाधान तो यह है कि सूर्य में इस शब्द की मुख्यता नहीं। अब गौण रूप से भी सूर्य किस प्रकार व्यापक है यह वेद को अवश्य दिखलाना होगा। इस हेतु वेद प्रथम प्रत्यक्ष उदाहरण दिखलाता है कि देखो पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक में कैसे सूर्य व्याप्त है। परन्तु सूर्य अपने स्वरूप से इन में व्याप्त नहीं है। सूर्य का किरण ही फैला हुआ है। इस हेतु वेद को कहना पड़ा कि सूर्य यद्यपि साक्षात् यहां तक पहुंचा हुआ नहीं है किन्तु अपने किरण द्वारा इन में प्रविष्ट है इस हेतु वह विष्णु कहलाता है।

'वि+क्रम् धातु'

अब इस व्यापकता के सूचनार्थ वेद में जिस धातु का प्रयोग किया गया है वह 'क्रमु' है इस का पाणिनि-धातु-पाठानुसार पैर रखना अर्थ है। "क्रमु पादविक्षेपे"। और 'वेः पादविहरणे' १।३।४१॥ इस पाणिनीयसूत्र के अनुसार पादविहरण (पैर रखना) अर्थ में विपूर्वक क्रम् धातु से आत्मनेपद होता है। इसी 'वि' सहित क्रम् धातु का वेद में प्रयोग अधिक है। इस हेतु से भी अज्ञानी जनों को कदाचित् भ्रम हुआ हो कि यह वर्णन किसी पैरवाले का क्योंकि जिस को पैर ही नहीं। उस में क्रम धातु का प्रयोग क्योंकर हो सकता है। परन्तु यह अज्ञानता की बात है। क्योंकि पाणिनि कहते हैं :—

वृत्ति, सर्ग, तायनेषु क्रमः ॥१।३।३८॥ वृत्तिरप्रतिबन्धः। ऋचिक्रमतेबुद्धिः। नप्रतिहन्यत इत्यर्थः। सर्गउत्साहः। अध्ययनाय क्रमते उत्सहते। क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि। स्फीतानि भवन्तीत्यर्थः। आङ उद्गमने ॥१।३।४०॥ आक्रमते सूर्यः। उदयत इत्यर्थः। इत्यादि॥

पाद विक्षेप के अतिरिक्त वृत्ति, सर्ग, तायन, उद्गमन आदि भी इस के अर्थ होते हैं। और इन अर्थों में इस के बहुत प्रयोग भी विद्यमान हैं। इसी हेतु धातु अनेकार्थक कहलाता है। इस हेतु, देख कर अर्थ निश्चय करना चाहिये। यदि यहां पादविक्षेप ही अर्थ रक्खा जाय तब भी कोई क्षति नहीं होती है। ईश्वर में मुख, पाद, हस्त आदि का आरोपमात्र होता है 'विश्वतश्चक्षुरुत' 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि में नेत्रादि का आरोपमात्र है। सूर्य के किरण को अलङ्कार

रूप से सूर्य के हस्त और चरण कहे गये हैं। इस हेतु सूर्य में भी घट सकता है। यज्ञ में सामग्री दग्ध हो कर सर्वत्र फैलता है। मानों, फैलना ही इस का एक प्रकार का गमन है। इस में गौण रूप से प्रयुक्त हुआ है। ऐसे २ प्रयोग संस्कृत में बहुत हैं। इस विष्णु के प्रयोग में एक यह भी निश्चित है कि जहां २ मुख्यतया विष्णु शब्द का प्रयोग आया है वहां २ इस की व्यापकता का विशेषरूप से वर्णन है।

'अदिति और विष्णु'

पुराणों में कहा गया है कि अदिति के गर्भ से, वामन विष्णु की उत्पत्ति हुई है। यह भी एक विचारणीय वस्तु है। इस का भी सूर्य ही कारण है। अदिति शब्द के ऊपर एक स्वतन्त्र निर्णय रहेगा। यहां संक्षेप से यह जानना चाहिये कि वेदों में 'सूर्य' को 'अदिति-पुत्र' कहा है। इस कारण भी सूर्य को 'आदित्य' कहते हैं यास्का-चार्य्य कहते हैं यथाः—

आदित्यः कस्मात् आदत्ते रसान्। आदत्ते भासं ज्योतिषा मादीप्तो भासेति वा। अदितेः पुत्र इति वा। निरुक्त। २। १३॥

सूर्य को आदित्य क्यों कहते हैं? (आदत्ते + रसान्) रसों को खींच लेता है। अथवा (आदत्ते + भासम् + ज्योतिषाम्) सूर्योदय होने पर चन्द्र नक्षत्रादि ज्योतिष्मान् पदार्थ मलीन होजाते हैं मानो उन की कान्ति को सूर्य लेलेता है। अथवा (आदीप्तः + भासा) ज्योति से वह आवृत्त है। अथवा (अदितेः + पुत्रः) अदिति का वह पुत्र है। इत्यादि कारणों से सूर्य आदित्य कहाता है॥ यहां यास्कने सूर्य को "अदितिपुत्र" भी कहा है। पुनः—

ते हि पुत्रासो अदितेःप्रजीवसे मर्त्याय।
ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् । यजु॰ ३ । १५ ॥

(अदितेः) अदिति के (तेहि+पुत्रासः) वे पुत्र अर्थात् आदित्य (मर्त्याय) मनुष्यों को (जीवसे) जीने के लिये (अजस्रम्+ज्योतिः) बहुत ज्योति सर्वदा (प्र+यच्छन्ति) देते हैं। यहां ज्योतिःपद से सूर्य का ही बोध होता है पुनः—

दूरे दृशे देवजाताय केतवे ।
दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत । यजु॰ ४ । ३५ ॥

(दूरे दृशे) जो दूर दीखता हो अथवा दूरस्थ होने पर भी जो दृष्टिगत हो [देवजाताय] देव जो परमात्मा उस से जिस की उत्पत्ति हो [केतवे] और जो प्रकाशरूप हो। ऐसा जो [दिवस्पुत्राय] द्यौ [द्युलोक] का पुत्र [सूर्याय] सूर्य है उसके गुणों का हे मनुष्यो ! [शंसत] प्रकाशित करो। यहां द्यौ का पुत्र सूर्य कहा गया है।

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि ।
देवां उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्ड मास्यत्

ऋ॰ १० । ७२ । ८ ॥

अर्थः—[अष्टौ+पुत्रासः] आठ पुत्र (थे) जो (अदितेः) अदिति के (तन्वस्परि) शरीर से (जाताः) उत्पन्न हुए इन में (सप्तभिः) सात पुत्रों के साथ वह अदिति [देवान् उपप्रैत्] देवों को प्राप्त होती है और अष्टम (मार्ताण्डम्) सूर्य को (परा+आस्यत) ऊपर फेंक दिया। इस मंत्र में भी सूर्य अदिति पुत्र गिना गिया।

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुपधापयेते। हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः। यजु० ३३। ५॥

महीधरके अनुसार अर्थः— (द्वे + चरतः) रात्रि और दिनरूपा स्त्रियां ये दोनों निरन्तर प्रवृत्त रहती हैं। वे दोनों कैसी हैं ('विरूपे) भिन्नरूपवाली अर्थात् रात्रि काली और दिन शुक्ल। पुनः- (स्वर्थे) जिन का अच्छा प्रयोजन है। (अन्या + अन्या) ये दोनों भिन्न २ होकर (वत्सम्) अपने २ बच्चे को (धापयेते) दूध पिलाती हैं अर्थात् एक रात्रि तो वत्स-अग्नि को दूध पिलाती है। क्योंकि रात्रि में अग्निदेवत्य अग्निहोत्र होता है और दूसरी दिवसरूपा नारी वत्स-आदित्य को दूध पिलाती है। क्योंकि दिन में सूर्य देवत्य अग्निहोत्र होता है। इसी को आगे विस्पष्ट करते हैं (अन्यस्याम्) रात्रि में (हरिः) हरितवर्ण अग्नि (स्वधावान् + भवति) अन्नवान् होता है (अन्यस्याम्) दिन में (शुक्रः) शुक्र = श्वेत आदित्य (सुवर्चाः) शोभा तेजवाला (ददृशे) दृष्टिगोचर होता है॥ ५॥

यह मन्त्र ऋग्वेद मण्डल १। सूक्त ९५। मंत्र प्रथम में भी आया है यहां सायण ने महीधर से भिन्न अर्थ किया है। सायण कहते हैं 'रात्रेः पुत्रः सूर्यः' रात्रि का पुत्र सूर्य है। क्योंकि वह सूर्य गर्भ के समान रात्रि में अन्तर्हित होकर रात्रिके अन्तिम भाग से उत्पन्न होते हैं और 'अह्नः पुत्रोऽग्निः' दिन का पुत्र अग्नि है। क्योंकि वह अग्नि दिन में विद्यमान रहने पर भी प्रकाश रहित होने से अविद्यमान सा रहकर दिन से निकल प्रकाशमान आत्मा को प्राप्त होता है। इत्यादि। जो कुछ हो इस से सिद्ध होता है कि दिन का पुत्र सूर्य माना गया है। इस में सन्देह नहीं। मैंने यहां दोनो

दिखलाये हैं कि द्यौ और 'अदिति' इन दोनों का पुत्र सूर्य है। इस से सिद्ध हुआ कि द्यौ' और अदिति' एक ही वस्तु है। 'द्यौ' यह नाम द्युलोक का है अतः अदिति भी नाम यहां द्युलोक का ही है। वेद मंत्र स्वयं कहता है 'अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम्' अदिति नाम द्यौका है। जहां सूर्य अपनी कक्षा पर भ्रमण कर रहा है उस देश का नाम द्युलोक है। प्रायः आप लोग कहेंगे कि द्यौ का पुत्र सूर्य है इस का अर्थ क्यों हुआ?। यहां मनुष्य पुत्र के समान अर्थ नहीं है द्युलोक का सूर्य भूषण है इस हेतु दिवस्पुत्र है। अथवा द्युलोकस्थ जो अन्य ग्रह हैं अपनी धारणशक्ति से उनकी रक्षा करता है इस हेतु द्युलोक का रक्षक या पोषक होने से वह 'दिवस्पुत्र' है। महीधर भी यही अर्थ करता यथा:—दिवः पुरु त्रायते स इति दिवस्पुत्रः। दिवः पालका येतिवा जो द्युलोक की बहुत रक्षा करे। अथवा जो द्युलोक का पालक है उसे दिवस्पुत्र कहते हैं यहां अदिति शब्द दिन का उपलक्षक है अर्थात् अदिति शब्द से दिन का ग्रहण है क्योंकि दिन का पोषक सूर्य है। जैसे द्यौ का पुत्र हो कर द्युलोक धारण करता है तद्वत् दिन का पुत्र हो कर सूर्य सब पदार्थ की रक्षा करता है। इस हेतु अदिति शब्द से दिन का ग्रहण है। अज्ञानी लोग जैसा "अदिति" को देवमाता मानते हैं। उसको वेद में वर्णन नहीं है। पुराणों में कहा गया है कि मनुष्यवत् इन्द्र की भी माता अदिति है इसी हेतु वामन इन्द्र के छोटे भाई माने गये हैं परन्तु वेद में देखो:—

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तराय..........

अदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय

द्वादश कपालोऽनुमत्यामष्टाकपालः। यजुः २९। ६०॥

यजुर्वेद के इस मन्त्र में अदिति को ' विष्णुपत्नी ' कहा है। पुनः पुराण के अनुसार ' अदिति ' विष्णु वामन की माता कैसे हुई ?॥ वेद के अनुसार तो ऐसे २ स्थानों में पत्नी शब्दार्थ केवल पालयित्री शक्ति होता है देखिये महीधर।

"होता यक्षत्तिस्रो देवी र्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारतीमहीः। इन्द्रपत्नी र्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज" यजुः २८।८॥

इस मन्त्र में "इन्द्रपत्नीः इन्द्रस्य पत्न्यः पालयित्र्यः" इन्द्रपत्नी का अर्थ इन्द्र की पालयित्री शक्ति करते हैं। इस हेतु विष्णु जो सूर्य इस को जो पालनकरने की शक्ति है। उसे वेद में "विष्णुपत्नी" कहते हैं। दिनादि शक्ति सब ही सूर्य की है अतः दिनादि भी विष्णुपत्नी हुई। अतः जो अज्ञानी लोग हैं वे अदिति को एक नारी समझते हैं परन्तु ज्ञानी नहीं।

अब आख्यायिका के ऊपर ध्यान दीजिये। जितने पदार्थ हैं वे सूर्य के उदय से ही भासित होते हैं और तब ही उन के गुण भी प्रकाशित होते हैं दिन में ही संकल शोभा है। अतः मानो, सब पदार्थ क्या जड़ क्या चेतन क्या स्थावर दिनरूपी अदिति के पुत्र हैं। अदिति देवी इस जाज्वल्य वर्चिष्णु परम मनोहर अपने संतानों की संपत्ति देख अति प्रसन्न होती है। परन्तु जब सूर्य इस को त्याग विदा होता है। तब अदिति माता के सन्तानों की शोभा जाती रहती है। यही मानो, देवों का अधिकार छिन जाना है। तब अन्धकार चारों तरफ फैल जाता है। यही असुरों का अधिकार पाना है। अन्धकार रूप महाअसुर जगत में नाना उपद्रव करने लगते हैं। व्यभिचार, चोरी, डकैती, मद्यपान आदि महापातक

इसी अन्धकाररूप असुरराज्य में प्रवृत्त होता है इसी हेतु रात्रि का नाम भी 'दोषा' वा 'तामसी' है। अदिति देवी इस घटना से बड़ी दुःखिता होती है। इस भयङ्कर दुःख को मिटाने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती है यह दुःख तब ही निवृत्त हो सकता है जब पुनः सूर्य भगवन् आवें। मानो, अदिति पर प्रसन्न होकर पुनः प्रातःकाल विष्णु (सूर्य) वामनरूप (लघुरूप) धारण कर असुरों को विजय के लिये प्रस्थान करते हैं। सूर्य का प्रातःकाल में उदय होना ही अदिति के गर्भ से विष्णु का जन्म लेना है। इस समय सूर्य लघु प्रतीत होते हैं। इस हेतु ये वामन हैं। अब थोड़ी ही देर में सूर्य बढ़ने लगते हैं ज्यों ज्यों सूर्य बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों महान्ध-कार निवृत्त होता जाता है। यही असुरों का पराजय होना है। अब यहां से असुर कहां भाग जाते हैं? तो कहा गया है कि पाताल में चले जाते हैं। पाताल का अर्थ नीचा है। सूर्य ज्यों ज्यों ऊपर आते हैं त्यों त्यों अन्धकार नीचे को भागता चला जाता है। यही असुराधिपति बलि का पाताल गमन है। कैसा प्रात्यहिक दृश्य का मनोहर वर्णन है। इस को लोगों ने क्या उलटा समझ रक्खा है।

'बलि'

आप लोगों ने वेदों में देखा कि विष्णु के साथ 'बलि' की कोई वार्ता नहीं आई है। हम को प्रतीत होता कि 'बलिप्राण' नाम मेघ का है। इस में से 'प्राण' पद त्याग 'बलि' शब्द रख लिया है। और मेघ होने पर अन्धकार छा जाता है। इस हेतु बलि शब्द अन्धकार का उपलक्षक है। और 'बलि' को 'वैरोचन' कहा है जिस में रोचन अर्थात् दीप्ति, कान्ति, तेज नहीं वह 'वैरोचन' अर्थात् मेघादि। उस का पुत्र अर्थात् अन्धकार। इस प्रकार भी 'बलि' शब्द से अन्ध-कार का बोध होता है। अथवा, बलनाम अन्धकार अज्ञान आदि

का है। वलको ही विकृतरूप बलि है। वैदिक शब्द को लोक में प्रायः विकृत कर बोलते हैं जैसे च्यवान, च्यवन, दध्यङ्, धीचि। अथवा मेघ का एक नाम 'वल' भी है। "वलस्यापत्यं बलिः" वलका अपत्या 'बलि' यह आर्ष प्रयोग हो। यद्वा 'वलसम्वरणे- इतिभ्वादिः वलयति सम्वृणोति चक्ष्युः नेत्रमाच्छादयतियःस बलिरन्धकारः'। भ्वादिगणमें सम्वरणार्थक 'वल' धातु है। जो नेत्र को अच्छे प्रकार आच्छादन कर लेवे उसे 'बलि' कहते हैं। अंधकार नेत्र का आवरण कर लेता है अतः अन्धकार का नाम 'बलि' है॥ यहां जैसे सूर्य को अलङ्कार रूप से अदिति पुत्र कहा है वैसे ही सूर्य स्थानीय विष्णु को भी अदिति पुत्र ही माना है। जैसे उदय काल में सूर्य छोटा होते हैं। ऐसे विष्णु वामन माने गये हैं॥ इसप्रकार वैदिक शब्दों को मिलाया है। हम अब विश्वास करते हैं कि आप लोग अच्छे प्रकार समझ गये होंगे क्योंकि आप स्वयं पण्डित हैं। किस प्रकार एक एक शब्द से ले करआख्यायिका की उत्पत्ति होती गई है।

भारतवर्षीय ब्राह्मणो! क्या आप सत्य समझते हैं कि हमारा ईश्वर वामन रूप धर असुर छल इन्द्र को राज्य देता है। हम समझते हैं कि आप यदि इस को सत्य घटना मानते हैं तो महाशोक है। परन्तु आप भी इस को असत्य ही मानते समझते होंगे॥ यह प्रातः कालिक सूर्य का वर्णन मात्र है। भारत संतानो! इसको सत्य मान कर आप कौनसा फल समझते हैं। इस आख्यायिका से आध्यात्मिक लाभ क्या है? कहां आध्यात्मिक उपासना कहां छल कहां सत्य परायणता कहां कपटता॥ कहां सत्यता के लिये हरिश्चन्द्रादिक महाराजों का राज्य परित्याग। कहां राज्य के लिये भी भगवान् को भी कपट रूप धारण करना। अहा! निःसन्देह आप लोगों का कोई दोष नहीं यह सब पुराण लेखकों का अपराध है॥ इन्हीं ने भगवान् के ऊपर भी महा कलङ्क स्थापित किया। परमात्मा को इस सब से क्या प्रयोजन। उन के लिये सब बराबर हैं। इन का

नियम ही सबको दण्ड दे रहा है। न वह स्वयं कहीं जाता है न आता है। वह सब के हृदय मध्य में व्याप्त हो कर सब कुछ देख रहा है। वह प्रभु आनन्दमय ज्ञानमय सच्चिदानन्द सर्वकाम सर्वानन्द सर्वसुख सर्वरस सर्वरूप है। कौन उस का शत्रु। कौन उस का मित्र है। विप्रवर्यो! अब भी आप लोग इस सर्वान्तर्यामी सर्वानन्दप्रद शुद्ध, अकाय अव्रण अजर अमर अजन्मा ध्रुव कूटस्थ-एक अद्वितीय ब्रह्म को भजें। अपने हृदय में इसको देखें। वह आनन्दमय देव कहां नहीं है। उस से परमाणु भी खाली नहीं। इस की परम कृपा है कि आप नीरोग हो कर इसकी परितःस्थित विभूति को देखते हैं। परन्तु विप्रो! जैसे देखते हैं वैसे समझने के लिये भी प्रयत्न करें। शुद्धब्रह्म की सन्निधि से स्वयं शुद्ध होवें और अन्यान्य को शुद्ध बनावें। हे प्रियगण! ज्ञान ही परम शुद्ध का बीज है। ज्ञान ही वेद शास्त्र से प्रशंसित है। यही भूषण है। यही धन है। ज्ञान की ओर चलें। एकान्तसेवी हो उस की चिन्ता करें। ज्ञान ग्रहण का पूर्ण अभ्यास करें और ज्ञानियों के संग से लाभ उठावें। हम लोग निष्कारण महापाप करते हैं जब शुद्ध अक्रिय अनन्त ब्रह्म पर किसी प्रकार का दोषारोप करते हैं। अज्ञानी जनों ने तात्पर्य न समझ मिथ्या मिथ्या कथा बना देश में अविद्यारूप नदियें प्रवाहित की हैं उसी ब्रह्म से इस के लिये क्षमा मांगें। आगे हम सब शुद्ध होवें। और भविष्यत् में हमारे सन्तान प्रत्येक अशुद्ध और पापजनक भावना से रहित हो जगत् में मंगल-विधायक होवें।

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थः। विष्णोः स्यूरसि।
विष्णोर्ध्रुवोसि वैष्णवमसि। विष्णवे त्वा। यजु ५।२१

सर्वव्यापिन् परमात्मन्! आप ही विष्णोः बहुत प्रदेश-व्यापी सूर्य का अथवा सर्वव्यापी जगत् का (रराटम्+असि) ललाट हैं। अर्थात्

सब के ऊपर आप ही विद्यमान हैं। आप ही (विष्णोः) सूर्य का (रराटे+स्थः) श्रेष्ठ स्थानीय हैं जब चाहें तब आप इस सूर्य को बढ़ा या प्रकाशित कर सकते हैं। (विष्णोः+स्यूः+असि) सूर्य का बन्धन भी आप ही हैं। (विष्णोः+ध्रुवः+असि) सूर्य को स्थिर रखने वाले आप ही हैं। (वैष्णवम्+असि) सूर्य सम्बन्धी तेज का भी कारण आप ही है। हे भगवन्! (विष्णवे। सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी आप के लिये ही मेरा सब कार्य होवे आप की प्राप्ति के लिये ही मैं सम्पूर्ण प्रयत्न करूं। (त्वा) आप को ही भजूं। ऐसी सुमति मुझे आप देवें। आप को त्याग अन्य किसी को न पूजूं न भजूं आप को ही परमात्मा समझूं।

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा। सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वा। अतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा। श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वा। अग्नये त्वा। रायस्पोषदे विष्णवे त्वा। यजु० ५।१।

अर्थः—हे मेरे जीवात्मन! आप (अग्नेः) अग्नि का (तनूः+असि) शरीर हो अर्थात् आग्नेय शक्ति से युक्त हो अग्निवत् प्रकाशक जाज्वल्यमान शुद्ध पवित्र हो इस हेतु (त्वा) आप को (विष्णवे) अन्तर्यामी व्यापक के निकट समर्पित करता हूं। (सोमस्य+तनूः+असि) सुन्दरपदार्थों का आप शरीर हैं इस हेतु हे जीव! (विष्णवे+त्वा) परमात्मा के निमित्त आप को समर्पित करता हूं (अतिथेः+आतिथ्यम्+असि) आप अतिथि का सत्कार स्वरूप हैं इस हेतु (विष्णवे+त्वा) ईश्वर के निमित्त आप को समर्पित करता हूं। हे मेरे प्रिय जीव! (श्येनाय+सोमभृते) विविध पदार्थ के भरण पोषण करने वाला वायुवत् वेगवान् सर्वत्र विद्यमान और सब के प्राण स्वरूप इन्द्र के लिये आप को नियुक्त करता हूं

(विष्णवे+त्वा) ब्रह्म के ही लिये आप को कार्य में प्रेरित करता हूं (अग्नये+त्वा) अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म्म के लिये आपको नियुक्त करता हूं (रायस्पोषदे+त्वा) राय=ऐहलौकिकसुख पारलौकिक-निःश्रेयस सुख को पुष्टि करने वाले विष्णु के लिये ही आप को कार्य्य में नियुक्त करता हूं। हे मेरे प्रिय जीव! आप जो कुछ शुभ कार्यानुष्ठान का सम्पादन करें वह ईश्वर के निमित्त ही करें। मैं सदा चाहता हूं कि आपकी दृष्टि में सदा अन्तर्यामी परमात्मा विद्यमान रहें आप उसी के आधार पर सञ्चरण करें। वही आप के पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ऊपर नीचे सर्वत्र विद्यमान रहें। इसे त्याग किसी कार्य्य में प्रवृत्त न होवें। उसी की शरण में सदा रहें।

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्। उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्। विष्णवे। त्वा ॥ १६ ॥

अर्थ:—(विष्णो) हे सर्वव्यापी ब्रह्म! आप (दिवः+वा) द्यु-लोक से (उत+वा) अथवा (पृथिव्याः) पृथिवी से (वा) अथवा हे (विष्णो) विष्णो! (महः+उरोः) महाविस्तीर्ण (अन्तरिक्षात्) द्युलोक से कहीं से लाकर (वसुना) वसु से आप प्रथम अपने (उभा+हि+हस्ता) दोनों हाथ को (पृणस्व) भरें तत्पश्चात् (दक्षिणात्) दक्षिण हस्त से (उत) अथवा (सव्यात्) वाम हस्त से (आ+प्रयच्छ) मुझ को वसु दीजिये। हे जीवात्मन्! (त्वा) आप को (विष्णवे) विष्णु की प्रीति के कारण नियुक्त करता हूं। यहां परम प्रीति दिखलाई गई है। जैसे छोटा बच्चा अपने पिता से प्रार्थना करता है कि मुझे अमुक पदार्थ अवश्य दीजिये। तद्वत्। यहां कोई भक्त ईश्वर से प्रार्थना करता है कि मुझ को 'वसु' दीजिये। वसु नाम ज्ञान सम्पत्ति का है इसी से उभय लोक में वास होता है। वह

ईश्वर त्रिलोक व्यापी है इसी हेतु जहां से वह चाहे वहां से हमें ज्ञान दे सकता है। सामर्थ्य ही उस का हस्त है इसी परमात्म देव की स्तुति प्रार्थना करते हुए हम जीव ऐहिक कार्य का तन मन से अनुष्ठान करें। इति॥

"जलन्धर और विष्णु"

यद्यपि भागवत प्रभृति सुप्रसिद्ध पुराणों में वृन्दा और जलन्धर की आख्यायिका नहीं है तथापि 'कार्तिक माहात्म्य' में इस की कथा पाई जाती है। आज कल नारी गण इस को बहुधा सुना करते हैं। यह कार्तिक माहात्म्य पद्मपुराण का एक भाग समझा जाता है। इस का प्रसंग इस प्रकार है। विष्णु भगवान को क्यों कर तुलसी प्रिया है? इस प्रश्न पर कथा चली है कि एक समय इन्द्र और रुद्र में महा द्वन्द्व युद्ध होने लगा। रुद्र ने इन्द्र को मार गिराया। बृहस्पति यह सुन महादेव के निकट आ उन्हें प्रसन्न कर बोले कि हे रुद्र! इन्द्र को जीवनदान दीजिये और भालनेत्रसमुद्भव यह कालाग्नि शान्त होवे। रुद्र ने कहा 'एवमस्तु। यह अग्नि पुनरपि भाल में तो प्रविष्ट नहीं होगी। परन्तु मैं इस को वहाँ पर त्याग करूंगा जहां इन्द्र को यह पीड़ित नहीं करेगा। उस अग्नि को समुद्र में फेंका। वहां तत्काल ही बालक हो गया। समुद्र ने ब्रह्मा से इस का नाम करण संस्कार करवाया। इस का नाम जगत् में जलंधर विख्यात हुआ। वृन्दा से विवाह कर देवों के सब अधिकार इस ने छीन लिये। देवगण लड़ते रहे परन्तु अन्त में हार मान इधर उधर भाग गये। रुद्र और जलन्धर में तुमुल संग्राम होता रहा। जलन्धर को संग्राम भूमि में न गिरते हुए देख विष्णु भगवान् ने यह विचारा कि जब तक इस की पतिव्रता वृन्दा स्त्री का पातिव्रत धर्म्म भग्न नहीं होगा तब तक यह नहीं मरेगा॥

"नान्यथा स भवेद्वध्यःपातिव्रतसुरक्षितः" ॥
विष्णुर्जलन्धरं दृष्ट्वा तद्दैत्यपुर भेदनम् ।
पातिव्रतस्यभंगायवृन्दायाश्चाकरोन्मतिम् ॥

वृन्दा के पातिव्रत को भंग के लिये विष्णु जी प्रयत्न करने लगे और अन्त में वैसा ही किया। किसी उपाय से वृन्दा को विश्वासित कर स्वयं जलंधर का रूप धर इस के पातिव्रत का भंग किया। इस कारण जलन्धर संग्राम में रुद्र से मारा गया। यही संक्षेप कथा है। इस में कई एक बातें बड़ी ही विचित्र हैं। जिस समय वृन्दा को यह प्रतीत हुआ कि इस विष्णु ने मेरे साथ बड़ा कपट किया उस समय वृन्दा ने यों कहा है।

वृन्दोवाच ।

धिक्त्वदीयं हरेःशीलं परदाराभिगामिनः । ज्ञातोसित्वं मया सम्यङ् मायी प्रत्यक्षतापसः । यौ त्वया मायिनौ ह्यास्थौ स्वकीयौदर्शितौमम । तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः । त्वं चापि भार्यादुःखार्तोवनेक-पिसहायवान् । भव सर्वेश्वरेणायं यस्ते शिष्यत्वमागतः । इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम् ॥ विष्णुना वार्य्यमाणापि तस्याम् सक्तमानसः । ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुर्वृन्दान्वितांभस्मरजोवगुण्ठितः । तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसंघैः प्रबोध्यमानोपि ययौ न शान्तिम् । अध्याय १६ ।

तुझ परदाराभिगामी को धिक्कार हो! तुझ को मैंने पहिचाना। तू वही मायी तापस है। तूने प्रथम मुझ को दो दूत दिखलाये। वेही दोनों राक्षस हो कर तेरी भार्या को हरेंगे। और तू भार्या के दुःख से दुःखित हो वानरों की सहायता चाहेगा। ऐसी दशा तेरी भी होगी। इतना कह वह वृन्दा अग्नि में प्रवेश कर भस्म हो गई। विष्णु ने इस को बारम्बार इस काम के करने से रोका। परन्तु वह एक न सुन कर भस्म हो गई। विष्णु उसी का स्मरण करते हुए और उस की चिता से भस्म लगा उस के वियोग से उन्मत्त हो गये देव सिद्धगण कितनी ही प्रार्थना करते हैं विष्णु जी एक भी नहीं सुनते। यह वृन्दा के वियोग से अशान्त हो पड़े हुए हैं। इधर जलंधर का वध हुआ। देव लोग प्रसन्न हुए। महेश्वर से निवेदन करने लगे कि आप ने देवों का बड़ा उपकार किया परन्तु :—

किञ्चिदुदन्यसमुद्भुतं तत्र किंकरवामहे ।
वृन्दालावण्यसंभ्रांतो विष्णु तिष्ठति मोहितः ॥

एक महान् अनर्थ उपस्थित हुआ है हम लोग क्या करें। विष्णु जी वृन्दा के लावण्य से संभ्रान्त और मोहित हो जगत् को ध्वस्त कर रहे हैं। इस का क्या उपाय है। महेश्वर ने मूलप्रकृति की सेवा में देवों को जाने को कहा। देवगण से प्रार्थित मूलप्रकृति बोली, कि मैं ही लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती तीन रूपों से स्थिता हूं इन ही तीनों के निकट आप लोग जांय अवश्य कल्याण होगा। देवगण इन तीनों देवियों के निकट पहुंचे इन तीनों ने तीन बीज दे कर कहा है कि :—

देवता ऊचुः—इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठते ।
निर्वपध्वं ततः कार्य्यं भवतां सिद्धि मेष्यति ॥

जहां विष्णु स्थित हैं वहां, इन बीजों को बो दीजिये। इसी से आप लोगों का कार्य सिद्ध होगा। देवों ने वैसा ही किया। इन तीनों बीजों से धात्री, मालती और तुलसी तीन वनस्पतियां हुईं।

धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता। गौरीभवा च तुलसी तमःसत्वरजोगुणाः स्त्रीरूपिण्यो वनस्पत्यो। दृष्ट्वा विष्णोस्तदा नृप। उत्तस्थौ संभ्रमाद् वृन्दारूपातिशयविभ्रमः। दृष्ट्वा च तेन रागात् कामासक्तेन चेतसा। तं चापि तुलसी धात्री रागेणैव व्यलोकयत्। उच्च लक्ष्म्या पुराबीज मीर्ष्ययैव समर्पितम्। तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यापरा भवेत्। ततः सा वर्वरीत्याख्यामत्रापाथ विगर्हिता। धात्री तुलसी तद्रागात् तस्य प्रीतिपदे सदा। ततो विस्मृत दुःखोसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु। वैकुण्ठमगमद् हृष्टः सर्व देवनमस्कृतः॥ अध्याय १८॥

जिस हेतु धात्री (सरस्वती) से उत्पन्न हुई इस हेतु वह धात्री (आंवला का वृक्ष) हुई। मा (लक्ष्मी) से उत्पत्ति होने के कारण मालती और गौरी से जो वनस्पति हुई वह तुलसी हुई। स्त्रीरूपा वनस्पतियों को देख महाविष्णु जी वृन्दा के परम सुन्दर रूप से मोहित हो उन्मत्त थे अब शान्त हो उठे। और राग से उन को देखने लगे। तुलसी और धात्री भी बड़ी प्रीति से देखने लगीं। लक्ष्मी जी ने पहले ही बीज ईर्ष्या से दिया था इस हेतु उस से जो नारी

उत्पन्न हुई उस ने ईर्ष्या से ही विष्णु को देखा। इसी हेतु वह निन्द-नीय वर्वरी कहलाती है। धात्री और तुलसी दोनों विष्णु की परम प्रीति के भाजन हुई। इन दोनों के साथ सब दुःख भूल वैकुण्ठ को विष्णु चले गये।

विचार से प्रतीत होता है कि इसका लेखक कोई शिवद्रोही महा अज्ञानी था। प्रथम तो इस ने असुर जलन्धर की स्त्री वृन्दा को पूर्ण रीति से पतिता सिद्ध किया और विष्णु को परदाराभिगामी। और सरस्वती और पार्वती जी के, ऊपर महा असह्य अचिन्त्य अवाच्य कलङ्क लगाया। क्योंकि सरस्वती और पार्वती प्रदत्त बीजों से उत्पन्न नारिएं विष्णु को प्रियतमा बनीं। इस में भी पार्वती बीज सम्भव तुलसी तो साक्षात् प्रिया बनी। लक्ष्मी-बीजोद्भवा नारी निरादृता हुई। किसी वैष्णवाभिमानी ने इस से समझा होगा कि इस उपाय से शैव लोग भी तुलसी को पार्वती जी का अंश मान विष्णु के भक्त बन जायेंगे परन्तु इस अज्ञानी को यह नहीं सूझा कि श्रीपार्वती जी के ऊपर कैसा अपरिमार्जनीय कलङ्क लगता है। ऐसी ऐसी कथाएं सूचित करती हैं कि यह देश अत्यन्त भ्रष्ट हो गया है। इस में आ-चरण का सर्वथा लोप हो गया है जिस के परम पूज्य देव परस्त्री पर मोहित हों और ऐसे कामी हों कि अन्यरूप, बना कर परस्त्री को सदा अपने ऊपर धारण किये हुए रहें। क्षण मात्र भी इस से वियुक्त न हो सकें।

हे भारतविद्वानो! सोचो इस कथा से आप स्त्रियों को क्या शिक्षा देते हैं। क्या वृन्दा के समान पतिव्रता होने की शिक्षा देते हैं? परन्तु यह भी स्मरण रखिये कि विष्णु का अनुकरण पुरुष करेगा। तब पुनः स्त्रियों का पातिव्रत कहां रहा जो साक्षात् अपने को विष्णु कहेगा वह कितना पाप करेगा। सरस्वती और पार्वती के बीज से क्या शिक्षा स्त्रियों को मिलेगी आह! कैसा कैसा घोर पाप इस

भारत में ऐसी कथाएं प्रचलित हो रही हैं। हे बुधजनो! अज्ञानी लोगों ने विष्णु को परम कलङ्कित किया है। इस कथा का भी मूल कारण सूर्य देव ही है। परन्तु आगे चल कर महा भयंकर रूप को वह धारण कर लेता है। आगे और इस का भाव बदल गया।

'जलन्धर' नाम मेघ का है जो जल को धारण करे उसे 'जलन्धर' कहते हैं। 'जलन्धरतीति जलन्धरः'। जब समुद्र में बड़ी गरमी पैदा होती है तब प्रधानतया मेघ बनता है। रुद्र नाम विद्युत् का है वह विद्युत् शक्ति अर्थात् आग्नेयशक्ति जब अधिक समुद्र में गरमी पैदा करती है तब उस से जलन्धर मेघ का जन्म होता है। यही समुद्र में रुद्र का अग्नि फेंकना है। और जलन्धर का जन्म लेना है। जलन्धर जब बहुत बढ़ जाता है। परन्तु अपने में से पानी नहीं छोड़ता अर्थात् नहीं बरसता है तब देवगण बहुत घबराते हैं रुद्र जो विद्युत् वह मेघ से युद्ध करना आरम्भ करता है। परन्तु केवल विद्युत् से वह नहीं मरता। मेघ के जो अनेक झुण्ड देख पड़ते हैं उस को संस्कृत में वृन्द (समूह) कहते हैं। इसी को स्त्री-लिङ्ग कर 'वृन्दा' बना लिया है। यही सब मानो वृन्दा जलन्धर मेघ की स्त्री है। इस वृन्दा के ऊपर जब सूर्य किरण पड़ता है तब गल कर पृथिवी पर गिरने लगती है। यही वृन्दा का विष्णुकृत पातिव्रत भंग है। वृन्दा के नाश होते ही जलन्धर नष्ट हो जाता है। यही इस का भाव है। परन्तु इस को न समझ कर कैसी अघटित घटना को गढ़ पौराणिकों ने जगत् में महापाप फैलाया है। ईश्वर इस से भारत की रक्षा करे।

'शालिग्राम और विष्णु'

नारदउवाच—नारायणश्च भगवान्वीर्याधानचकारह।
तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातु मर्हसि ॥ १ ॥

श्रीनारदउवाच—नारायणश्च भगवान् देवानां साधनेषु च। शंखचूडस्य कवचं गृहीत्वा विष्णुमायया ॥२
पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तत्सतीगृहम्। पातिव्रतस्य नाशेन शंखचूडजिघांसया ॥३॥ दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वार-सन्निधौ। देवी भागवत नवमस्कन्ध ॥२४॥

वृन्दा के उपाख्यान के सदृश ही तुलसी का उपाख्यान है। इसी तुलसी के शाप से विष्णु भगवान् प्रस्तरत्व को प्राप्त हुए हैं। जिस प्रस्तर को आज दिन शालग्राम कहते हैं। शंखचूड़ नाम का एक असुर था। उस की स्त्री का नाम तुलसी था। यह परम पतिव्रता थी। और ये दोनों दम्पती विष्णु भक्ति परायण थे। इस के पातिव्रत के प्रताप से संग्राम में वह परास्त नहीं होता था। इस हेतु विष्णुजी प्रथम दान में माया से शंखचूड का कवच मांग लाये पश्चात् उस के समान ही रूप धर के तुलसी के पातिव्रत धर्म के नाश उस को घात की इच्छा से तुलसी के द्वार पर दुन्दुभि बजाते हुए भगवान् पहुंचे।

रेमे रमापतिस्तत्र रामया सह नारद। सा साध्वी सुखसंभोगादाकर्षणव्यति क्रमात्। सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाचसा। तुलस्युवाच—को वा त्वं वद मायेश भुक्ताऽहं मायया त्वया। दूरीकृतं मत्सतीत्वं यदतस्त्वां शपामी हे। तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिःशापभयेनच। दधारलीलयाब्रह्मन् सुमूर्तिं च मनोहराम्। ददर्श पुरतोदेवी देवदेवंसनातनम् ....पाषाण हृदय

स्त्वंहि दयाहीनो यतः प्रभो। तस्मात् पाषाणरूपस्त्वं भुवि देवभवाधुना। ये वदन्ति साधुं त्वां ते भ्रान्ता हि न संशयः। भक्तो विनापराधेन परार्थं च कथं हतः। भृशं रुरोदशोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः॥

अनेक प्रकार के छल बल कर तुलसी को "यह निश्चय मेरे ही स्वामी हैं" ऐसा विश्वास करवा उस की सतीत्व का विध्वंस किया। परन्तु अन्त में तुलसी को सब वार्त्ता ज्ञात हो गई। बहुत शोकार्त्ता हो वह बोली। तू बड़ा ही कठोर और छली है। तेरा हृदय पाषाण के समान है। इस हेतु तू आज से पृथिवी पर पाषाण रूप हो जा। निःसन्देह, जो तुझ को साधु कहते हैं वे भ्रान्त हैं। तूने अपने भक्त को किस अपराध से दूसरे के लिये हत किया है। इतना कह वह अत्यन्त विलाप करने लगी। विष्णु ने भी इसे शोकार्त्ता देख धीरज भरोसा दे कहा कि:—

इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति विश्रुता। तव केश-समूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति। तुलसी केशसंभूता तुलसी च विश्रुता। त्रिषुलोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने। प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने। स्वर्गे मर्त्येच पाताले गोलोके मत्सन्निधौ। भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरी। अहंच शैलरूपेण गण्डकीतीरसन्निधौ। अधिष्ठानंकरिष्यामि भारते तव शापतः। कोटिसंख्यास्तत्र कीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रा वरायुधैः।

तच्छिलाकुहरेचक्रं करिष्यन्तिमदीयकम्।

तुम्हारी यह तनु [शरीर] जगत में गण्डकी नदी प्रसिद्ध होगी और तुम्हारे ये केश समूह पवित्र वृक्ष होंगे। तुलसी के केश से होने के कारण यह तुलसी कहलाती है। तीनों लोकों में स्वर्ग मर्त्य पाताल सर्वत्र इस से श्रेष्ठ पत्र पुष्प नहीं होंगे। हे तुलसी ! तुम सर्वत्र मेरे समीप वास करो। तुम्हारे बिना मेरी पूजा वृथा है तुम्हारे सेवन से गति मुक्ति सब ही होगी और मैं तुम्हारे शाप से गण्डकी के तीर पर प्रस्तर हो कर निवास करूंगा। वहां तीक्ष्णदन्त के कीट सहस्रों उस शिला के छिद्र में मेरा चक्र बनायेंगे। वे अनेक प्रकार के होवेंगे। "शालिग्रामं च तुलसीं शंखं चैकत्रमेवच। योरक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरेःप्रियः" शालग्राम, तुलसी, शंख और चक्र ये चारों जो रक्खेंगे वे महाज्ञानी लक्ष्मी और मेरे प्रिय होवेंगे। इत्यादि कथा देवी भागवत में विस्तार पूर्वक उक्त है। ये सब कथाएं बहुत आधुनिक हैं। शालग्राम की चर्चा कहीं पर भी प्राचीन ग्रन्थों में नहीं है। यहां एक और विलक्षणता देखते हैं कि तुलसी वृक्ष तुलसी से हुई है। कार्तिक माहात्म्य में पार्वती के बीज से इस की उत्पत्ति मानी है।

'शालग्राम की उत्पति और पूजाका कारण'

जिस शालग्राम की पूजा होती है वह यथार्थ में पाषाण नहीं है। भूल से इस को लोग पाषाण समझते आए हैं। योरोप आदि देशों में भी इस को लोग पाषाण ही समझते थे। परन्तु अब परीक्षा से सिद्ध हुआ है कि यह एक प्रकार का shell घोंघा है। ये बहुत प्रकार के होते हैं कोई बहुत ही छोटे होते हैं और कोई गाड़ी के पहिया चाक [चक्र] के बराबर होते हैं इस को अङ्गरेजी में

Ammonites ऐमोनाइटस कहते हैं। यह साइंटिफिक नाम है। ये बहुदेश में पाये जाते हैं। गण्डकी नदी में बहुत मृत और जीवित भी पाये जाते हैं। एक विद्वान् लिखते हैं

Ammonites—This shell fish was found through the Mesozoic Age in many forms. Several hundred species are known They varied in size some being very minute, others as large as a cart wheel. They were called ammonites, from a fancied resemblence to the horns on the sculptured heads jupiter Ammon. In former days in Europe they were mistaken for snakes turned into stone. Among Hindus they are known as Salagramas.

दूसरे विद्वान् लिखते हैं

Ammonites attracted the attention of the curious long before geology was seriously studied, and legends were invented to explain them.

> Then Whitby's nuns exulting told
> how of thousand snakes each one
> Was turned into a coil of stone
> When holy Hilda prayed.
>
> Scott's Marmion, ii. 13.

यह बहुत सुन्दर और ठीक चक्र के समान होता है। मुझे प्रतीत होता है कि इस की सुन्दरता देख इस को पूजा अज्ञानी लोग करने लगे होंगे। पीछे धीरे २ सर्वत्र पूजा चल पड़ी होगी। अथवा विष्णु-रचयिता ने सूर्य को अच्छे प्रकार मनुष्य के स्वरूप में ढाल

विष्णु नाम दे जगत में पूजा चलाई । उस समय यह भी एक आवश्यकता आई कि मूर्ति दो प्रकार की होनी चाहिये । एक चल और दूसरा अचल । अचल तो मनुष्यरूप विष्णु हुए । चल के लिये इसी शालग्राम को रक्खा । क्योंकि जैसा सूर्य का तेज चक्राकार भासित होता है वैसा ही यह भी कोई २ होता है । इस के ऊपर सुन्दर २ रेखाएं होती हैं और चक्राकार होता है । और चक्र के स्वरूप भी इस के ऊपर अङ्कित रहता है । इस हेतु इस को सूर्य भगवान का अवतार मान इस की पूजा चलाई हो, अथवा इस शालग्राम के अभ्यन्तर एक सूक्ष्म कीट बहुत ही सुन्दर और सुवर्णाकार होता है । जैसा घोंघा वा शंख में केवल मांस के लोथ के समान जीव होता है वैसा ही जीव इस में नहीं होता है इस में कुछ इस से विलक्षण होता है । इस को लोग निकाल देते हैं अथवा जैसे कौड़ी शंख के अभ्यन्तर के जीव कुछ दिनों के पश्चात् स्वयं मर जाते हैं तद्वत् इस शालग्राम के जीव भी मर जाते हैं । इस को देख कर यहां के पौराणिकों ने विचार किया होगा कि हिरण्यगर्भ जो आदि सृष्टि में हुए और अण्ड समान सहस्र सूर्य प्रतिभ थे इन्हीं का यह अवतार है । क्योंकि इस में भी वे गुण पाये जाते हैं इसी हेतु इसको हिरण्यगर्भ भी कहते हैं । अथवा सब जीवों की सृष्टि के पहले भगवान् ने इसी को प्रथम बनाया हो क्योंकि इस में प्रस्तर और जीव दोनों पाये जाते हैं और इन्द्रियादि का विकाश बहुत सूक्ष्म पाया जाता है । यह समझ कर पौराणिकों ने इस की पूजा चलाई हो । परन्तु जिओलोजी विद्यावित् इस को प्रथम जीव नहीं मानते हैं । जो कुछ हो यह अज्ञानता के कारण से भ्रम उत्पन्न हुआ है । शंख घोंघा सीपी वृक्ष पाषाण जल प्रभृति की पूजा निःसन्देह अविद्या से उपजी है । हे विद्वानों ! कैसा शोक है कि ब्रह्म की उपासना छोड़ यहां के लोग तुच्छ तुच्छ पदार्थ को ईश्वर समझ पूजने लगे । यह शालग्राम भारत देश में केवल गण्डकी वा शालग्रामी नदी में ध

हेतु भगवान् को भी शालग्राम गण्डकी के तीर पर वा इसकी धारा में वास करना पड़ा। परन्तु जगत् बहुत बड़ा है। आज काल प्रायः सब देश का भूगोल इतिहास पढ़ाया जाता है अन्वेषण होता ही रहता है। इस परिश्रम के फल से अनेक स्थानों में शालग्राम पाये गये। अब भगवान् का वाक्य कहां रहा। गण्डकी नदी तो भारतवर्ष में ही है। क्या इस असुर के पहले गण्डकी नदी नहीं थी। यदि यह नदी तुलसी का शरीर है तो सब ऋतु में इसको समान ही रहना चाहिये। वर्षा और ग्रीष्म में बढ़ना घटना नहीं चाहिये। एवमस्तु! शालग्राम इस का नाम भी अनुचित ही प्रतीत होता क्योंकि शालवृक्षों के ग्राम को शालग्राम कहेंगे अथवा कोई शालिग्राम कहते हैं। शालि नाम धान का है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस नाम से कुछ ईश्वरीय-गुण प्रतीत नहीं होते। और यह कथा भी अत्यन्त अश्लील और अवाच्य है। यदि विष्णु केवल सूर्य प्रतिनिधि रूप में ही पूजित होते तब भी कुछ अच्छा था इन को स्वेच्छानुसार सब कुछ बना लिया यदि छल करना है तो इन को आगे कर दिया यदि लम्पटता का उदाहरण प्रस्तुत करना है तो झट इन का निदर्शन दिखला दिया। चोरी भी करना इन से नहीं छूटा है। मद्यपान कर इनका कुल का ही क्षय हुआ है। रण में युधिष्ठिर सत्यवादी से मिथ्या बुलवाना इन का ही काम था। परस्त्री राधा से इन की ही परम प्रीति वर्णित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यथार्थ विष्णु अब विष्णु नहीं रहे। विष्णु एक साधारण मनुष्य बन गये।

"शालग्राम की पूजा"

पौराणिक जगत् में शालग्राम की कथा बहुत ही शोचनीय है तुलसी ने अच्छा शाप दिया कि "तू पाषाण होजा"। "तू ने महा अनुचित काम किया"। विष्णु पाषाण हो गये यह भी उचित ही

हुआ। परन्तु यह और भी सुशोभित होता और पौराणिक धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ती यदि इस की पूजा नहीं होती किन्तु इस की परम निन्दा होती क्योंकि जिस को पतिव्रता ने शाप दिया और उस शाप से जो पाषाण बना वह अवश्य जगत् में निन्दनीय है। यदि ऐसा होता तो निःसन्देह यह कथा बहुत ही रोचक और शिक्षा-प्रद होती। परन्तु अति शोक की वार्ता है कि शापित पाषाण की पूजा चला कर अधर्म की जड़ को स्थिर कर दिया। और भगवान् के ऊपर अचल लाञ्छन अङ्कित कर अपने स्वभाव का परिचय दिया है। हे विद्वानो! आप लोग विचार करें। यहां यह भी जानना चाहिये कि प्रथम तो चक्राकार शालग्राम की पूजा चली थी परन्तु अब गोलाकार श्याम पाषाणादि की भी पूजा होती है। भगवान् के ऊपर तुलसी चढ़ाने की विधि बहुत ही आधुनिक है। इस तुलसी-वृक्ष की श्रेष्ठता प्रकट करने और शालग्राम को पूज्य बनाने के हेतु ये सब उपाख्यान प्रकल्पित हुए हैं।

'विष्णु का शयन और उत्थापन'

मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः पौष्णान्त्यपादे प्रतिबोधमेति। एकादश्यान्तु शुक्लायामाषाढ़े भगवान् हरिः। भुजङ्गशयने शेते क्षीरार्णवजलेसदा। क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के आषाढ्यां संविशेद्धरिः। निद्रांत्यजति कार्तिक्यां तयोः संपूजयेत्सदा॥ इत्यादि निर्णयसिन्धौ

भाव इस का यह है कि आषाढ़ शुक्ल-पक्ष की एकादशी को भगवान् क्षीरसागर में भुजङ्ग के ऊपर सो जाते हैं और कार्तिक शुक्ल-पक्ष एकादशी को पुनः जागते हैं। ये दिन पवित्र समझे जाते

है। इत्यादि। लगातार चार मास भगवान् सोते रहते हैं यह विचार क्योंकर उत्पन्न हुआ? मैं समझता हूं इस के दो कारण हो सकते हैं। आप जानते हैं कि ये चारों मास वर्षा ऋतु के हैं। भारतवर्ष में कहीं २ रात्रि दिवा अब भी वृष्टि होती रहती है। बंगाल आदि प्रदेशों में अतिवृष्टि होने के कारण आज कल भी नदियां बहुत भर जाती हैं जिस से सहस्रों ग्राम पशु नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं बहुत मनुष्य भी डूब मरते हैं। इन पशुओं के ऊपर बड़ी आपत्ति आजाती है। यह एक प्रकार का प्रलय समान समय उपस्थित होता है। जिन्होंने इस दृश्य को देखा है उन्हें अच्छे प्रकार का प्रलय परिज्ञात है इस घोर आपत्ति समय में हाहाकार! प्रजाएं मचाने लगती हैं। भगवान् कहां है क्यों नहीं हमारी रक्षा करते हैं। क्या अभी वह सो गये। किस की शरण हम जांय। इस प्रकार विलाप करती हुई प्रजाओं को पुरोहितों वा आचार्यों ने सचमुच समझा दिया होगा कि भगवान् यथार्थ में आज कल सो जाते हैं और इस वर्षा के अन्त कार्तिक मास में जागते हैं। यह समझा देने से मूर्ख प्रजाओं के वारम्वार क्लेशजनक प्रश्नों की झंझट से अपने को आचार्यों ने बचा लिया हो और उन के सन्तोषार्थ उत्सव भी आरम्भ कर दिया हो। क्रमशः यह पर्व सर्वत्र फैल गया हो। इस प्रकार इस की उत्पत्ति की सम्भावना है। क्योंकि भगवान् को शयन कराने का अभिप्राय यही हो सकता है कि अभि वह जगत् की रक्षा नहीं कर रहे हैं इस हेतु अराजक राज्यवत् इस में उपद्रव हो रहा है। इत्यादि।

दूसरा कारण इस में सूर्य देव ही प्रतीत होते हैं। सम्पूर्ण वर्ष वह बड़े परिश्रम से कार्य करते हैं। और अपने असह्य प्रचण्ड तेज से मेघ की घटा को स्थिर नहीं होने देते। वर्षा आते ही सूर्य की शक्ति कम भासित होने लगती है। मेघ उन्हें घेर लेता है अज्ञानी

जन इस से समझते हैं कि इस समय सूर्य शयन कर रहा है अतः इस का तेज कम होगया है। इसी हेतु मेघ प्रबल हो जगत् में धूम मचा रहा है। कार्तिक में पुनः सूर्य प्रचण्ड होने लगते हैं। लोगों ने समझा कि सूर्य भगवान् अब जाग उठे। जब सूर्यस्थानीय एक विष्णु पृथक् कल्पित हुये तब यह गुण भी इन में स्थापित किया गया। इस प्रकार आलोचना से विष्णु के शयन और उत्थापन का पता लगता है। हे आर्य विद्वानो! विष्णु सम्बन्धी प्रायः सब ही आख्यायिकाएं कर्म गुण स्वभाव आदि धर्म हमें इतिहास की रीति पर सूचित करते हैं कि यह विष्णु सूर्य स्थानीय हैं। इस में अणुमात्र सन्देह नहीं।

'मत्स्यादि अवतार'।

इस समय केवल विष्णु का निर्णय करना आवश्यक था। सो हो चुका। इस में सन्देह नहीं कि धीरे २ विष्णु के सम्बन्ध में बहुत सी कथाएं समय २ पर बनती गईं जो सूर्य से कुछ सम्बन्ध नहीं रखती हैं। आप लोग विचारें कि जब साक्षात् महाविष्णु भगवान् ही कोई भिन्न देव सिद्ध नहीं होते, जब यही आलङ्कारिक और सूर्य प्रतिनिधि सिद्ध हो चुके, तब कब सम्भव है कि इन के अवतार सत्य यथार्थ सिद्ध हों। अवतार निर्णय में अवतारों की आलोचना करेंगे। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि:—

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्।
यस्यांशांशेनसृज्यन्ते देव तिर्य्यङ्नरादयः।१।३।५।

यही विष्णु नानावतारों के कारण हैं। विद्वानो पुरुषो! आप लोगों को इस उपदेश से अवश्य प्रतीत हो गया कि विष्णु कोई देवता नहीं। जिस की पूजा देश में प्रचलित है वह केवल कल्पित प्रतिनिधि है। इस हेतु हे विद्वानो! जो नानावतारों का बीज माना गया है, वही खपुष्पवत् मिथ्या सिद्ध होता है। तब इस के अवतार तो सर्वथा मिथ्या ही सिद्ध होंगे इस में सन्देह ही क्या? शुभमस्तु॥

इति श्री मिथिलादेश-निवासि शिवशङ्करशर्म्म कृते

त्रिदेव-निर्णये विष्णु-निर्णयः समाप्तः।

॥ ओ३म् ॥

अथ चतुर्मुख निर्णय

'ब्रह्मा = वायु'

यद्यपि सूर्य हमारी पृथिवी से कई एक लाख कोश दूर स्थित है, तथापि इस के बिना हमारी पृथिवी का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। सूर्य के उदय होते ही पृथिवी पर कैसा आनन्दाब्धि का प्रवाह प्रवाहित होने लगता है। जीवमात्र चेतन हो उठते हैं। विविध प्राकृत उपद्रव शान्त हो जाते हैं। अन्धकारासुर की निवृत्ति होते ही प्रकाश से पृथिवी शोभायमान और प्रज्वलित होने लगती है। मित्र २ मिल कर आनन्द होते हैं। इतना ही नहीं, सूर्य की उष्णता से पृथिवी पर महापरिवर्तन होता रहता है। आप लोग देखते हैं कि आर्यावर्त्त की भूमि पर प्रायः सर्वत्र फाल्गुन चैत्र से वायु अधिक जोर से चलने लगता है। वैशाख ज्येष्ठ में प्रचण्ड रूप को धारण करता है। कभी कभी ऐसी आंधी चलती है कि ग्राम के अधिकांश छप्पर गिर पड़ते हैं। सहस्रों वृक्ष टूट गिरते हैं। उष्ण-प्रधान प्रदेश में यात्रा करना अति कठिन हो जाता है। धूल इतनी उड़ती है कि उस के तले दब कर आदमी मर जाते हैं। रेगिस्तान में यह दृश्य बहुधा देखने में आता है। ऊंट समान बड़े जन्तु भी धूलि में दब कर मर जाते हैं कभी कभी वर्षा के प्रारम्भ में बड़े जोर से आन्धी पानी और ओले के साथ आती है। वह बड़ी भयङ्कर और उपद्रव करने

वाली होती है। इस सब का कारण सूर्य ही है। वायु पृथिवी पर भरा हुआ है। यद्यपि यह आंखों से दृष्टिगोचर नहीं होता परन्तु इस की क्रिया बच्चे को भी प्रतीत होती है। जैसे सामुद्रिकवारि के अभ्यन्तर मत्स्यादि जल-जन्तु निवास करते हैं, तद्वत् हम लोग वायु के अभ्यन्तर रहते हैं। कई एक सौ मन वायु का बोझ हम लोगों पर प्रतिक्षण रहता है। आप यह भी देखते हैं, कि सूर्य अस्त होजाता, चन्द्र सर्वदा दृश्य नहीं होता, ताराएं दिन में निस्तेज होजाता। अग्नि भी शान्त हो जाता, परन्तु वायु प्रतिक्षण विद्यमान् रहता है। यह पल २ अपना काम करता रहता है। यह स्थगित नहीं होता। इसी प्रकार आभ्यन्तरिक चक्षु, श्रोत्र, कर्ण, घ्राण, मन, चित्त, बुद्धि सब ही थक कर सो जाते हैं। परन्तु प्राण वायु सदा चलता रहता है। यह सोता नहीं। विश्राम नहीं लेता। यह कल्पान्त तक अपना काम करता हुआ चला जाता है। इस हेतु वायु का हित बहुत बड़ा होता है। इसके बिना क्षणमात्र हम चेतन नहीं जी सक्ते हैं। स्थावर भी इस के बिना जीवित नहीं रह सकते। अग्नि तो इसको छोड़ ही नहीं सकता। यह वायु महान् देव है॥

परन्तु आप प्रथम स्थूल दृष्टि से ही विचारें कि यह कैसे उत्पन्न होता है। ग्रीष्म में इसकी वृद्धि होती है। जहां जङ्गलादिक-स्थानों में दावानल लगता है, वहां वायु प्रचण्ड होजाता है। इससे मालूम होता है कि उष्णता से इसकी वृद्धि होती रहती है। अब आप देखेंगे कि घनीभूत होकर भूमि पर करीब द्वादश योजन जहां तक भूवायु भरा हुआ है। सूर्य के तीक्ष्ण और उष्ण किरण जब इस के बीच में प्रविष्ट होने लगते हैं, तब वायु छिन्न भिन्न होकर इधर उधर चलना आरंभ होता है। वायु मिश्रित जल भी सूखने लगता है। इस हेतु इसकी और वेगवान् हो, चारों ओर विस्तृत होने लगता है। इसी हेतु 'वायु' को सूर्यपुत्र कहते हैं और सूर्य किरण पड़ने से जिस हेतु चारों दिशाओं में फैलता है इस हेतु इसको 'चतुर्मुख'

कहते हैं। इस में एक और भी विलक्षणता देखते हैं कि यही शब्द को पहुंचानेवाला है। यदि वायु न होवे तो हम लोग शब्द नहीं सुन सकते हैं। परन्तु हमारे मुख से किसकी सहायता से शब्द की उत्पत्ति होती है? निःसन्देह, आभ्यन्तरिक प्राण वायु की सहायता से वाणी निकलती है। आभ्यन्तरिक प्राण भी एक प्रकार का वायु ही है। इन दोनों में यदि भेद है तो किंचित्मात्र का ही भेद है। इस हेतु आभ्यन्तरिक वायु वाणी को उत्पन्न करता है और बाह्य वायु इस को ग्रहण कर लेता है। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। परन्तु यह दोनों वायु एक ही हैं। इसी कारण कहा जाता है कि वायु अपनी दुहिता को ग्रहण करता है क्योंकि वाणी वायु से उत्पन्न होती है। इस हेतु इस की दुहिता हुई। और पुनः वायु ही इस को ग्रहण कर लेता है। इस हेतु अपनी दुहिता को वायु ग्रहण करता है। यह अलङ्कार रूप से कहा जा सकता है यह एक प्रकृति का दृश्य है। वायु का न कोई पुत्र न कोई पुत्री। यह वर्णन अलङ्कार मात्र है। इस से सिद्ध हुआ कि जिस को वाक् वा वाणी वा सरस्वती, वा शब्द वा भाषा कहते हैं वह वायु की शक्ति है। अर्थात् वायु का गुण वा धर्म है। हम वन में देखते हैं कि वंश के छिद्र से शब्द निकलता रहता है। जल प्रवाह में शब्द होता रहता है। यदि कोई ऐसा यन्त्र प्रस्तुत किया जाय जिस से वायु बिलकुल निकाल लिया जाय और उस यन्त्र के अभ्यन्तर में एक घण्टी रखदी जाय और किसी युक्ति से इस को हिलाया जाय, तब परीक्षा हो जायगी कि वायु के बिना शब्द फैल सकता है या नहीं। ऐसा यन्त्र बनाकर परीक्षा होगई ऐसे यन्त्र में घण्टी कितनी ही हिलाई जाय शब्द नहीं निकलता। इस से वाणी=सरस्वती वायु की शक्ति है ऐसा कहा जा सकता है। पुनः अभी सिद्ध कर चुके हैं सूर्य के कारण वायु बहुत वेगवान् हो जाता है। इस से वायु का वाहन सूर्य है यह भी कह सकते हैं। सूर्य को वैदिक लौकिक दोनों भाषाओं में 'हंस' कहते हैं।

इस हेतु वायु का वाहन हंस है यह भी कह सकते हैं। और वायु इस में सन्देह नहीं कि प्रतिक्षण सृष्टि करता है। सर्वत्र प्रविष्ट हो कर सब को बांध रहा है। इसी हेतु इस को 'मातरिश्वा' कहते हैं। माता अर्थात् निर्माण करने वाली जितनी शक्तियां हैं उस में प्रविष्ट हो कर श्वास प्रश्वास देने वाला यही वायु है। इस हेतु इस को धाता विधाता स्रष्टा आदि नामों से भी पुकार सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं तो वायु के सर्व गुण ब्रह्मा में संघटित होते हैं, इस कारण निःसन्देह ब्रह्मा वायु स्थानीय है। आगे इस को अनेक प्रमाणों से सिद्ध करेंगे। ब्रह्मा केवल वायु स्थानीय ही नहीं, किन्तु ब्रह्मा नामक ऋत्विक् स्थानीय भी है। आगे के प्रमाणों से यह सब विषय सिद्ध होगा।

"ब्रह्मानामधेय"

जैसे वेदों में विष्णु, रुद्र, आदित्य, सूर्य, अग्नि, वायु नदी, उषा, अहोरात्र द्यावापृथिवी प्रभृति नाम से अनेक देवता वर्णित हैं, वैसे प्रायः ब्रह्मा नाम का किसी मन्त्र का कोई देवता नहीं। वेद में यह ब्रह्मन् शब्द स्तोत्र वेद ऋत्विक्, परमात्मा, तपस्या आदि अनेक अर्थ में आया है परन्तु किसी देवता विशेष अर्थ में इस का प्रयोग नहीं पाया जाता। पुनः जैसे अनेक मन्त्रों के द्वारा विष्णु, इन्द्र, वायु, मित्र, अर्य्यमा, वरुण, अदिति, द्यौ, पृथिवी, रुद्र आदि शब्द वाच्य देवता की स्तुति प्रार्थना आती हैं, वैसे 'ब्रह्मा' की कोई स्तुति प्रार्थना नहीं आई है। इस में सन्देह नहीं कि ब्रह्मन् शब्द का प्रयोग वेद में बहुत आया है। यथाः—

तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानः। यजुः १८। ४९॥

सीमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। यजुः ३। २८॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्। य० ३२।१६॥ इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति। अथर्व १। ३२। १॥ अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम्। तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति। ऋ० २। १२। ६॥ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्। अ० ४। १। १॥ तेभिर्ब्रह्माविध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूते। अ० ५। १८। ८। ब्राह्मणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना। अ० । ५। १९। ८॥ यद्ब्रह्मभिर्यं ऋषिभिर्यद्देवैर्विदितं पुरा। यद्भूतं भव्यमासन्वत तेना ते वारये विषम्॥ अथर्व। ६। १२। २॥

यद्यपि वायु अर्थ में इस का प्रयोग नहीं है, परन्तु हो सकता है, क्योंकि यह शब्द विशेषण है। महान् को ब्रह्म वा ब्रह्म कहते हैं। संस्कृत में इस का स्वरूप "बृह्मन्" है पुँल्लिङ्ग में ब्रह्मा और नपुंसक में 'ब्रह्म' हो जाता है। यह उभय लिङ्ग है। वेदों में सब अर्थ में दोनों प्रकार के प्रयोग हैं। परन्तु पिछले संस्कृत में "वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः" वेद, तत्त्व, तप, और परमात्मा में नपुंसक और ब्राह्मण प्रजापति में पुँल्लिङ्ग होता है। आजकल आर्य भाषा में ईश्वरार्थ में ब्रह्म अन्यथ ब्रह्मा कहते हैं। ईश्वर सब से महान् है, अतः ईश्वर में इस की मुख्यता है। वेद भी बड़ा है। अतः वह भी ब्रह्म है। वेद के अध्ययन करने वाले वा ब्रह्मवाच्य परमात्मा को जानने वाला भी महान् है अतः इस का भी नाम ब्रह्मा है। इसी

प्रकार स्तोत्र,तपस्यादि का नाम ब्रह्मा है। इस हेतु संभव है कि कल्पित देव का नाम ब्रह्मा रक्खा हो क्योंकि जब यह स्रष्टा हुआ तब इस को महान् बनाना आवश्यक है। ब्रह्मन्शब्द महत्त्व सूचक है इस को ब्रह्मनाम होने का अन्य कारण भी पाया जाता है।

"ब्रह्मा ऋत्विक्"

मैं प्रथम कह चुका हूं कि यह ब्रह्मा केवल वायु स्थानीय ही नहीं, किन्तु ब्रह्मा नाम का जो ऋत्विक् होता है उस के भी यह प्रतिनिधि है। कारण इस में यह है। ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता कहे गये हैं। परन्तु वेदों के विना सृजन नहीं हो सकता, इस हेतु वेदों के भी प्रकाशकर्त्ता ब्रह्मा कहे गये हैं जिस की सहायता से इन्हों ने सृष्टि की। अब जो चारों वेदों को जाने और उस के प्रयोग भी अच्छे प्रकार कर सके उस ऋत्विक् का नाम वैदिक भाषा में ब्रह्मा प्रथम से ही विद्यमान है। इसी कारण जब एक पृथक् देव कल्पित हुआ तब इसका नाम ब्रह्मा रक्खा गया। क्योंकि इन को चतुर्वेदविद बनाना है तब ही यह सृष्टि कर सकते हैं और यथोचित पदार्थों के नाम भी रख सकते हैं। और जैसे ब्रह्मा ऋत्विक् वेदों के अर्थ जान यज्ञ में विविध प्रयोगरूप सृष्टि करता है तद्वत् यह भी वेदार्थ जान तदनुसार जगत् रचना करते हैं। इत्यादि कारण से इस कल्पित देव का नाम ब्रह्मा रक्खा गया। ऋत्विक्-ब्रह्मा चतुर्मुख इस हेतु है कि (चत्वारो वेदा मुखे यस्य स चतुर्मुखः) जिस के मुख में चारों वेद हों वह चतुर्मुख। यहां मध्यम पद लोपी समास हुआ। जब ऋत्विक् के स्थान में एक पृथक् देव कल्पित हुआ तो यहां 'चत्वारि मुखानि यस्य' चार मुख हैं जिस के वह चतुर्मुख है ऐसा समासकर ब्रह्मा को चारमुख दिये गये। इस प्रकार ब्रह्मा में दो गुणों के होने की आवश्यकता के कारण वायु और ब्रह्मा ऋत्विक इन दोनों के गुण इन में स्थापित

लिखी गयी हैं। अब आगे के प्रमाणों से आप लोगों को अवश्य विदित होगा कि प्रधानतया ब्रह्मा वायु के स्थान में रचित हुआ है।

ब्रह्मा की उत्पत्ति और चतुर्मुख

उदप्लुतं विश्वमिदं तदासीत् यन्निद्रया मीलितदृङ् न्यमीलयत्। अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतावनीहः॥ १० ॥ तस्यात्म-सूक्ष्माभिनिविष्ट-दृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान्। गुणेनकालानुगतेन विद्धः शुष्यंस्तदाभिद्यतनाभिदेशात्॥ १३ ॥ स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत् कालेन कर्म्मप्रतिबोधितेन। स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्कइवात्मयोनिः॥ १४ ॥ तस्मिन् स्वयं वेदमयोविधाता स्वयंभुवं यस्य वदन्ति सोऽभूत्॥१५॥ परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्र श्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥ १६ ॥ भागवत तृतीयस्कन्ध अध्याय ८ ॥

भाव इस का यह है कि जब आदि देव भगवान् इस सृष्टि को समिट कर अपने उदर में स्थापित कर समुद्र में अनन्तनागरूप तल्प के ऊपर शयन करते थे, उस समय यह विश्व जलमय था। कुछ समय के अनन्तर भगवान् के नाभिदेश से एक पद्म (कमल) निकला। वह सूर्यवत् विशाल जल को प्रकाशित करने लगा। उस कमल से वेदमय ब्रह्मा उत्पन्न हुए जिन को स्वयंभू कहते हैं। और आकाश में

परिक्रमा करते हुए ब्रह्मा जी को दिशाओं के बराबर चार मुख प्राप्त हुए। इस प्रकार ब्रह्मा की उत्पत्ति विस्तार पूर्वक श्रीमद्भागवत में कथित है। भाव इस का इतना ही है कि विष्णु के नाभि से एक कमल निकल कर समुद्र के जल के ऊपर तैरने लगा उस से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः। पद्मनाभे र्नाभिपद्मात् निःससार महामुने॥ १८॥ कमण्डलु-धरः श्रीमान् तपस्वी ज्ञानिनांवरः चतुर्मुखैस्तं तुष्टाव प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा॥ ७६॥ तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः। सम्भूय पद्मदण्डेच बभ्राम युगलक्षकम्॥ ५३॥ नान्तं जगाम दण्डस्य पद्मनालस्य पद्मजः॥

इत्यादि देवी भागवत नवमस्कन्ध में ब्रह्मा की उत्पत्ति की कथा विस्तार से वर्णित है। भाव यह है कि इतने ही में नारायण के नाभिपद्म से स्त्रीसहित चतुर्मुख ब्रह्मा प्रकट हुए। और चारों मुख से उसकी स्तुति प्रार्थना करने लगे ब्रह्मा जी नाभिकमल से निकल कर सहस्रों युग उसी में भ्रमण करते रहे। परन्तु उसका अन्त नहीं पाया इत्यादि। यह कथा सर्वत्र प्रसिद्ध है आज कल चित्र में भी

नोट १-आज कल के मुद्रित पुस्तकों में अध्याय श्लोकादि न्यूनाधिक पाए जाते हैं इस हेतु पता में भेद पड़ जाता। इस हेतु पता के ऊपर पूरा भरोसा न करें ग्रन्थ पर केवल भरोसा रखना चाहिये।

देखते हैं कि विष्णु भगवान् समुद्र में सर्प के ऊपर सो रहे हैं। लक्ष्मी चरण सेवा कर रही हैं। नाभि से एक पद्म निकला हुआ है। उसके ऊपर चतुर्मुख श्री ब्रह्मा जी बैठ कर सृष्टि रच रहे हैं।

विवेकी पुरुषो! अब आप लोग ध्यान से विचार करो कि इसका आशय क्या है? ब्रह्मा कौन है? क्या यथार्थ में ऐसी घटना हुई या यह कल्पित है? प्रिय विद्वानो? यह केवल वायु का वर्णन है। प्रथम वर्णन हो चुका है कि 'विष्णु नाम सूर्य का है। समुद्र नाम, आकाश का है। सूर्य का किरण, मानो; कमलनाल हैं॥ मानो, विष्णु (सूर्य) समुद्र (आकाश) में शयन कर रहा है। उस के मध्य से किरण रूप कमलनाल समुद्र=अन्तरिक्ष (आकाश) में आ निकाला। अर्थात् सूर्य की उष्णता अन्तरिक्ष में आकर फैलाने लगी। यही उष्णता का फैलना, मानो, कमल कुसुम का प्रकट होना है। और उस उष्णता से उत्पन्न क्या हुआ? वायु। वह वायु कैसा हुआ। चतुर्मुख। यहां पर भी वही समास है जो 'चतुर्भुज' में दिखलाया है। अर्थात् "चतसृषु दिक्षु मुखं यस्य स चतुर्मुखो वायुः" चारों दिशाओं में मुख है जिस का वह चतुर्मुख अर्थात् वायु। जब वायु के स्थान में एक अन्य देवता कल्पित हुआ उस समय इस में इस प्रकार समास हुआ है कि [चत्वारि मुखानि यस्य स चतुर्मुखो ब्रह्मा] जिस के चार मुख हों वह चतुर्मुख। इस प्रकार समासकृत पाण्डित्य के बल से ब्रह्मा को चार मुख दिये गये। आप लोग बुद्धिमान् हैं विचारें कि ब्रह्मा चतुर्मुख ही क्यों माना गया। इस में अन्य कोई विशेषता नहीं। मुख की ही विशेषता है। विष्णु में बाहु की और रुद्र में नेत्र की विशेषता है। इस में संशय नहीं कि ब्रह्मा में मुख की ही विशेषता होनी चाहिये। क्योंकि यह वायु स्थानीय है। आप देखते हैं कि वायु अदृश्य वस्तु है। इस में सूर्य के समान किरण नहीं कि जिसका कर वा पाद वा चरण कह कर वर्णन किया जाय। इस में कोई अन्य प्रत्यक्ष अग्निवत् तेज नहीं कि वह जटाजूट

कहा जाय। परन्तु इस में केवल मुख की प्रधानता है। वायु रूप जो एक देवता है, मानो उस का चारों तरफ मुख हैं। जब जैसा चाहता है तब तैसा हो जाता है। कभी पूर्वाभिमुख। कभी पश्चिमाभिमुख। कभी उत्तराभिमुख कभी दक्षिणाभिमुख। इस प्रकार देखते हैं कि 'वायु' ही चतुर्मुख है। जब इस के स्थान में एक पृथक् देव कल्पित हुए तो इस में भी वेही गुण स्वभाव कर्म स्थापित किये गये। इसी हेतु वायुस्थानीय-ब्रह्मा चतुर्मुख हैं। चतुर्मुख शब्द और इस की उत्पत्ति—प्रकार हमें सूचित करता है कि यह ब्रह्मा वायुदेव का प्रतिनिधि है। इस में सन्देह नहीं।

"ब्रह्मा और ब्रह्मा की कन्या"

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः। अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम्॥ २८॥ तमधर्म्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः॥ मरीचिमुख्या मुनयो विस्रम्भात्प्रत्यबोधयन्॥ २९॥ नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति ये परे। यः स्वां दुहितरं गच्छेदनिगृह्यांगजं प्रभुः॥ ३०॥ तेजीयसामपिह्येतन्नसुश्लोक्यं जगद्गुरो। यद्वृत्तमनुतिष्ठन् वै लोकः क्षेमाय कल्पते॥ ३१॥ तस्मै नमो भगवते यइदंस्वेन रोचिषा। आत्मस्थं व्यंजयामास स धर्म्मं पातुमर्हति ३।२१ श्रीमद्भागवत।

विदुर और मैत्रेयजी का यह सम्वाद है। भागवत तृतीयस्कन्ध

सृष्टि प्रकरण में यह उपाख्यान आया है। सृष्टि करते करते ब्रह्मा जी नेवाक् अर्थात् सरस्वती को भी उत्पन्न किया। हे विदुर! हम लोगों ने सुना है कि वह स्वयंभू सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा जी (अकाम:) कामयुक्त हो मन को हरणकरती हुई, अकामा दुहिता (वाचम्) वाणी=सरस्वती को (चकमे) चाहने लगे। २८। (तम्+अधर्मे कृतमतिम्) अधर्म में बुद्धि करते हुए अपने पिताजी को देख ब्रह्मा के पुत्र मरीचि आदि मुनियों ने उस अधर्म से ब्रह्माजी को वर्जित किया २८॥ इस प्रकार वे मुनि अपने पिता से बोले हे जगद्गुरो! (नैतत्पूर्वैः) न पूर्व में ऐसे कोई हुए और न आगे होवेंगे और न आज कोई हैं जो अपने अङ्गजकाम को न रोक कर अपनी दुहिता का ग्रहण करेंगे। ३०। हे जगद्गुरो! तेजस्वी देवता के लिये भी यह कार्य यशोदायक नहीं। जिन के आचरण के अनुसार अनुष्ठान करके लोक कल्याण भागी होते हैं। यदि वे हो अनुचित काम करेंगे तो धर्मानुष्ठान नष्ट हुआ। ३१। उस भगवान् ब्रह्मा को नमस्कार हो जिस ने अपनी दीप्ति से ईश्वरस्थ जगत् को प्रकट किया है वह ब्रह्मा स्वस्थापित धर्म का पालन करे॥ ३२॥

सइत्थंगृणत पुत्रान् पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन्। प्रजापतिपतिस्तन्वीं तत्याज व्रीडितस्तदा॥ ३३॥ तां दिशोजगृहुर्घोरां नीहारां यद्विदुस्तमः॥ ३४॥

इस प्रकार स्तुति करते हुए आगे खड़े मरीचि प्रभृति प्रजापतियों को (जो विवाह करके सन्तान उत्पन्न करने वाले सृष्टि के आदि में हुए वे भी प्रजापति कहलाते हैं।) देख परम लज्जित हो प्रजापति ब्रह्मा जी ने अपनी कन्या को छोड़ दिया॥ प्रजापति का अपनी दुहिता के ऊपर मोहित होने की कथा अन्य पुराणों में भी उपलब्ध होती है। यह परम प्रसिद्ध आख्यायिका है। पुष्कर तीर्थ में इस

कोला को मूर्ति भी विद्यमान है। भारतवर्ष में प्रायः यहां ही ब्रह्मा जी का मन्दिर है। निराकारमोक्षिपुरुषो! इस का क्या भाव है। क्या ब्रह्माजी ने ऐसा अनुचित कार्य्य किया? नहीं नहीं। ब्रह्मा कोई व्यक्ति विशेष पुरुष का नाम नहीं। ब्रह्मा नाम यहां वायु का है। वायु में ही यह घटना घटती है। देखिये॥ यहां कहा हुआ है कि 'वाक्' को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया। 'वाक्' को संस्कृत में ब्राह्मी भारती गिरा वाक् वाणी सरस्वती कहते हैं (ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग वाणी सरस्वती) टीकाकार भी यहां कहते हैं कि जिस को ब्रह्मा ने त्याग दिया वह निज भार्या सरस्वती नहीं है तो कौन है? कहते हैं यह शंका मन्द है। अर्थात् इस का तत्व टीकाकार को विदित नहीं है तथापि टीकाकार एक श्लोक उद्धृत करके परिहार करते हैं:—

यां तत्याज त्रिभुर्ब्रह्मा मानुषी वाक् तु सा स्मृता।
सरस्वती निजा भार्या दैवीं वाचं तु तां विदुः—

जिसको ब्रह्मा ने त्यागा वह मानुषी वाक् है। जो अपनी भार्या सरस्वती है वह दैवी वाणी कहलाती है। वाणी की उत्पत्ति वायु से होती है और पुनः इस को वायु ही ग्रहण कर लेता है। भीतर की वायु की सहायता से वाणी उत्पन्न होती है और पुनः बाहरीवायु में समाजाती है। आप देखते हैं कि मुख से जो वाणी निकलती है वह कहां चली जाती है! निःसन्देह बाहर की वायु में लीन हो जाती है। परन्तु भीतर की वायु यदि इसे उत्पन्न न करे तो इसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। परन्तु बाह्य और आन्तरिक वायु दोनों एक ही है। अब विचारें कि वायु एक महान् देव है। इस ने परम मोहिनी वाणी को भीतर से प्रकट किया। मानो इस की मधुरता देख इस को अपने ही में लिया। वाणी का स्वभाव ही है कि उत्पन्न होकर वायु में मिलकर-

नष्ट हो जाय । जिस हेतु वायु से यह वाणी उत्पन्न होती है इस हेतु मानो यह इस की कन्या के समान है । और पुनः इस को अपने में लीन कर लेता है । यही मानो इस का अनुचित व्यवहार है यह केवल आलङ्कारिक वर्णन है । वायु को न कोई कन्या है न भार्य्या है न बाप है । इस के सम्बन्ध का जो कुछ वर्णन होता है वह केवल अलङ्कार रूप से होता है । इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि यह वायु और सरस्वती (वा गौ = वाक्) का वर्णन है । जब वायु के स्थान में एक ब्रह्मा नाम के देव कल्पित हुए तो यह गुण इन में भी स्थापित, हुआ । वहां वाक् का केवल वाणी-शब्द अर्थ था । यहां अज्ञानता-वश लोग यथार्थ पुत्री वा कन्या समझने लगे । और इस को इतना बढ़ा दिया कि इस के नाम से मन्दिर आदि भी बनाने लगे । एवमस्तु यह आख्यायिका भी हमें दरसाती है कि ब्रह्मा वायुस्थानीय (१)

(१) नोट:—द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् । उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भ माधात् । ऋग्वेद । १ । १६४ । ३३ । प्रथिष्ट यस्य वीरकर्म्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्य्योअपौहत् । पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितरा अनुभृतमनर्वा ।५॥ मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् । मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥६॥ पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्क्ष्मया रेतः संजग्मानो निषिञ्चत् स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् । ७ । ऋग्वेद १० । ६१ ।

इत्यादि मन्त्रों में भी ब्रह्मा सरस्वती के समान सूर्य और उषा (प्रातःकाल) का वर्णन रूपकालङ्काररूप से आता है इस को वैदिकालङ्कार निर्णय में लिखूंगा । इस के ऊपर ब्राह्मण के ये प्रमाण हैं :—

प्रजापतिर्वैस्वां दुहितरमभ्यध्यायद्—दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये । तामृश्योभूत्वा रोहितंभूतामभ्यैत् । तस्ययद्रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसा वादित्योऽभवत् । एतरेय-ब्राह्मण ३ । ३३ ।

प्रजापतिर्वैस्वां दुहितरमभिदध्यौ दिवंवोसंवा । शतपथ ब्राह्मण ॥ १।७।४।१॥

"ब्रह्मा और गायत्री सावित्री"

पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्रह्मणःप्रिया। दे०भा० ६।१

सावित्री वामपार्श्वस्था दक्षिणस्था सरस्वती ।

कालिका पु० ८२ ॥

शतरूपा च सा ख्याता सावित्री च निगद्यते ।

सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तप ॥ मत्स्यपु०३।

इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि ब्रह्मा की दो स्त्रियों का वर्णन पुराणों में आया है। एक सावित्री और दूसरी सरस्वती। सावित्री को ही 'गायत्री' कहते हैं क्योंकि गायत्री ऋचा का देवता सविता है।

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादंपादमदूदुहत ।

तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठीप्रजापतिः ॥

मनु० २।७७॥

ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रोमहाव्याहृतयोऽव्ययाः ।

त्रिपदाचैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणोमुखम् ।म०।२।८१॥

एकाक्षरं परंब्रह्म प्राणायामाः परन्तपः ।

सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ।

म० २।८३॥

मनुस्मृति के इन श्लोकों से सिद्ध है कि गायत्री का ही नाम

'सावित्री' है। मनुजी ने प्रायः 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' इस गायत्री ऋचा के लिये सर्वत्र 'सावित्री' शब्द का प्रयोग किया है। इस ऋचा को 'गायत्री' इस हेतु कहते हैं कि इस का छन्द 'गायत्री' है। और 'सावित्री' इस हेतु कहते हैं कि इस ऋचा का देवता-सविता है 'सविता देवतायस्याः सा सावित्री' परन्तु पुराणों में इस सावित्री से तो तात्पर्य नहीं था। किन्तु सविता जो सूर्य उस की जो शक्ति उसे 'सावित्री' कहते हैं। "सवितुः सूर्यस्येयं सावित्री" इस सूर्य शक्ति में प्रथम पौराणिक तात्पर्य था परन्तु धीरे धीरे पौराणिकों ने अविद्यावश खूब खिचड़ी पकाई है। जो इसका प्रथम रचयिता था उस का भाव पीछे विस्मृत हो गया। इस हेतु यह सब कठिनाई उपस्थित हुई। जैसे ब्राह्मण ग्रन्थों और मनुस्मृत्यादि में ये दोनों गायत्री और सावित्री शब्द एकार्थक में प्रयुक्त हुए हैं वैसे ही पौराणिकों ने भी प्रयोग किया और एक ही देवी का नाम कहीं गायत्री और कहीं सावित्री रखते हैं। परन्तु कहीं पर इस से विरुद्ध भी पाते हैं। एवमस्तु। पौराणिक लीला विचित्र है।

"गायत्री से ब्रह्मा का विवाह"

पद्म पुराण सृष्टिखण्ड षोडशाध्याय में यह कथा है कि पुष्कर तीर्थ में ब्रह्मा जी यज्ञ करने लगे। जब सब पदार्थ प्रस्तुत हो गये तब ऋत्विकों ने ब्रह्मा को स्त्री यजमानी सावित्री को बुलाने के लिये दूत भेजा। सावित्री उस समय कार्य्य में आसक्त थीं इस हेतु यह कहा। यथा :—

इह मे नकृतं किञ्चित् द्वारे वै मण्डनं मया। भित्त्यां वै चित्र कर्म्माणि स्वस्तिकं प्राङ्गणे नतु। लक्ष्मीनाद्यापिआया-ता सतीनैवेहदृश्यते। महताऽऽग्रहेणाऽऽहुता शक्राणी

नाऽऽगतात्विह। मेधाश्रद्धा विभूतिश्च अनसूयाधृतिः-क्षमा। गङ्गासरस्वती चैवनाद्याऽऽगच्छन्ति कन्यकाः। ब्रूहिगत्वाविरञ्चिं तं तिष्ठतावन्मुहूर्तकम्। सर्वाभिः सहिताचाहमागच्छामित्वरान्विता। ११४—१२२।

अभी मैंने घर में कुछ नहीं किया है। द्वार का मण्डप नहीं हुआ। भीत के ऊपर चित्र अभी तक नहीं हुए। प्राङ्गण में स्वस्तिक नहीं लिखा है। अभी लक्ष्मी पार्वती जी नहीं आई हैं। बड़े आग्रह से इन्द्राणी बुलाई गई हैं वह भी नहीं आई हैं। मेधा, श्रद्धा, विभूति, गङ्गा, सरस्वती आदि कोई नहीं आई हैं। जाकर ब्रह्मा से कहो एक मुहूर्त ठहरें। अभी सब देवियों के साथ आती हूं। दूतने ऐसा ही जाकर कहा। ब्रह्मा जी एक मुहूर्त नहीं सहसके इन्द्र से कहा कि शीघ्र मेरे लिये दूसरी पत्नी ले आओ। इन्द्रजी एक गोपकन्या ले आए। विष्णु ने कहा कि इस से शीघ्र गन्धर्व विवाह की रीति से विवाह कर लीजये। ऐसा ही ब्रह्मा जी ने किया पश्चात् सावित्री रुष्टा हो कर चली गई ब्रह्मा जी का यज्ञ रुक गया। पुनः सावित्री को बहुत सी प्रार्थना कर यज्ञ में ले आए हैं।

तत्राऽऽयाताचसादेवी सावित्री ब्रह्मणः प्रिया। सावित्रीं संमुखीं दृष्ट्वा सर्व लोकपितामहः। गायत्र्या-सहितोब्रह्मा इदं वचनमब्रवीत। एषादेवीकर्मकरी अहंतेवशगःस्थितः। मामादिशवरारोहे यत्तु कार्य्यं-मयात्विह। एवमुक्तातुसावित्री स्वयं देवेन ब्रह्मणा। त्रपयाऽधोमुखी देवी न वक्तुं किञ्चिदिच्छति। पाद्ये।

पतितो तस्या गायत्री ब्रह्मचोदिता । इत्यादि। सृष्टिखण्ड अध्याय २६ ।

देव देवियों से प्रार्थना होने पर ब्रह्मा की प्रिया सरस्वती देवी वहां आईं, सन्मुख में स्थित सरस्वती को देख गायत्री सहित ब्रह्मा बोले। प्रिये! यह गायत्री तेरी दासी है। मैं तेरे वश में सदा स्थित हूं। जो आप आज्ञा करें मैं उसे करने को सदा प्रस्तुत हूं। इस प्रकार ब्रह्मा से प्रार्थिता सावित्री लज्जा से अधोमुखी हो गई ब्रह्मा के कहने से गायत्री सावित्री के चरण पर गिर पड़ी। इत्यादि कथा पद्मपुराण में विस्तार से कथित है। इस कथा से विस्पष्ट भाव निःसृत होता है कि सावित्री ही ब्रह्मा की मुख्य पत्नी है गायत्री नहीं। कविवरो! यहां यह विचार करो कि एक मुहूर्त ब्रह्मा जी सावित्री के लिए नहीं ठहर सके परन्तु इन्द्र एक कन्या को खोज लाए। सब देवों की सम्मति हुई। पश्चात् इससे विवाह हुआ। क्या इस में एक मुहूर्त समय नहीं लगा। अर्वाचीन पौराणिक लोग कभी २ शिशुवत् क्रीड़ा करते हैं॥

"सावित्री कथा का आशय"

ब्रह्मा जी की पत्नी [पालयित्री शक्ति] सावित्री है। इसका आशय अतिशय सरल है। 'सावित्री' शब्द के अर्थ जानने से ही इसका भाव प्रकाशित हो जाता है। [सवितुः सूर्यस्येयंसावित्री] सविता जो सूर्य उसकी जो शक्ति उसे सावित्री कहते हैं। यहां सूर्य की जो उष्णता है उस का ग्रहण है। सूर्य की उष्णता सूर्य से उत्पन्न

(१)-पत्नी चान्या मदर्थंतु शीघ्रंशक्र समानय॥१२७॥

(२)-तदेतां सुबहस्वाद्य मयादत्तां तव प्रभो। गान्धर्वेण विवाहेन उपयेमे पितामहः॥१८४॥

होती है इस हेतु मानों,वह सूर्य की कन्यावत् है। यह सूर्य इस उष्णता रूप सावित्री को वायु को देते हैं। इस सावित्री को पाकर वायुदेव शक्ति सम्पन्न हो जगत् की सृष्टि करते हैं। इस उष्णता-रूपा सावित्री के बिना वायु देव कुछ नहीं कर सकते हैं। इस हेतु वायु की द्वितीय जो सावित्री अर्थात् सूर्य की उष्णता है। परन्तु मुख्य शक्ति वायु की सरस्वती ही है। अब आप विचार कर लेवें, कि ब्रह्मा की पत्नी सावित्री कैसे बनी। वायु-स्थानीय ब्रह्मा जब पृथक् देव कल्पित हुआ तो अवश्य था कि यही सावित्री इनकी स्त्री कल्पित हो, जिससे सब गुण वायु के ब्रह्मा जी में घट सकें। विवेकि पुरुषों! अब इस का भाव आप लोगों को विस्पष्ट होगा।

शङ्का—आप लोग कदाचित् कहेंगे, कि यह क्या बात है, पहले वायु है, अथवा सूर्य है। सृष्टि प्रकरण से तो यह विदित होता है, कि प्रथम आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल इत्यादि। अग्नि पद से सूर्य आदि सब का ग्रहण है। इस क्रम के अनुसार सूर्य का कारण वायु होना चाहिए न कि वायु का कारण सूर्य। परन्तु आप प्रत्येक विषय में ही सूर्य की ही मुख्यता और कारण सिद्ध करते हैं। यह क्या बात है। समाधान। हे विद्वानो! इस में सन्देह नहीं कि वायु मुख्य है। सूर्य नहीं, परन्तु यहां जो कुछ आख्यायिका रचित हुई है वह लौकिकदृष्टि से अर्थात् जगत् में जो प्रत्यक्ष कार्य देख रहे हैं कि सूर्य की गरमी से वायु की वृद्धि होती है। प्रत्यक्ष देखते हैं कि चैत्र वैशाख ज्येष्ठ मास में यहां वायु की शक्ति बहुत होजाती है इन मासों में सूर्य प्रचण्ड रहता है। पृथिवी पर इसकी उष्णता अधिक आती है। इसी हेतु वायु भी प्रचण्ड रहता है। उष्णता के कारण वायु लघु होजाता है। वायु में जो जलकण रहते हैं उन्हें भी सूर्य सोख लेता है। इत्यादि प्रत्यक्ष दृष्टि में यही कहा जाता है कि वायु का चालक वा वाहक वा उत्पादक

सूर्य हो है । विद्वानो ! वायु यथार्थ में क्या वस्तु है, इस विद्या को वायव्यशास्त्र के द्वारा जानें यदि इसका निरूपण किया जाए तो ग्रन्थ बहुत विस्तार होजायगा यहां धर्म निरूपण ही मुख्य है । जिस लौकिक दृष्टि से आख्यायिका रचित हुई है उसका भाव प्रदर्शन करना यहां अपेक्षित और इष्ट है । आप अब देखें । मानो, वायु एक वस्तु है जो पृथिवी से कई कोश ऊपर तक घनीभूत होकर भरा हुआ है मानों वह एक देव है । और अभी अचल भाव से स्थिर है । क्योंकि अभी तक इसको कार्य करने की कोई शक्ति नहीं मिली है अब सविता [सूर्य] अपनी कन्या उष्णतारूपी सावित्री को वायु के निकट भेजते हैं । इस शक्ति को पाकर वायु अपने कार्य में दक्ष होजाता है । परन्तु वायु में जो शब्द उत्पन्न करने की एक शक्ति है, वह इसकी अपनी शक्ति है, जिसको सरस्वती कहते हैं । इस हेतु सरस्वती तो वायु की मुख्य और सावित्री गौण शक्ति है । अतएव ब्रह्मा जी की भी मुख्य पत्नी सरस्वती और गौण सावित्री है इस हेतु सरस्वती का विशेष वर्णन यहां करूंगा ॥

ब्रह्मा और सरस्वती

जैसे विष्णु की लक्ष्मी, महादेव की पार्वती, वैसे ही ब्रह्मा की सरस्वती शक्ति मानी गई है । अभी कह आये हैं कि वायु का ही धर्म शब्दोत्पत्ति करने का है वायु बिना शब्द उत्पन्न नहीं होता । शब्द का ही नाम सरस्वती है । जिस हेतु सरस्वती शब्द स्त्री लिङ्ग है इस हेतु इस को शक्ति के नाम से पुकारते हैं । जिस सुन्दरता से वायु देवता आकाश में रन रनाते और वनों के वृक्षों के साथ मधुर ध्वनि करते और जलप्रवाह में मिल सनसनाते, मानो, वीणा बजाते हुए सर्वत्र भ्रमण करते हैं । यही वायु देव मेघ के साथ मिल कर क्या ही घोर भयङ्कर नाद उत्पन्न करते हैं । यही मनुष्य के कण्ठ में प्रविष्ट हो कैसी मधुरता देते हैं । यह देव किस प्राणी को कुछ निज

गुण नहीं देते हैं। इस से सिद्ध है कि वायु की शक्ति वा पत्नी वा पालयित्री शक्ति सरस्वती है। इसी कारण वायुस्थानीय ब्रह्मा की भी पत्नी सरस्वती मानी गई। सरस्वती नाम वाणी का है इस में प्रमाणः—

श्लोकः। धारा। इला। गौः। गौरी। गान्धर्वी। गभीरा। गम्भीरा। मन्द्रा। मन्द्राजनी। वाशी। वाणी। वाणीची। वाणः। पवि। भारती। धमनी। नाली। मेनिः। मेना। सूर्या। सरस्वती। निवित्। स्वाहा। वग्नुः। उपब्दिः। मायुः। काकुद्। जिह्वा। घोषः। स्वरः। शब्दः। स्वनः। ऋक्। होत्रा। गीः। गाथा। गणः। धेना। ग्नाः। विपा। नना। कशा। धिषणा। नौः। अक्षरम्। मही। अदितिः। शची। वाक्। अनुष्टुप्। धेनुः। वल्गुः। गल्दा। सरः। सुपर्णी। बेकुरा। नि०। १। ११।

यहां ५७ सतावन नाम वाणी के हैं इन में सरस्वती, इला, भारती आदि नाम भी आगये हैं। यह वैदिक कोष का प्रमाण हुआ। अब लौकिक कोश का भी प्रमाण सुनिये।

ब्राह्मी तु भारती भाषा—गीर्वाग्वाणी सरस्वती।
व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः॥अमरकोश॥

वेदों में यह 'सरस्वती' शब्द 'नदी' और वाणी इन दोनों अर्थों में बहुधा प्रयुक्त हुआ है। परन्तु जैसे आजकल यह एक देवी 'वीणा-पुस्तक धारिणी' मानी जाती है, और वसन्त पञ्चमी आदि तिथि में इस की पूजा होती, वैसी देवी वैदिक समय में कभी नहीं मानी गई। कतिपय मन्त्र सरस्वती सम्बन्ध में यहां उद्धृत करते हैं।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः। १०। चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती॥ ११॥ महोअर्णः सर-

स्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्वा विराजति॥१२॥

कोई ऐसा देश नहीं जहां सत्यगुण और मनोहर वाणी की प्रशंसा न हो और ईश्वर की यह महती कृपा है कि मनुष्यों में व्यक्त वाणी दी है जिस के कारण से ही यथार्थ में मनुष्य मनुष्य है। हम मनुष्य अपने भाव को परस्पर प्रकट करते हैं। एक दो नहीं किन्तु सहस्रों शास्त्रों काव्य साहित्य इसी वाणी के द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। जंगली से जंगली मनुष्यजाति गीत संगीत के विवश हैं। हमारे वैदिक यज्ञों में सरस्वती का आधिपत्य न्यून नहीं है जब ऋत्विक् वीणा के ऊपर सामगान करना आरम्भ करते हैं मानो उस समय सब कोई क्या-विद्वान् क्या अज्ञानी क्या राजा क्या प्रजा क्या बालक क्या वृद्ध सब कोई सरस्वती देवी के वश हो और विमुग्ध हो चित्र लेख्यवत् हो जाते हैं। इस प्रकार निःसन्देह सरस्वती देवी का प्रभाव बहुत अचिन्त्य अलौकिक है। इस से बढ़ कर साक्षात् रस कोई नहीं। किसी किसी कवि ने इस को ब्रह्मानन्द का सहोदर कहा है, यदस्तु इस सरस्वती के रस को कौन नहीं जानता है। यहां वेदों में भगवान् उपदेश देते हैं कि शब्द का मुख्य प्रयोजन क्या है। इस से क्या क्या आन्तरिक और बाह्य लाभ जीवात्मा को पहुँच सकता है। और इस से यह भी शिक्षा देते हैं कि वाणी को किस काम में लगाना चाहिये। अथ मन्त्रार्थः—(वाजेभिः) विविध प्रकार की जो ग्राम मूर्छना आदि गाने की क्रिया स्वरूप गतिएं हैं उन्हें 'वाज' कहते हैं। उन गतियों के साथ (सरस्वती) सरस वाणी अर्थात् परम पवित्र वेद वाणी और तत्सदृश अन्य वाणी भी (नः) हम लोगों के अन्तःकरण को (पावका) पवित्र करती है। वह कैसी सरस्वती है

(१) वज, व्रज, गतौ। गति अर्थ में 'वज' धातु है। इसी से 'वाज' बनता है। गान की जो विविध प्रकार की गतिएं हैं उन्हीं को यहां वाज कहा है॥

(वाजिनीवती) जो स्वाभाविका प्रशस्त विविध तान, स्वर आदि-गति से युक्ता है पुनः (धियावसुः) जो शीघ्र बुद्धि में वास करने वाली है। ऐसी जो वाणी है। वह (यज्ञम्) यजनीय परमात्मा को अथवा यज्ञ की (वष्टु) कामना करने वाली होवे। यह प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि जब हम लोग उत्तम मनोहर गीतिका-युक्ता और उपदेश मयी सरस्वती (वाणी) सुनते हैं तो उस समय निःसन्देह चित्त ईश्वर की ओर खिंच जाता है। इस से बढ़ कर अन्तःकरण की पवित्रता क्या है। परन्तु यह तब ही हो सकता है यदि वह वाणी 'धियावसु' अर्थात् बुद्धि में पूर्ण रीति से प्रविष्ट हो गई हो। इस से यह उपदेश मिलता है कि वाणी ऐसी बोलनी वा गानी चाहिये जो सब कोई साथ साथ समझते जांय। अब पुनः वेद उपदेश देता है कि हे मनुष्यो! तुम्हारी ऐसी पवित्र वाणी यजनीय ईश्वर की ओर ही लगे इसी से तुम्हारा कल्याण है और यही वाणी का महान् प्रयोजन है। आगे भी इसी प्रकार का भाव जानना। अथवा इस का यह भी अर्थ होगा। (नः) हम मनुष्यों की (सरस्वती) वाणी = भाषण। (पावका) शुद्ध होवे। अर्थात् सत्य युक्ता होवे। वह शुद्ध कैसे हो सकती है तो कहते हैं (वाजेभिः) गतियों से अर्थात् ज्ञानों से वाज = गति = ज्ञान। 'वजव्रज गतौ' क्योंकि वह सरस्वती स्वयं (वाजिनीवती) ज्ञानवती है। अर्थात् जब मनुष्य में वाणी होती है। तब उस से भला बुरा विचार करता ही रहता है। वाणी से ही ज्ञान का विचार होता है। इस हेतु वाणी में स्वाभाविक ज्ञान-विचार का धर्म है। पुनः वह पावका कैसे हो सकती है। (धियावसुः) ज्ञान में ही यदि उसका वास हो। अर्थात् यदि प्रतिक्षण ज्ञान की बातों में लगी रहे। वह वाणी (यज्ञं + वष्टु) यजनीय परमात्मा की कामना करे इत्यादि १०। (सूनृतानाम्) सत्य प्रिय वाक्यों की (चोदयित्री) प्रेरणा करने वाली (सुमतीनाम्) शोभनबुद्धियुक्त पुरुषों को (चेतन्ती) चेताने वाली जो (सरस्वती) वाणी है। वह (यज्ञम्) यजनीय

परमात्मा को अथवा विविध यज्ञ को (दधे) धारण करती है। अर्थात् जो वाणी प्रिय और सत्ययुक्त है और बुद्धिमान् को सर्वदा वितीर्ण देने वाली परम शुद्ध पवित्र देवी वाणी है उसी से ईश्वर की स्तुति प्रार्थना की जाती है। अर्थात् प्रथम वाणी को सत्ययुक्ता प्रिया और नित्र कर्मों की रचयित्री बनानी चाहिये। तब उस से यज्ञादि शुभकर्म करें यह उपदेश है। ११। (सरस्वती) पूर्वोक्त-गुण विशिष्टा वाणी (केतुना) निज कर्म से (महः) बहुत (अर्णः) आनन्दाब्धि रस को जगत् में (प्रचेतयति) उत्पन्न करती है। अर्थात् पवित्र वाणी से केवल अपना ही उपकार नहीं होता किन्तु जगत् में भी महान आनन्दाब्धि विस्तृत होता है। और वही वाणी तब (विश्वा) निखिल (धियः) कर्मों को (विराजति) प्रदीप्त करती है। जब वाणी शुद्ध होती है। तब ही शुभ कर्म भी शोभित होते हैं। यह कैसा उत्तम वाग्देवी का वर्णन है। हे विद्वानो! निःसन्देह, प्रथम वाणी पवित्र करनी चाहिये।

इला सरस्वती मही तिस्रोदेवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः। ऋ०। १। २५। ६।

अर्थः—(इला+सरस्वती+मही) इला, सरस्वती और मही ये तीन प्रकार की वाणी के नाम है। इन के भेद संगीत शास्त्र से प्रतीत होते हैं ये (तिस्रः+देवीः) तीन प्रकार की देदीप्यमान वाणी (मयोभुवः) सुखोत्पन्न करने वाली है और (अस्रिधः) सरस है। ये तीनों प्रकार की वाणि (बर्हिः) मेरे हृदय रूप आसन पर (सीदन्तु) विराजमान होवें। इस मन्त्र में इला, सरस्वती और मही ये तीनों वाणी के नाम है। परन्तु अन्यान्य मन्त्रों में मही के स्थान में प्रायः भारती शब्द आया करता है और इन तीनों के विशेषण में "देवी" शब्द बहुधा प्रयुक्त हुआ है क्योंकि लोगों को वाणी आमोद, प्रमोद,

आनन्द देती है इस कारण ये तीनों देवी हैं। अतो वाणी के नामों में ये तीन नाम देखे हैं यद्यपि ये पर्याय वाचक हैं तथापि इन में बहुत कुछ भेद है।

"सरस्वती आदि तीन देवियें"

शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती।
इला सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः॥१।१४२।९॥

अर्थः—(मरुत्सु+देवेषु) अनेक प्रकार की वायु दे में (अर्पिता) समर्पित। यहां मरुत् शब्द से विविध प्रकार के गाने के जो षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ये सात स्वर और ग्राम मूर्च्छना आदि गतिएं हैं उनका ग्रहण है। जब वाणी इन स्वर रूप देवताओं में अर्पित होती है तब (शुचिः) पवित्र और (होत्रा) होमनिष्पादिका अर्थात् यज्ञसम्पादन योग्य होती है। इस प्रकार शुचि (मही) महती (भारती+इला+सरस्वती) भारती+इला सरस्वती तीन प्रकार की वाणी (वर्हिः) हृदय रूप आसन पर [सीदन्तु] बैठें। ये तीनों कैसी हैं [यज्ञियाः] ईश्वर सम्बन्धी वा यज्ञ सम्बन्धी, यहां सायण कहते हैं कि द्युस्थाना वाणी का नाम भारती, पार्थिव वाणी का नाम इला। और माध्यमिका [मैवस] वाणी का नाम सरस्वती है। यहां मही शब्द विशेषण में आया है।९।

भारतीळे सरस्वती या वः सर्वाउपब्रुवे।
ता नश्चोदयत श्रिये। १। १८८। ८॥

अर्थः—[भारति+इळे+सरस्वति] हे भारती ! हे इला ! सरस्वती ! (याः+वः सर्वाः) जो आप सबों को [उपब्रुवे] मैं सेवन करता हूं। (ताः) वे आप [नः] हमारे [श्रिये] कल्याण

के लिये [चोदयन] प्रेरणा करें, हमें शुभ कर्मों में लगावें यहां अध्यारोप करके वर्णन है किसी ब्रह्मचारी ने तीनों प्रकार की वाणी में परिश्रम किया है। वह अपने मन में विचार कर रहा है और मानों वाणी को साक्षात्कार करके कहता है कि हे वाणी! मैंने परिश्रम से तेरा अभ्यास किया है। अब यज्ञादि में मेरी सहायता कर॥ ऐसा कहने का मनुष्य का स्वभाव है। आज कल भी विद्यार्थी जब एक ग्रन्थ को समाप्त करता है तो बड़ी प्रसन्नता से कहता है कि ग्रन्थ! अब मुझ पर दया रक्खो विस्मृत मत होजाना। इत्यादि इस से यह सिद्ध नहीं होता है कि इस ने ग्रन्थ को चेतन मान लिया। इस प्रकार कहने का मनुष्यस्वभाव है। इसी स्वभाव का वेद में भी वर्णन है।

आ भारती भारतीभिः सजोषा इला देवैर्मनुष्येभिरग्निः सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ।३।४।८॥ भारतीपवमानस्य सरस्वतीलामही इमंनोयज्ञमागमन् तिस्रो देवीः सुवेशसः।६।५।८॥

इन सबों का भी अर्थ पूर्ववत् ही है। इस प्रकार अनेक ऋचाओं में इला, भारती, सरस्वती ये तीनों नाम साथ आते हैं।

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञंनो देवी रमृतेषु धत्त।

य० २८।८॥

अर्थ—(भारती) भारती वाणी (आदित्यैः) आदित्यों के साथ (नः+यज्ञम्) हमारे यज्ञ को (वष्टु) कामना करे। (सरस्वती) सरस्वती वाणी (रुद्रैः) रुद्रों के साथ (नः) हमारे यज्ञों को (आवीत्)

रक्षा करे। (उपहूता) सम्यक् अभ्यर्थित (इडा) इला वाणी (वसुभिः) वसुयों के साथ (सजोषाः) प्रीति से युक्त हो (नः+यज्ञम्) हमारे यज्ञ को (अमर्तेषु) वायु आदि अमर देवों में (धत्त) स्थापित करे। ८।

इस मन्त्र से विस्पष्टतया सिद्ध होता है वाणी तीन प्रकार की है आदित्य सम्बन्धी, रुद्र सम्बन्धी और वसु सम्बन्धी। इस में रहस्य यह है सामवेद आदित्य देवत। रुद्र नाम वायु का है। यजुर्वेद वायुदेवत और ऋग्वेद अग्नि देवत। वसु नाम अग्नि का है। इसका विस्पष्ट भाव यह हुआ है कि सामवेद सम्बन्धी गान का नाम भारती। यजुर्वेद सम्बन्धी वाणी का नाम सरस्वती और ऋग्वेद सम्बन्धी वाणी का नाम इला वा इड़ा है। इन्हीं तीन के अन्तर्गत अथर्व है। अथवा सूर्य, वायु और अग्नि इन तीनों तत्त्वों से वाणी बनती है। अथवा तीन प्रकार के जो आदित्य, रुद्र, वसु नाम के ब्रह्मचारी होते हैं। इन तीनों की जो वाणी है वह क्रम से भारती सरस्वती और इला कहलाती है। ये तीनों प्रकार के ब्रह्मचारी अपनी अपनी वाणी से यज्ञ को सुशोभित करें। यह ईश्वर का उपदेश होता है।

देवीस्तिस्रस्तिस्रोदेवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन्।
अस्पृक्षद् भारती दिवं रुद्रैर्यज्ञं सरस्वती॥
इडावसुमती गृहान् वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज।

य० २८। १८॥

इस का पूर्ववत् भाव है। यहां तीनों भारती, सरस्वती, इड़ा देवियां पति अर्थात् पालक इन्द्र को प्रसन्न कर रही हैं। यहां इन्द्र शब्दार्थ परमात्मा है। ऋग् यजुः साम तीनों वाणी ईश्वर की ही स्तुति करती हैं वेदों का पति ईश्वर ही है। जीवात्मा में भी यह

घट सकता है क्योंकि यदि जीवात्मा न हो तो उच्चारण कौन करे। जीवात्मा इस वाणी से निःसन्देह अति प्रसन्न होता है परन्तु मुख्यतया 'इन्द्र' शब्दार्थ यहां 'वायु' से 'स्वर' का तात्पर्य है यज्ञ के प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और सायंसवन में जो ऋचाएं पढ़ी जाती हैं और उन के द्वारा जो आहुति होती है उससे सर्वत्र लाभ पहुंचता है इस का इस में वर्णन है । १८ ॥

होता यक्षत् तिस्रोदेवीर्नभेषजं त्रयस्त्रिधा तो अपस इडा सरस्वती महीः । इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होत र्यज । यजु० । २८ । ८

इस का भी भाव पूर्ववत् है । यहां पर भी इड़ा, सरस्वती और भारती को 'इन्द्रपत्नी' कहा है । इन्द्र के पालन करने वाली को 'इन्द्रपत्नी' कहते हैं । महीधर कहते हैं "इन्द्रपत्नी . इन्द्रस्य पत्न्यः पालयित्र्यः" पत्नी शब्द का अर्थ पालयित्री है यदि वेद न होतो ईश्वर की रक्षा अति कठिन है । इस हेतु वेद वाणी इन्द्रपत्नी है अथवा इन्द्र जिन का रक्षक हो उन्हें 'इन्द्रपत्नी' कहते हैं । "इन्द्र-पतिः पालको यासां ता इन्द्रपत्न्यः" । इत्यादि भाव . इस का हो सकता है । विश्वेदेव के साथ,एकेला सरस्वती शब्द . बहुधा-प्रयुक्त हुआ है । आगे सरस्वती सम्बन्धी कतिपय .ऋचाएं लिखेंगे उस में इस का उदाहरण . देखलेना । परन्तु कहीं २ केवल सरस्वती शब्द आया है । जिस के उदाहरण प्रथम भी कुछ लिख आए हैं यहां दो उदाहरण और भी देते हैं ।

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् । (१) । ९ । ६७ । ३२ ॥

अर्थ—जिन वाणियों में (ऋषिभिः) ऋषियों ने (रसम्) परमात्मसम्बन्धी विज्ञान रूप रस को (संभृतम्) भरा है उन (पावमानीः) अन्तःकरण पवित्र करने वाली वाणियों को (यः) जो ज्ञानीजन (अध्येति) पढ़ते विचारते हैं (तस्मै) उन अध्येताओं के लिये (सरस्वती) वाणी (क्षीरम्) क्षीर (सर्पि) घृत और (मधूदकम्) मधुरस (दुहे) देती है। यहां भगवान् उपदेश देते हैं कि जो वेदवित् परम ज्ञानी जन हैं उन के ही रचित ग्रन्थ पढ़ने चाहिये उन ही से कल्याण होता है। और जो अवेदवित् नास्तिक जन हैं उन के ग्रन्थ पढ़ने से ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों नष्ट होते हैं। यहां सरस्वती शब्द का अर्थ अभ्यसित विद्या है।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्
॥ १० । १७ । ७ ॥

अर्थ—(देवयन्तः) परमेश्वर के भक्त जन (सरस्वतीं) विद्या का (हवन्ते=आददति) ग्रहण करते हैं। अर्थात् विद्या में प्रेम करते हैं। (अध्वरे+तायमाने) यज्ञ जब होने लगता है तब ज्ञानी जन (सरस्वतीम्) विद्या का ही आवाहन करते हैं क्योंकि यज्ञ में विद्या का ही काम पड़ता है। (सुकृतः) सुकृती पुरुष सर्वदा [सरस्वतीम्+अह्वयन्त] विद्या का ही ग्रहण करते आए हैं। जो जन विद्या की शरण में रहते हैं उस [दाशुषे] परिश्रमी पुरुष को [सरस्वती] विद्या भी [वार्यम्] अच्छे वरणीय कर्मफल [दात्] देती हैं। ७।

नोट (१) यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥ ९ । ६७ । ३१ ॥

"सरस्वती और नदी"

इयं शुष्मेभि र्बिसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः। पारावतघ्नी मवसे सुवृक्तिभिः सरस्वती माविवासेम धीतिभिः॥ ऋ० ६।६१।२

(इयम्+सरस्वती) यह सरस्वती अर्थात् सरस मधुर जल वाली नदी [शुष्मेभिः] अपना विदारण करने वाली [तविषेभिः] महान् प्रचण्ड-वेगवान् [ऊर्मिभिः] तरंगों से [गिरीणाम्] तटस्थ पर्वतों के [सानु] शिखरों को [अरुजत्] भग्न करती है। इस में उपमा देते हैं। [बिसखाः+इव] कमल के बिस को [कमल के जड़ में जो कन्द होता है उसे बिस कहते हैं] खोदने वाले जैसे कमल को उखाड़ देते हैं। तद्वत्। वह कैसी है [पारावतघ्नीम्] जो तट से बहुत दूर ग्राम वृक्षादिक हैं उन्हें भी नष्ट करने वाली है। हम लोग [सुवृक्तिभिः] अच्छे [धीतिभिः] उपायों से [अवसे] रक्षा के लिये उस पारावतघ्नी [सरस्वतीम्] सरस्वती के निकट [विवासेम] पहुंचें भाव इस का यह है कि जब नदियों से उपद्रव पहुंचे तब बुद्धिमानों को उचित है कि इस का पूरा प्रबन्ध करें।

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः प्र बाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः। ७। ९५। १

अर्थ—[एषा] यह [सरस्वती] सरस्वती नदी [धायसा] तीक्ष्ण [क्षोदसा] जल प्रवाह के साथ [प्र+सस्रे] बड़े वेगसे दौड़ रही है। यह कैसी है (आयसी+पूः) लौहनिर्मित नगरी के समान

(भरुणम्) हम लोगों की रक्षा करने वाली। पुनः कैसी है (सिन्धु) बड़े वेग से बहने वाली वह सरस्वती [महिना] अपनी महिमा से अर्थात् अपनी तीक्ष्ण धारा से। (अन्याः+अपः) अन्यान्य नदियों को (बाबधाना) बाधित करती हुई (रथ्या+इव) सारथी के समान (प्रयाति) जा रही है। जैसे रथ पर बैठ मनुष्य अपने रथ से मार्गस्थ लताप्रभृतियों को चूर्ण करता हुआ जाता है। तद्वत् सरस्वती नदी अन्य नदियों को दबाती हुई जा रही है। यहां 'अप्' शब्द से नदी का ग्रहण है। १

एका चेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्। रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयोदुदुहे नाहुषाय ॥ ७। ६५। २ ॥

अर्थः—[नदीनाम्] अन्यान्य नदियों में [शुचिः] शुद्ध स्वच्छ जलवाली और [गिरीभ्यः] पर्वतों से निकल कर [आसमुद्रात्] समुद्र पर्य्यन्त [यती] जाती हुई [एका] एक [सरस्वती] सरस्वती नदी [अचेतत्] असंख्य जंगम स्थावरों को प्राण देरही है। इसी को आगे विस्पष्ट करते हैं [भूरेः] बहुत असंख्य [भुवनस्य] भूतजात अर्थात् प्राणियों को [रायः] खुराक भोजन पहुंचाकर [चेतन्ती] जिलाती हुई [नाहुषाय] मनुष्य संतान के लिये [घृतम्+पयः] घृत और दूध (दुदुहे) देती है। २ ॥

नदी का यह कैसा उत्तम वर्णन है। उसी नदीका जल शुद्ध होता है जो पर्वत से निकलती है। जैसे गंगा। एकतो सहस्रों जलजन्तु नदी से पलते हैं। इस के अतिरिक्त इस के पानी से विविध अन्न उत्पन्न होते हैं नदीतट पर शस्यसम्पन्न देश होता है। सर्वदा हरी हरी घासें लगी रहती हैं। ग्रामपशु गौ, बैल, भैंस, बकरे, भेड़, घोड़े आदि खूब चरकर सुपुष्ट रहते हैं। इन से गृहस्थ आनन्द से काम लेते हैं।

बियाई हुई गौ भैंस खूब घास चर कर अधिक दूध देती है। इस प्रकार यदि विचारेंगे तो मालूम होगा कि नदी क्या नहीं देती है।

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महोमहीरवसा यन्तु वक्षणीः देवी रापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥ १० । ३४ । ६

अर्थः—(ऊर्मिभिः) तरंगों से संयुक्त (महः+महीः) बड़ों में भी महान् [सरस्वती+सरयुः+सिन्धुः] सरस्वती, सरयु और सिन्धु नदियां (अवसा) अपने गमन से (वक्षणीः) ढोनेवाली हो (आयन्तु) हमारे देश में आवें। और उन को (देवीः) दिव्य शुद्ध स्वच्छ (मातरः) अनेक पदार्थ के निर्माण करने वाले (सूदयित्न्वः) नौका आदिकों को चलाने वाले (आपः) जल (नः) हमारे देशस्थ (पयः) जल को (घृतवत्) घृत के समान पुष्ट और (मधुवत्) मधु के समान स्वादिष्ट (अर्चत) बनावें । ९ ॥

हे विद्वानो ! इस वर्णन के ऊपर ध्यान दीजिये ! परमेश्वर उपदेश देता है कि जहां का जल अच्छा न हो अथवा जल हो न्यून हो वहां नहरें खोदवा कर नदी लेजानी चाहिये । उन नदियों के जल से देशस्थ दुष्ट जल भी अच्छा हो जायगा । इस से केवल इतना ही लाभ नहीं होगा किन्तु वह जल (वक्षणीः) तुम्हारे पदार्थों को ढोने वाला भी होगा । कैसी नदी लानी चाहिये सरस्वती जिस का जल सरस अर्थात् मधुर हो और सरयु=जिस का वेग बहुत हो और सिन्धु=जिसका जल अगाध,गंभीर हो। ऐसी २ नदियों को लाकर देश की रक्षा करनी चाहिये ।

पञ्च नद्यः सरस्वती मपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देसेऽभवत्सरित् । य०-३४-११ ॥

अर्थ—(सस्रोतसः) समान स्रोत-वाली (पञ्च+नद्यः) पांच नदियां (सरस्वतीम्+अपियन्ति) सरस्वती में मिलती हैं। (तु) निश्चय (सा+उ× सरस्वती) वही सरस्वती (पञ्चधा) पांच से मिलकर (देशे) देश में [सरित्+अभवत्] नदी होती है। यहां पञ्च शब्द उपलक्षण मात्र है। जब किसी एक नदी में अनेक नदियां मिलती हैं तो वही नदी बहुत बड़ी होकर देश में सरित्=महानदी नाम से पुकारी जाती है। यह ऋचा वाणी में भी घटती है। पांचों इन्द्रिय नदीवत् हैं।

"सरस्वती नाम पर विचार"

आप लोगों को स्मरण रखना चाहिए कि सरस्वती, सरयु, गङ्गा, यमुना, शुतुद्री, परुष्णी, असिक्नी, और वितस्ता आदि जो नाम वेद में आये हैं वे किन्हीं खास नदियों के नाम नहीं। वे गुण वाचक शब्द हैं। अर्थात् नदी के विशेषण हैं। नदी कैसी होती है। नदी किस को कहना चाहिये इस से क्या लाभ हानि है इत्यादि वर्णन अवश्य वेद में होने चाहिये। सृष्टि के आदि में पदार्थ-गुण ज्ञान वेद के शब्दों को ही लेके कर पदार्थों के ऋषियों ने नाम रक्खे हैं। वेद में जैसा वर्णन है और जो शब्दार्थ जिस में घट सकता है। तदनुकूल नाम-करण करते गये हैं। दूसरी बात यह भी है कि जो सम्प्रदाय देश में अधिक फैलता है उसी के अनुसार नाम भी होते हैं। जैसे आज कल शिव, राम कृष्ण, गङ्गा आदि नामों पर लोग अपने सन्तानों के नाम रखते हैं। अति प्राचीन समय में वैदिक धर्म ही सर्वत्र प्रचलित था इस हेतु वेद के शब्दों के ऊपर बहुत नाम हैं वेद में नदी के विशेषण में सरस्वती सिन्धु सरयु आदि नाम आये हैं। अतः अपने देशी नदियों के भी वैसे ही नाम रख दिये। बहुत दिनों के पीछे जब वेद के यथार्थ अर्थ भूल गये तब लोग समझने लगे कि इन्हीं नदियों का वेदों में वर्णन है परन्तु सर्वसिद्धान्त से वैदिक शब्द

नित्य मान गये हैं इस हेतु इस में किसी विशेष नदी का नाम नहीं हो सकता। स्मृतियों में कहा गया है:—

ऋषीणां नामधेयानि यश्च वेदेषु दृष्टयः।
शर्वर्य्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्योददात्यजः॥
यथर्तावृतु लिङ्गानि नानारूपाणि पर्यय।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥ इत्यादि॥

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि वैदिक नाम से ही पदार्थों का नामकरण हुआ, हम आगे इन सब शब्दों का एक एक का अर्थ करेंगे। इस हेतु यह शंका नहीं करनी चाहिये कि वेद में अनित्य वा खास किसी वस्तु का नाम है।

'वेद में नदी का वर्णन'

जगत् में नदी भी ईश्वरीय-विभूति-प्रदर्शन में सहायिका होती है वैशाख ज्येष्ठ में जब सूर्य भूमि को दग्ध करना आरम्भ करता है। घासें सूख जाती हैं। उष्णता से लोग व्याकुल होने लगते हैं। छोटे २ तालाव सरोवर का जल समाप्त हो जाती है। उस समय हम किस आनन्द से नदी में स्नान करते हैं प्रहर रात्रि से लेकर प्रहर रात्रि तक मनुष्यों की कैसी भीड़ तट पर शोभित रहती है। इतना ही नहीं हमारे पशु गौ, बैल, भैंस, बकरे, भेंड़ झुण्ड के झुण्ड भानुरश्मि से सन्तप्त हो पानी पीने को दौड़ते हैं। महिष (भैंस) किस आमोद प्रमोद के साथ घण्टों जल-क्रीड़ा करती रहती हैं। इसी प्रकार रात्रि में अन्य पशु इस नदी से महान् लाभ उठाते हैं। इन सबों से बढ़कर हमारे खाद्य पदार्थों में यह नदी रस पहुंचाती है। इस के पानी से सैकड़ों भोज्य वस्तुओं को कृषीबल (किसान) सदा उत्पन्न करते रहते हैं। इस का तट सर्वदा उर्वरा (उपजाऊ) रहती-

है। वर्षा ऋतु में इस की दशा कभी २ अत्यन्त भयंकरी हो जाती हैं। जहां यह लाभ पहुंचाती हैं अब वहां इस का पानी इतना बढ़ जाता है कि ग्राम २ में पानी पानी हो जाता है। हजारों गृह गिर कर भूमि में मिल जाते हैं। इस में मनुष्य भी डूब कर बहुधा मर जाते हैं। जहां नदी की बाढ़ होती है, वहां समुद्र के समान दृश्य प्रतीत होता है। परन्तु इतनी भयङ्करी होने पर भी नदी अपनी उत्पादक शक्ति से लोगों के दुःख को भुला देती है। जब इस के कारण से पूर्ण शस्य उत्पन्न होते हैं। तब प्रजाएं गद् गद् हो जाती हैं। और पिछले क्लेश को भूल जाती हैं इस प्रकार नदी हम को, हमारे द्विपद चतुष्पदों को और अन्य पशु पक्षियों को जीवन-प्रद जल देती है। अन्न देती है। प्रचुर घास देती है। बहुत धन देती है। शीतलता प्रदान कर अति सुख देती है। स्वच्छ पानी के देने से जीवन की रक्षिका भी होती है। और स्वास्थ्य की रक्षा से मानों व्याधि की भी विनाशयित्री होती है। अपनी तरंग की क्रीड़ा और चञ्चलता से हम को ईश्वराभिमुख करती है। इस हेतु इस को ईश्वरपथ-प्रदर्शिता-भी कह सकते हैं। ऐसी सुखप्रदा नदी के गुण कीर्तन वेद में क्यों न होंगे। परन्तु क्या इस हेतु नदी की स्तुति प्रार्थना हम मनुष्य करें ? नहीं नहीं कदापि नहीं। यह तो अज्ञानता की बात है। नदी जड़ है। हमारी स्तुति प्रार्थना को यह नहीं सुन सकती है। क्या वेद इस की स्तुति करने के लिये हमें आज्ञा नहीं देते हैं ? नहीं नहीं कदापि नहीं। वेद का यह अभि-प्राय नहीं। वेद इन के गुणों को केवल बतलाता है। और दर्शाता है कि इन में भी ईश्वर की विभूति देखो। आर्य सन्तानों ! जो लोग आज कल गङ्गा कावेरी नर्मदा त्रिवेणी अथवा सागर आदि की पूजा करते हैं और इन पर पूजा चढ़ाते हैं और इन में स्नानादि से पाप कटना समझते हैं वे निःसन्देह बड़े अज्ञानी हैं। वेद के तत्त्व से सर्वथा विमुख हैं। ज्ञानी पुरुषो ! मनुष्य ज्ञान के प्रताप से इन

सबों से बहुत बड़ा है। मनुष्य के ये सब दासवत् हैं मनुष्य का स्तुत्य, प्रार्थनीय, जपनीय सेवनीय, एक परमात्मा है। इन सबों का कर्ता धर्ता ईश्वर ही है।

अहंभूमिमददामार्य्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवास अनु केतमायन्।

ऋ० ४। २६। २॥

अर्थ—ईश्वर कहता है कि मनुष्यो! (अहम्) मैं (आर्य्याय) मनुष्यों को (भूमिम्) निवास के लिये भूमि (अददाम्) देता हूं (अहम्) मैं (दाशुषे+मर्त्याय) धार्मिक और यज्ञानुष्ठानादि करने वाले मर्त्यलोक के लिये (वृष्टिम्) वर्षा देता हूं (अहम्) मैं (अपः+वावशानाः) शब्दायमान जल (अनयम) लाता हूं (देवा) अग्नि, वायु, सूर्य प्रभृति सकल देव (मम+केतम्) मेरे सङ्कल्प के (अनु+आयन्) अनुगामी होते हैं।

अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः।
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान्॥

ऋ० । १० । १८३ । ३ ।

[अहम्] मैं [ओषधीषु] ओषधियों में (गर्भम्) गर्भ (अदधाम्) स्थापित करता हूं। (अहम्) मैं (विश्वेषु+भुवनेषु) समस्त भुवनों के (अन्तः) मध्य व्यापक हूं (अहम्) मैं (पृथिव्याम्) पृथिवी के ऊपर (प्रजाः+अजनयम्) प्रजाओं को उत्पन्न करता हूं (अहम्) मैं (अपरीषु+जनिभ्यः) अन्यान्य सकल निर्माण और उत्पन्न करने वाली शक्तियों में (पुत्रान्) सन्तान उत्पन्न करता हूं। इस से यह सिद्ध हुआ कि भगवान् ही जल का भी प्रेरक है भगवान ओषधी में शक्ति देने वाला है अतः वही सर्वथा पूज्य है। ईश्वर को छोड़

अविवेक-वश जो नदी आदि जड़ को पूजा करते हैं वे जड़बुद्धि और बालक हैं ।

अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामापृथिवी दर्शतं वपुः । अस्मे सूर्य्याचन्द्रमसा भिचक्षे श्रद्धेकमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् । ऋ० १ । १०२ । २ ॥

इसी के यश को प्रवहणशील नदिएं धारण करती हैं । द्यावा पृथिवी इसी का यश प्रगट कर रही हैं । हे भगवन् ! हमारी श्रद्धा के हेतु ये सूर्य चन्द्र निरन्तर कार्य्य कर रहे हैं । देखिये ऋषि क्या कहते हैं—

एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्याः नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्यायाञ्च दिशमन्वेति । योऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं योऽन्तरो यमन्त्येष आत्मान्तर्याम्य मृतः । बृहदारण्यकोपनिषद् ।

"सरस्वती विद्याधिष्ठात्री देवी"

सरस्वती विद्या अधिष्ठात्री देवी कैसे बन गई ? वेदों के वर्णन से अभी देखा है कि 'सरस्वती' नाम वाणी और विद्या आदि का है । हम देखते हैं कि विद्वानों को प्रतिष्ठा क्या पूर्व समय क्या आज कल सर्वदा होती आई है । जिस समय महाराजों के गृह पर यज्ञ होते थे । जिस में देश २ के भूप आहुत होते थे । सहस्रों लाखों मनुष्य एकत्रित होते थे । उस महायज्ञ में जब विद्वान् सिंहासन

पर बैठ कर उपदेश देते होंगे और वेद के गान से सबों के हृदय को अपनी ओर खींचते होंगे। उस समय, अनुमान कीजिये, लोगों के हृदय में उन विद्वानों की कितनी गौरव प्रतिष्ठा होती होगी। लोग समझते होंगे कि इस की जिह्वा पर साक्षात् सरस्वती नृत्य कर रही है। यह ईश्वर की महती कृपा है। इस के ऊपर सरस्वती का अनुग्रह है। आज कल भी लोग विद्वान् और सुवाग्मी को देख कहते हैं कि इस के मुख पर सरस्वती विराजमान है॥ यज्ञ में उद्गाता ऋत्विक् पूर्व समय वीणावाद्य के ऊपर सामगान किया करते थे। इस में सन्देह नहीं कि वाद्य से यों ही लोग मोहित रहते हैं परन्तु जिस समय बड़े प्रवीण जन गाते होंगे उस से तो और अधिक मोहित होते होंगे। इस प्रकार वाणी का अद्भुत प्रभाव देख कर भोरे भोरे लोग समझने लगे कि सरस्वती कोई देवता है जिसकी कृपा से मनुष्य जगत् में परम प्रतिष्ठित होता है पूर्व समय वीणा ही प्रधानतया बजाई जाती थी। इस हेतु लोगों ने समझा कि सरस्वती का बाजा वीणा है। इस प्रकार क्रमशः सरस्वती देवी विद्या और गान दोनों की अधिष्ठात्री देवी बनी। और नादविद्या विशेषतया वायु अर्थात् स्वर के अधीन है। इस हेतु वायु स्थानीय ब्रह्मा की शक्ति समझी गई। परन्तु जैसे लक्ष्मी नारायण, गौरी शङ्कर शब्द प्रसिद्ध है। वैसे 'सरस्वती ब्रह्मा' समस्त शब्द कहीं नहीं प्रयुक्त होता और न लोग बोलते हैं यद्यपि ब्रह्मा अपूज्य हैं। तथापि सरस्वती की पूजा बहुत है। ब्रह्मा के साथ सावित्री वा गायत्री के भी नाम नहीं आते। ये देवियें भी पूज्य हैं। परन्तु ब्रह्मा नहीं।

"सरस्वती और अमरकोश आदि"

अमरकोश में जहां विष्णु और महादेवजी के नाम आए हैं वहां इन दोनों की शक्ति लक्ष्मी और पार्वती के भी नाम विदित हैं। परन्तु ब्रह्मा के नाम के साथ न सरस्वती का और न गायत्री सावित्री

नाम आया है। इतना ही नहीं किन्तु अमरकोश में ब्रह्मा की पत्नी या शक्ति कहीं नहीं कही गई है। यह आश्चर्य प्रतीत होता है। अमर सिंह ने इन्द्रादि देवताओं की भी शक्तियों के नाम दिये हैं। परन्तु ब्रह्मा की पत्नी की कोई चर्चा नहीं इस से प्रतीत होता है कि अमरसिंह के समय तक प्रायः सरस्वती आदि ब्रह्मा की पत्नी नहीं बनीं थीं। और न अन्यान्य ही कोई ब्रह्मा की पत्नी मानी जाती थी। पुराणों में कहीं २ सरस्वती विष्णुपत्नी कही गई हैं। परन्तु यह सम्प्रदाय का पक्षपात है "लक्ष्मी सरस्वती गङ्गातिस्रा भार्या हरेरपि। प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठन्ति सततं हरिसन्निधौ" देवी भागवत ९। ६। १७। देवी भागवत में सावित्री ब्रह्मा की प्रिया कही गई "पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्रह्मणः प्रिया"। ९। ४०। पूर्व समय में सरस्वती नदी की चर्चा बहुधा आती है। मनुजी लिखते हैं।

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥ मनु० २। १७॥

ब्राह्मण ग्रंथादिकों में सरस्वती तट का वर्णन अधिक आता है। इस के तट पर ऋषि लोग प्रायः निवास किया करते थे। ईश्वर की कैसी अद्भुत लीला है आज वह सरस्वती तट कहां है। आज कितना परिवर्तन हो गया। इस में सन्देह नहीं कि यह सरस्वती शब्द हम को वारम्वार ऋषियों के चरित्र, लीला यज्ञ सम्पादन आदि व्यवहारों का स्मरण दिला एक अलौकिक भक्ति प्रेम अथवा श्रद्धा उत्पन्न करता है। ईश्वर! धन्य तेरी महिमा।

"सरस्वती सूक्त"

१—पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं

वष्टु धियावसुः । १० ।

२—चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।

यज्ञं दधे सरस्वती । ११ ।

३—महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना । धियोविश्वा विराजती । १२ । ऋ० १ । ३ ।

४—इला सरस्वतीमही तिस्रोदेवीर्मयोभुवः ।

वर्हिःसीदन्त्वस्रिधः । १ । १३ । ६ ।

५—तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगंमित्र मदितिं दक्ष मस्रिधम् । अर्य्यमणं वरुणं सोम मश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् । १ । ८६ । ३ ।

६—युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्रपूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः । अञ्जसी कुलसी वीरपत्नी (१) पयो हिन्वना उद् भिर्भरन्ते १ । १०४ । ४ ।

७— शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।

इला सरस्वती मही वर्हि सीदन्तु यज्ञिया ।

१ । १४२ । ६

८—यस्ते स्तनः शशयो योमयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि

नोट १—टीकाकार 'वीरपत्नी' शब्द से सरस्वती का ग्रहण किया है ६ । ४१ । ७ देखो यहां वीरपत्नी सरस्वती का विशेषण में आया है

वार्य्याणि । यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः । १ । १६४ । ४६ ॥

९—भारतीले सरस्वती या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चो दयत श्रिये ॥ १ । १८८ । ८ ॥

१०-त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वां होत्रा भारती वर्धसे गिरा । त्वमिला शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती । २ । १ । ११

११—सरस्वती साधयन्ती धियं न इला देवी भारती विश्वतूर्तिः । तिस्रो देवीः स्वधया बर्हि रेद मच्छिद्रं पान्तु शरणं निपद्य २ । ३ । ८

१२—सरस्वती त्वमस्मां अविड्ढि मरुत्वती धृषती जोष शत्रून् । त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाण मिन्द्रो हन्ति वृषभंशंडिकानाम् । २-३०-८

१३—अम्बितमे नदितमे सरस्वति । अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि । २ । ४१ । १६ ॥

१४—त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् । शुन-होत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः । २।४१।१७

१५—इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवती या ते मन्म

गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति।२।४१।१८

१६–आ भारती भारतीभिः सजोषा इला देवैर्मनुष्येभिरग्निः। सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रोदेवीर्बहिरेदं सदन्तु। ३-४-८॥

१७–नि त्वा दधे वर आपृथिव्या इलायास्त्रस्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्। दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि। ३-२३-४॥

१८–विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः सरस्वती शृणवन् यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः। ३-५४-१३।

१९–इला सरस्वतीमहीतिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ५-५-८॥

२०–दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णःपत्नीनद्यो विभ्वतष्टाः। सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यतीर्वरिवस्यन्तु शुभ्रा। ५-४२-१२

२१–आनोदिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजनतागन्तु यज्ञम्। हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु। ५-४३-११

२२–अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्रयन्त मरुतोत

विष्णो। उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ५। ४६। २

२३–पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात्। ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत्। ६। ४६। ७॥

२४–ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः। ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यता मिषंनः। ६। ५०। १२

२५–इन्द्रो नदिष्ठमवसा गरिष्ठः सरस्वती सिंधुभिः पिन्वमाना। पर्जन्यो न ओषधिभिर्मयोभूरग्निः सुशंसः सुवहः पितेव। ६। ५२। ६।

२६–शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। शमभिषाचःशमुरातिषाचःशन्नोदिव्याःपार्थिवाःशंनोअप्याः। ७। ३५। ११।

२७–आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः। ७। ३६। ६।

२८–आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्यो रवो वृणे। याभ्यां गायत्र मृच्यते। ८। ३८। १०।

२९—पूष्णा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः। आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम्। ८। ५४। ४।

३०—भारती पवमानस्य सरस्वतीला मही। इमं नो यज्ञमा गमन् तिस्रो देवीः सुपेशसः।९।५।८।

३१—पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम्। तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्।९।७६।३२

३२—सरस्वतीं देवन्तो हवन्ते सरस्वती मध्वरे ताय-माने। सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशु-षे वार्यं दात्। १०। १७। ७।

३३—सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभि-र्मदन्ति। आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे। १०। १७। ८।

३४—सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिन-क्षमाणाः। सहस्रार्घमिलो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि। १०। १७। ९।

३५—आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुञ्च भद्रं बिभृता मृतञ्च। रायश्चस्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात्। १०। ३०। १२।

३६—सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो मही रवसा यन्तु वक्षणीः देवी रापो मातरःसूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत । १० । ६४ । ६ ।

३७—इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या । असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया । १० । ७५ । ५ ।

३८—आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विला मनुष्वदिह चेतयन्ती । तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु । १० । ११० । ८ ।

३९—गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनौ, देवा वाधत्तां पुष्करस्रजा, । १० । १८४ । २ ॥

इस के अतिरिक्त ऋग्वेद का ६-६१ सम्पूर्ण सूक्त । और ७-९५ । और ७-९६ सम्पूर्ण सूक्त सरस्वती के वर्णन में हैं। प्रत्येक ऋचा में कुछ न कुछ विलक्षणता है। इस हेतु वेद के रसिकों के विचारार्थ बहुत मन्त्रों का संग्रह कर दिया है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में कतिपय ऋचाएं हैं। यजुर्वेद से कई एक ऋचाओं का अर्थ यहां किया गया है। ग्रन्थ के विस्तार के भय से सबका नहीं हो सका। परन्तु बुद्धिमान् लोग इतने से ही बहुत कुछ विचार सकते हैं। इस में सन्देह नहीं कि वेदों के अध्ययन अध्यापन की रीति छूट जाने से वैदिक शब्द प्रायः नवीन प्रतीत होते हैं। और इसी हेतु कठिनता

का बोध होता है। परन्तु इस हेतु निराश नहीं होना चाहिये। जब तक वेदों के ऊपर पूर्ण विचार नहीं होगा और वैदिक शब्दों का भाव नहीं समझेंगे। तब तक लोगों को संस्कृत विद्या का किञ्चिन्मात्र भी वास्तविक तत्त्व विदित नहीं हो सकता और किस प्रकार यहां नाना देव देवी की सृष्टि हुई इस का भी भेद वेद के बिना कदापि नहीं लग सकता। बहुत क्या कहें। भारतवर्षीय जीवनतत्व ही केवल तब तक अपूर्ण नहीं रहेगा किन्तु पृथिवी भर के धर्म सम्प्रदाय का जीवनतत्व तब तक अज्ञात रहेगा जब तक वेदों के ऊपर पूर्ण विचार नहीं होगा। हे आर्य विद्वानो। मनुष्य मङ्गलार्थ वेद के अध्ययन, अध्यापन का प्रचार करो।

"ब्रह्मा और हंस वाहन"

लौकिक वैदिक दोनों भाषाओं में सूर्य के नामों में एक नाम हंस भी है "भानुर्हंसः सहस्रांशु स्तपनः सविता रविः" भानु, हंस सहस्रांशुतपन, सविता रवि आदि सूर्य के अनेक नाम हैं। पूर्व में वर्णन हो चुका है कि सूर्य की उष्णता से वायु फैलता रहता है इस कारण मानों सूर्य वायु का वाहन है अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाने में सहायक है। जो वायु एक जगह जमा हुआ रहता है। उस में किरण पड़ने से गति होने लगती है। तब वह उस स्थान को छोड़ इधर उधर फैलने लगता है। यही सूर्य कृत वायु का वाहनत्व है। इस से सिद्ध हुआ कि वायु का वाहन सूर्य है। जब वायु के स्थान में एक मूर्तिमान् शरीर-धारी देव कल्पित हुआ तो आवश्यक हुआ कि शरीर-धारी ही इस का वाहन होना चाहिये। और वह ऐसा हो जिसका नाम सूर्य के किसी नाम से मिलता हो। वह एक हंस शब्द है जो सूर्य और पक्षी इन दोनों का वाचक है इस हेतु वायुस्थानीय ब्रह्मा जी का वाहन हंस पक्षी कल्पित हुआ। जैसे हंस पक्षी कहा जाता है कि मिश्रित दूध पानी में से दूध पी लेता पानी

छोड़ देता है। वैसे सूर्य भी पृथिवी आदि में मिश्रित जल को खींच लेता है। अन्य पदार्थ को छोड़ देता है। हंस पक्षी भी महाश्वेत होता है इत्यादि गुण और नाम की समानता देख हंस पक्षी ब्रह्मा का वाहन माना गया है।

"ब्रह्मा का निवासस्थान और पुष्कर"

जैसे विष्णु का क्षीरसागर और रुद्र का कैलास-पर्वत निवास-स्थान वर्णित है वैसे ब्रह्मा जी का कोई नियत स्थान नहीं है। इस का भी कारण वायु है। वायु का कोई नियत स्थान नहीं वह सदा अन्तरिक्ष में चला करता है। कभी विश्राम नहीं लेता। हां, पुराण में यह वर्णन आता है कि ब्रह्मा जी कमल के ऊपर बैठकर सृष्टि करते हैं। कमल का एक नाम 'पुष्कर' आता है "बिस प्रसून राजीव पुष्करांभोरुहाणि च" बिस, प्रसून, राजीव, पुष्कर और अम्भोरुह आदि अनेक नाम कमल के हैं। परन्तु 'पुष्कर' यह नाम अकाश = अन्तरिक्ष का भी है यथा :—

अम्बरम्। वियत्। व्योम। बर्हिः। धन्व। अन्तरिक्षम्। आकाशम्। आपः। पृथवी। भूः। स्वयम्भू। अध्वा। पुष्करम्। सागरः। समुद्रः। अध्वरम्। इति षोड़शान्तरिक्ष नामानि नि० १। ३

इस में पुष्कर शब्द आया है और :—

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः। द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वेदेवाः पुष्करेत्वाददन्तः॥ ऋ० ७। ३५। ११॥

इस मन्त्र की व्याख्या में यास्काचार्य 'पुष्कर मन्तरिक्ष पोषति भूतानि' पुष्कर शब्द का अन्तरिक्ष अर्थ करते हैं। अब आप विचार सकते हैं कि ब्रह्मा का निवासस्थान वा सृष्टि करने का स्थान पुष्कर क्यों माना है। वायु पुष्कर अर्थात् अन्तरिक्ष में रहता है। वायु स्थानीय ब्रह्मा पुष्कर अर्थात् कमल के ऊपर रहता है। इस का रूप ही ब्रह्मा का निवासस्थान पद्म है। और इसी कारण राजपूताने में अजमेर के समीप 'पुष्कर' नाम को तीर्थ कल्पित कर वहां ब्रह्मा का मन्दिर बनाया है।

"ब्रह्मा और ब्रह्म अहोरात्र"

ब्रह्मा जी का दिन बहुत बड़ा माना गया है। एक कल्प एक दिन है। ब्रह्मा का जागरण सृष्टि है। और शयन प्रलय है। जब तक जागे हुए रहते हैं तब तक ब्रह्मा जी सृष्टि करते रहते हैं। इस गुण का भी कारण वायु है। वायु सृष्टि पर्य्यन्त शयन नहीं करता है। इस में क्या ही सन्देह है कि वायु जिस समय शयन करे उसी क्षण जीवों का प्रलय हो जाय। और भी लौकिक दृष्टि से एक घटना देखते हैं कि सूर्य हमारी दृष्टि से बाहर चला जाता है। अग्नि भी शान्त हो जाती है। परन्तु वायु सदा विद्यमान ही रहता है। मानों, वायु कभी शयन ही नहीं करता है इस हेतु वायु का अहोरात्र, मानों, बहुत बड़ा होता है। इसी कारण वायु स्थानीय ब्रह्मा का भी दिन बहुत बड़ा माना गया उपनिषदों में कहा गया है:—

निम्लोचन्ति ह्यन्या देवता न वायु सैषाऽनस्तमिता देवता यद्वायुः। बृ० उ० ॥

लौकिक-दृष्टि से यह वर्णन है कि सब देवता अस्त होते हैं परन्तु वायु नहीं वह यह वायु अनस्तमिता देवता है। आश्चर्य! यह

यह घटना हमें सूचित करती है कि वायु के स्थान में ब्रह्मा कल्पित हुआ है। इस में अणुमात्र सन्देह नहीं।

"ब्रह्मा ऋषि"

तद्धैतद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच । प्रजापतिर्मनवे । मनुः प्रजाभ्यः । छा० उ० ३-११-४ ॥ ८-१५-१ ॥

तुरः कावषेयः। प्रजापतिः ब्रह्मणः। बृ०उ० ६-५-४।

ब्रह्माने इस ज्ञान को प्रजापति से कहा। प्रजापति ने मनु से। मनु ने प्रजाओं से। इत्यादि प्रमाण से प्रतीत होता है कि ब्रह्मा कोई प्रसिद्ध ऋषि भी हुए हैं।

ब्रह्म देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता। स ब्रह्म विद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठा मथर्वायज्येष्ठ पुत्राय प्राह। मुण्डकोपनिषद्।

यह विद्वान ब्रह्मा ऋषि की प्रशंसा मात्र है। निःसन्देह विद्वान् लोग अपनी विद्या से जगत् के कर्त्ता गोप्ता होते हैं जगत् में विविध कला कौशल उत्पन्न कर जगत् के रक्षक होते हैं। पुराणों में भी ब्रह्मा का ज्येष्ठपुत्र अथर्वा है यह कहीं भी उक्त नहीं है। यह ब्रह्मा कोई अन्य है। प्रजापति के पिता यह ब्रह्मा नहीं हैं।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तंह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणं प्रपद्ये। श्वेता० उ० ६। १८॥

यह ब्रह्मज्ञानी ऋषि के विषय में कहा है। क्योंकि सृष्टि की आदि में जो शुद्ध पवित्र रहते हैं उन को ही भगवान् वेद का आदेश करते हैं। जाति में यहां एक वचन है।

ब्रह्मा और ब्रह्मा की पूजा

पुराणों में ब्रह्मा जो अपूज्य सिद्ध किये गये हैं। इस के कई एक कारण पौराणिकों ने कहे हैं। कोई कहते हैं कि अपनी दुहिता के ऊपर कुदृष्टि डाली इस हेतु वह अपूज्य हैं। किसी का कथन है कि एक समय महादेव के समीप मिथ्या बोले इस कारण अपूज्य हैं इत्यादि कल्पित समाधान हैं। यह सब कल्पना मात्र ही है। जब वायु-भिन्न ब्रह्मा कोई पृथक् देव ही नहीं तो वह अपनी दुहिता के ऊपर कुदृष्टि क्या डालेंगे और क्या असत्य भाषण करेंगे और ऐसे २ कलङ्की अनेक देव हैं जिन की पूजा बराबर होती है। क्या चन्द्रमा के ऊपर छोटा कलङ्क है। चतुर्मुख-सृष्टिकर्ता का यह तात्पर्य कदापि नहीं हो सकता। वह समझता था कि मैं एक देवता को वायु के स्थान में बना रहा हूं। जिस समय इन देवताओं की कल्पना हुई है। वह जैन का समय था। वे तीर्थङ्करों को प्राण-प्रतिष्ठा दे कर पूजते थे। परन्तु ब्रह्मा की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। क्योंकि वह स्वयं प्राण स्वरूप है। और जो वायु सदा चलता रहता है उस को स्थिर वा बद्ध कर रखना अनुचित है। इस के अतिरिक्त एक कारण यह है कि वायु सर्वगत प्रत्यक्षतया भासित होता है। भीतर बाहर भरा हुआ है। उपनिषदों में इस विषय का विस्तार से वर्णन है। इस के बिना क्षणमात्र जीवन नहीं रह सकता है। यह प्रतिक्षण अपने कार्य्य में लगा हुआ है। इत्यादि वायु के गुणों से ब्रह्मा रचिता परिचित था इस हेतु इसको आवाहनादि क्रिया से अशान्त करना और उस से जगत् के कार्य को बन्द करना अनुचित समझा और इस को असम्भव भी मान इस की पूजा नहीं चलाई। तथापि सब देवों की पूजा के अन्त में इन की संक्षेप पूजा कही गई है। पीछे लोग इन को अपूज्य होने के अनेक कारण वर्णन करने लगे। आश्चर्य की बात है कि जिस को सन्तान स्थावर जङ्गम सब ही कहा जाता है। उस की पूजा नहीं होती।

"उपसंहार"

हमने यहां आप लोगों को दरसाया है कि सूर्य ही वायु का

पिता है। क्योंकि सूर्य की किरण के पड़ने से चतुर्मुख-वायु का जन्म होता है। इसी विषय को यों भी वर्णन कर सकते हैं कि सूर्य अपनी शक्ति वायु को देता है। तब वायु शक्तिमान् होता है। इस शक्ति को रूपकालङ्कार से मान लीजिये कि सविता की पुत्री है। अतएव वायु का श्वशुर भी सविता ही हुआ। पुनः इसी विषय को यों भी वर्णन कर सकते हैं कि सूर्य ही वायु को, मानो ढोता फिरता है। क्योंकि सूर्य की उष्णता से ही वायु गतिमान् होता है, इस हेतु वायु का वाहन भी सूर्य ही हुआ। कदाचित् आप कहेंगे कि यह क्या? परन्तु आप पुराण की ओर देखिए। एक ही शरीर दो भागों में बंट गया एक स्त्री शतरूपा दूसरा मनु। इन दोनों में विवाह हुआ। अथवा सारी सृष्टि तो ब्रह्मा जी से हुई। इस हेतु सब ही ब्रह्मा जी के पुत्र पुत्री हुए। फिर ब्रह्मा जी की स्त्री कौन हो? अथवा यों देखिए सारी सृष्टि ब्रह्मा जी ने की। समुद्र को भी ब्रह्मा जी ने ही बनाया। उस समुद्र से लक्ष्मी हुई। इस हिसाब से लक्ष्मी जी ब्रह्मा की पौत्री हुई। विष्णु जी ब्रह्मा के पिता हैं फिर विष्णु और लक्ष्मी में विवाह कैसे। पर्वत को भी ब्रह्मा जी ने ही बनाया। उस पर्वत से पार्वती देवी जी का जन्म हुआ। वह पार्वती भी ब्रह्मा की पौत्री हुई। महादेव ब्रह्मा के पुत्र हैं। फिर पुत्र पौत्री में विवाह कैसे। किसी प्रकार से आप देखें पौराणिक कथा की संगति नहीं लग सकती है। और मैं तो यह कहता हूं कि सूर्य वायु पृथिवी आदि सब जड़ पदार्थ हैं। इन में न कोई किसी का पिता न किसी का कोई पुत्र। यह सब रूपकालङ्कार मात्र है। बारम्बार इस को कहा है। एवमस्तु। प्रसंग देखिये। सूर्य का ही नाम विष्णु है। इस हेतु वायुस्थानीय ब्रह्मा का पिता वा जनक विष्णु है। सूर्य का भी एक नाम हंस है इस हेतु ब्रह्मा का वाहन है और सूर्य की शक्ति का नाम सावित्री है। इस हेतु ब्रह्मा की पत्नी सावित्री है इत्यादि भाव जानना। मैंने यहां संक्षेप से सब कुछ वर्णन किया है विस्तार से आप लोग स्वयं विचार लेवें। परन्तु इस विषय पर सदा ध्यान रक्खें कि धीरे धीरे ब्रह्मा प्रभृति की कथाओं में बहुत कुछ

परिवर्तन होता गया। जो उसका यथार्थ भाव था उस की विस्मृति से नूतन नूतन आख्यायिकाएं बनती चली गईं।

आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन्।
यस्योतजायमानस्योल्वआसीद्धिरण्ययः।
कस्मै देवाय हविषा विधेम। अ० ४। २। ८॥

सुभुः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे। दधेहगर्भमृत्वियं ततो जातः प्रजापतिः। यजु० ॥ २३। ६३॥

योभूतनामधिपतिर्यस्मिंल्लोका अधिश्रिताः। य ईशे महतो महांस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयिगृह्णामित्वामहम्।
यजु० ॥ २०। ३२॥

अर्चत प्राचत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत॥ ऋ० वे० ८। ५८। ८

हे विद्वानो! आओ परिवार सहित हम सब मिल कर उसी परमात्मा की पूजा उपासना प्रार्थना करें जिस की कृपा से वह समस्त भुवन चेष्टित हो रहा है।

इति श्री मिथिलादेशनिवासि—

शिवशङ्कर शर्म्म,

कृते वेदतत्त्वप्रकाशे—

त्रिदेव निर्णये

चतुर्मुख निर्णयः समाप्तः।

अथ रुद्रनिर्णयः

रुद्र = मेघस्थ अग्नि = वज्र, विद्युद्देव Lightning.

ईश्वर भक्तिपरायनजनो ! क्या ही लीला उस की है। देखिये ! मेघ में भी अग्नि विद्यमान है। कहां शीतल जल। कहां विद्युत्प्रकाश। कहां प्राणप्रद वारिद (१) कहां जीवनहर्ता मेघ से विद्युत्पात। कहां वारिवाह (२) के लिये प्रजाओं की परम उत्सुकता। कहां ओले के गिरने से चारों तरफ हाहाकार। कहां मेघ के जल से वनस्पति, लता, ओषधि, वीरुध, वृक्षादिकों की पुष्टि और अनन्त वृद्धि। कहां उसी के पत्थर से उन वनस्पति प्रभृतियों का विनाश। आहा! क्या ही ईश्वर की लीला है। विज्ञानीपुरुषो! भूमिस्थ जलवाष्प से मेघ बनता है। वाष्प के समय इस की शक्ति हम मनुष्यों को कुछ भी प्रतीत नहीं होती। परन्तु वही वाष्प मेघ बन जाने पर अद्भुतशक्तिसम्पन्न हो जाता है इस को देख कर मनुष्य आनन्दित और भय-भीत दोनों साथ साथ होते हैं। जब धाराधर (३) बड़े जोर से गरजना आरम्भ करता है तो सब डर जाते हैं। हृदय धड़कने लगता है। धैर्य्य नहीं रहता। ऐसा न हो कि कहीं वज्र गिरे। मैं भस्म हो जाऊं। मेरे गृह जल जाय। प्रिय बच्चों पशुओं पर गिर कर यह विद्युत् मेरी हानि न करे। ईश्वर

(१) मेघ। (२) मेघ (३) मेघ

रक्षा करो। इस के साथ साथ आनन्द भी असीम प्राप्त होता है। मुसला धार जल गिर रहा है। खेत उपजेंगी। घासें बहुत होंगी। पशु खा पी कर सुपुष्ट होवेंगे। उष्णता चली जायगी। प्राणप्रद-शीतलता प्राप्त होगी। इस प्रकार मेघ से हानि और लाभ दोनों हैं। लाभ अनन्त। हानि किञ्चिन्मात्र। अब आप विचारें कि मेघस्थ अग्नि कैसा तीक्ष्ण है। कैसा घोर नाद करने वाला है कैसा दौड़ता है। इस की सुषमा (१) देखिये। काली काली कादम्बिनी (२) चारों ओर छा जाती है। इस के ऊपर विद्युल्लता कैसी शोभा देती। क्षण में कोई विद्युत् प्रकाश कर विलुप्त हो जाती है। कोई अशनि (३) मेघ से गरज गरज कर पृथिवी पर गिर पदार्थ को भस्म कर देता है। कैसा यह तीक्ष्ण अग्नि है। कितनी जोर से दौड़ता है। पृथिवी पर भी अग्नि है। परन्तु ऐसा तीक्ष्ण नहीं। पृथिवी पर की आग क्षण २ में बूझती नहीं। मेघ की आगी क्षण में दृष्टिगोचर होती है परन्तु क्षण में ही छिप जाती है। पृथिवीस्थ आग देर से किसी पदार्थ को भस्म करती है। परन्तु मेघस्थ पलमात्र में दग्ध कर देती है। पृथिवीस्थ वन्हि दौड़ती नहीं। परन्तु मेघस्थ क्षणमात्र में सहस्रों क्रोश दौड़ जाती है। जब किसी दारु से पावक प्रकट होता है तो उतना घोर नाद नहीं होता। परन्तु मेघ से जब प्रकट होता है तो अति भयङ्कर गर्जन होता है। इत्यादि अनेक भेद देखते हैं।

अब आप देखते हैं कि मेघ में कैसा एक घोर नाद होता है। यह नाद करने वाला कौन है ? मानों यह एक देव है। जो इतना गरज रहा है उस का नाम 'वज्र' है। इसी को कुलिश, भिदुर, पवि, शतकोटि, स्वरु, शम्ब, दम्भोलि, ह्लादिनी, अशनि कहते हैं। 'वज्र' शब्द पुंलिङ्ग भी है। इस हेतु यह पुरुष देव है। इस का गरजनी मानों रोना है। जब यह रोता हुआ मेघ के ऊपर दौड़ता है तो

(१) परमशोभा। (२) मेघमाला। (३) वज्र।

भूमिस्थ प्राणी को भी रुला देता है। जिस हेतु यह रोता हुआ दौड़ता है और अन्यान्य जीवों को भी भयभीत बना रुलाता है इस हेतु इसी वज्र का नाम 'रुद्र' है। जब जीमूत (४) अन्तरिक्ष में स्थिर रहता है। तब इस का स्वरूप हिमालय पर्वत के समान ही भासित होता है। इसी हेतु वैदिक भाषा में पर्वत के जितने नाम हैं वे सब के सब मेघ के वाचक हैं : इस हेतु मेघ तो **पर्वत** है और मेघोत्पन्ना विद्युत् **पार्वती** है। यह विद्युद्रूपा पार्वती रुद्र देव की स्त्री हैं। मेघ पानी देता है। इस हेतु यह 'वृषभ' (वर्षा करने वाला) कहलाता है। यह वृषभ (मेघ) रुद्र (वज्र) का वाहन है। यह रुद्र मानों मेघ पर बैठा हुआ है। जो विद्युत् चारों ओर चमकत हैं। वे इस के केश वा जटाएं हैं। इस हेतु यह वज्र देव जटाजूट, केशी और धूर्जटि है। जो विद्युत् पृथिवी पर गिरती हैं। वे इस के वाण हैं और जो मेघ में धनुषाकार प्रकाशित होते हैं वे इस के धनुष हैं। इस का नाम पिनाक है। यही पिनाक इस के हाथ में है। यह अपने विद्युद्रूप अस्त्र से सब को भस्म करता है। अतः इस का चिह्न भस्म है। मेघधारा, मानों, शान्ति के हेतु इस के ऊपर गिर रही है इसी हेतु यह गंगाधर है। मेघ की जो घटा है वही गजचर्म के समान है। अतः यह 'कृत्तिवासा' चर्म वस्त्र वाला है। मेघ के ठीक ऊपर चन्द्रमा निकलता हुआ दीखता है इस हेतु यह रुद्र (वज्र) चन्द्रधर है। इस का जल ही भूषण है। यदि जल न हो तो इस का अस्तित्व ही नहीं हो सकता है। परन्तु पानी को 'अहि' कहते हैं। इस हेतु 'अहि' इस का भूषण है। परन्तु 'अहि' सर्पको भी कहतेहैं। अतः यहां सर्पभूषण है। जब यह वज्र गिरता है तब इस का स्वरूप अतिशय महान् आकाश पाताल व्यापक प्रतीत होता है। अतः यह 'महादेव' है। इसी हेतु इस का एक नाम शतकोटि भी है। यह अशनिदेव मेघरूप वृषभ के

(४) मेघ।

ऊपर बैठ मेघ और विद्युत् आदि का शासन करता है। अतः यह ईश, ईशान, महेश आदि हैं। यह भयङ्कर रूप धारण कर पदार्थों को भस्म करता है अतः संहारकर्ता है। परन्तु यही देव जल बरसाता है जिस से विविध वनस्पति लता प्रभृति पोषण पाती हैं अतः यह ओषधीश्वर है। और उन घासों से पशु पुष्ट होते हैं अतः यह 'पशुपति' भी है। कभी मेघ श्वेत, कभी श्याम, कभी काला होता है यही मेघ वज्रदेव का कण्ठ भूषण है। अतः नीलग्रीव, शितीकण्ठ वज्र ही है। इत्यादि विद्युद्देव के समग्र विशेषण इस रुद्र में समाप्त हैं इस हेतु निःसन्देह यह विद्युद्देव अर्थात् वज्र का प्रतिनिधि है। मुख्यता इसी को है। परन्तु सम्पूर्ण आग्नेय शक्ति का यह प्रतिनिधि है आगे के प्रमाणों से आप लोगों को विस्पष्ट बोध होगा। हे सत्यप्रिय मनुष्यो! आप को विचारना चाहिये कि इस रुद्र के साथ इतनी उपाधिआं क्योंकर हैं। इस का वाहन वृषभ नन्दी (बैल) जटा में गङ्गा। शिर पर चन्द्रमा शरीर पर सर्प। चर्म का वस्त्र। तीन नेत्र। पांच मुख। बिल्वपत्र। त्रिशूल। रुद्राक्ष। पर्वत-निवास। कभी नग्न। कभी कृत्तिवासा। कभी सती। कभी पार्वती इनकी शक्ति। भूत प्रेत साथी। इत्यादि उपाधियों का क्या कारण है। ये सब हमें क्या सूचित करते हैं। क्या ऐसा कोई व्यक्ति विशेष हुआ है या यह कल्पित है। मनुष्य ज्ञान के लिये उत्पन्न हुआ है। इस हेतु हमें विचार करना चाहिये। आगे हम रुद्र देव के एक २ गुण के ऊपर विचार करेंगे। जिससे आप लोगों को पूर्ण बोध होजाय कि यह महादेव कल्पित देव हैं। रुद्र को आजकल "शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः। ईश्वरः शर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः। भूतेशः खण्डपरशुर्गिरीशो गिरिशो मृडः। मृत्युञ्जयः कृत्तिवासाः पिनाकी प्रमथाधिपः। इत्यादि"। शम्भु, ईश, पशुपति, शिव, शूली, महेश्वर, ईश्वर, शर्व, ईशान, शङ्कर, चन्द्रशेखर आदि कहते हैं। वेदों में रुद्र शब्द का पाठ अधिक है। पुराणादिकों में भी इसी शब्द से आख्या

यिका प्रारम्भ होती है अतः इस शब्द की प्रधानता है । हम भी प्रथम इसी शब्द से निर्णय आरम्भ करते हैं । इस देव का रुद्र नाम क्यों हुआ ?

"अग्निवाचक रुद्र शब्द"

अग्नि रपि रुद्र उच्यते तस्यैषा भवति ।

जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय ॥

स्तोमं रुद्राय दृशीकम् । नि० दै० । ४ । ८ ॥

'जराबोध' इस मन्त्र के ऊपर यास्क कहते हैं कि अग्नि भी रुद्र कहलाता है और इस प्रमाण में यह ऋचा है । दुर्गाचार्य के अनुसार ऋचा का अर्थ लिखते हैं । हे भगवन् ! अग्नि ? जो (जरा) (१) स्तुति मैं करता हूं उस को आप (बोध) समझें । अथवा (जराबोध) स्तुतियों से यजमान के प्रयोजन समझ देवों के समझाने वाले हे अग्निदेव ! आप (यज्ञियाय) यज्ञ-सम्पादन करने वाले (विशे + विशे) मनुष्य के लिये (तत्) उस समय कार्य को (विविड्ढि) करें जिस २ को आप उचित समझें । तब (रुद्राय) आप के लिये मनुष्य (दृशीकम्) दर्शनीय उत्तम (स्तोमम्) स्तुति उच्चारण करेंगे यहां अग्नि के लिये विशेषण हो कर रुद्र शब्द का प्रयोग हुआ है । यहां सायण अर्थ करते हैं कि (रुद्राय क्रूराय अग्नये) क्रूर अग्नि को रुद्र कहते हैं । क्रूराग्नि वज्र ही है । यहां रुद्र शब्द का अर्थ ईश्वर में भी घट सकता है । जो दुष्टों को दण्ड देवें । हे स्तुति से बोध्यमान प्रकाशस्वरूप ईश्वर ! आप सब मनुष्य के कर्त्तव्य को

(१) जरा स्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणः । नि० दै० ४ । ८ । स्तुत्यर्थक 'जॄ' धातु से (जरा) बनता है । वेदों में स्तुति के अर्थ में (जरा) शब्द बहुधा प्रयुक्त हुआ है ।

जानते हैं। आप के लिये ही उत्तम स्तोत्र है।

अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरोजना वाजश्रवसमिह वृक्त बर्हिषः। यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम्॥ ऋ० । ३ । २ । ५॥

अर्थः—(वृक्तबर्हिषः) (१) बिछाये कुशासन पर बैठे हुए (यतस्रुचः) (२) हाथ में स्रुवा लिये हुए (जनाः) यज्ञ करने वाले ऋत्विक्जन (सुम्नाय) सुखार्थ (इह) यहां (अग्निम्) अग्नि को (पुरः) सामने (दधिरे) रख कर होम कर्म्म कर रहे हैं। अग्नि कैसे हैं। (वाजश्रवसम्) प्रत्येक वस्तु में गति देने वाले। पुनः (सुरुचम्) सुन्दरदीप्ति वाले। पुनः (विश्वदेव्यम्) सब पदार्थों को सुख पहुंचाने वाले। पुनः (रुद्रम्) शीत-अन्धकारादि-जनित दुःखों के नाश करने वाले पुनः (अपसाम्) (३) कर्म्मवान् (यज्ञानाम्) (४) यजमानों के (साधदिष्टिम्) इष्ट कार्य्य सिद्ध करने वाले। ऐसे अग्नि को स्थापित कर ऋत्विक् होम कर रहे हैं। यहां प्रत्यक्ष ही अग्नि के विशेषणों में रुद्र शब्द आया है और शीतादि दुःखों का नाश करना अर्थ है।

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्। ऋ० ४ । ३ । १॥

अर्थ—ईश्वर उपदेश देता है कि हे मनुष्यो! तुम (वः+अवसे) अपनी रक्षार्थ (तनयित्नोः) विद्युत्समान आकस्मिक उपस्थित होने वाले (अचित्तात्) मरण से (पुरा) पहले ही। (अग्निम्+आकृणुध्वम्) अग्नि को शरण बनाओ। अर्थात् विविध कर्म्मों का संपादन करो। यहां अग्नि शब्द से कर्मकाण्ड का ग्रहण है अग्नि कैसा

है। (अध्वरस्य राजानम्) यज्ञ का अधिपति (रुद्रम्) शब्द करता हुआ बढ़ने वाला (होतारम्) होता (रोदस्याः) द्युलोक और पृथिवी लोक में [सत्ययजम्] परमात्मा के गुण प्रकट करने वाला [हिरण्यरूपम्] हिरण्यवत् देदीप्यमान। यहां पर भी 'रुद्र' शब्द अग्नि विशेषण है। यहां सायण यह भी कहते हैं कि यद्वा एषा वा अग्नेस्तनूर्यद्रुद्र इति' निश्चय अग्नि की यह तनु, है जो यह रुद्र है। इस प्रकार अग्नि को भी रुद्र कहते हैं। यह वेदों की ऋचा से सिद्ध होता है। यहां शब्द करता हुआ बढ़ने वाला अर्थ है। जब अग्नि में गीली आहुति दी जाती है तो अग्नि से शब्द उत्पन्न होता है। इस कारण अग्नि रुद्र है॥

"रुद्र और विद्युत"

या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः। सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः॥ ऋ०७।४६।३॥

अर्थ—हे रुद्र! तुम्हारी जो [दिवः+परि] अन्तरिक्ष से [अवसृष्टा] दूर फेंकी हुई [दिद्युत्] दिद्युत्=बिजुली है और जो [क्ष्मया+चरति] पृथिवी पर विचरण कर रही है अर्थात् आकाश से फेंकी हुई जो विद्युत् पृथिवी पर गिरा करती है [सा] वह [नः] हमको [परि+वृणक्तु] छोड़दे। हमारी हिंसा न करे [स्वपिवात] हे सोए हुए प्राणियों को जगाने वाले रुद्र! [वज्र के गर्जन से कौन

---

(१) बर्हिष=कुश। २--स्रुच=स्रुवा। ३—यज्ञ=यजमान। सब भाष्यकारों ने 'यज्ञ' शब्दार्थ यहां 'यजमान' किया है। ४--अपस्=कर्म्म। और कर्म्म करने वाला॥

आदमी नहीं डर उठता है] [ते] तुम्हारे जो [सहस्रम्+भेषजा] सहस्रों औषध हैं वे हमें प्राप्त होवें । हे रुद्र ! [नः] हमारे [तोकेषु] पुत्रों को [तनयेषु] तनयों को [मा+रोरिषः] मत मारो । यहां विद्युत् के अधिष्ठातृदेव का नाम रुद्र है अर्थात् जिस आग्नेय-शक्ति के प्रताप से विद्युत् पृथिवी पर गिर विविध हानि करती है। उसका नाम रुद्र है । यहां विद्युत् रुद्र का वस्त है ।

'विद्युत् वाचक रुद्र शब्द'

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ।
तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥

अर्थः—[असंख्याता] असंख्यात [सहस्राणि] सहस्रों [ये] जो [रुद्राः] बिजुलियां [अधिभूम्याम्] पृथिवी के ऊपर विद्यमान हैं [तेषाम्] उनके [धन्वानि] धनुषों को [सहस्रयोजने] सहस्रयोजन दूर [अव+तन्मसि] फेंक दो यहां 'रुद्राः' बहुवचन है और इस के विशेषण में असंख्यात सहस्र शब्द आए हैं वे सहस्रों 'रुद्र' कौन हैं जिन को हज़ारों योजन दूर फेंकते हैं ? निःसन्देह वे विद्युत् हैं। आगे के प्रमाण से विस्पष्ट होगा ॥

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ यजु० १६।६२॥

अर्थ—[ये] जो रुद्र [अन्नेषु] अन्नों के ऊपर [पात्रेषु] पात्रों पर गिर कर [पिबतः+जनान्] खाने पीने वाले प्राणियों को [विविध्यन्ति] ताड़न करते हैं । उनके धनुषों को सहस्र योजन दूर फेंक दो ॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः तेषांसहु॥ ६१।

अर्थ—जो हमारे सरोवर नदी आदि स्थानों पर गिरते हैं उन्हें भी दूर करो।

असिमन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि। तेषाम्०। १६।५५॥ नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः। तेषाम्०। ५६॥ नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वाः अधःक्षमाचराः। तेषाम्॥ ५७॥ ते वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः। तेषाम्०। ५८॥

भावार्थः—यहां वेद में दिखलाया गया है कि बिजुली क्या पृथिवी क्या मेघ क्या सूर्य क्या अन्यत्र सर्वत्र विद्यमान हैं। जो रुद्र =विद्युत् जलवाले महान् आकाश में उत्पन्न होते हैं। जो द्युलोक में नीलग्रीव और शितकण्ठ प्रतीत होते हैं। जो पृथिवी और औषधियों में व्यापक हैं और जो हमारी हानि करने वाले हैं उनको भगवन्! दूर करो। इन ऋचाओं के ऊपर बहुत ध्यान देना चाहिये क्योंकि यहां परमेश्वर से प्रार्थना है कि रुद्रों को हम से अलग करदो। यदि रुद्र कोई शुभकारी देव होते तो इन के अस्त्र दूर क्योंकर फेंके जांय। विष्णु के। अस्त्र-शंख चक्र को अपनी रक्षा के लिये अपने समीप बुलाते हैं। परन्तु यहां विपरीत देखते हैं। इस हेतु रुद्र यहां कोई क्रूर देव हैं। वे कौन हैं? वे विद्युत् वा वज्र हैं। और यहां विशेषकर ध्यान देने की बात यह है कि इसी रुद्र अर्थात् विद्युत् के विशेषण में नीलग्रीव, शितिकण्ठ आदि शब्द आए हैं जो महादेव के विशेषण में आज कल आते हैं।—

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा।

एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥ यजु० ३·५७ ॥

इस ऋचा का व्याख्यान आगे करेंगे। इस ऋचा के भाष्य में महीधर यों लिखते हैं :—

योऽयं रुद्राख्यः क्रूरोदेवस्तस्य विरोधिनं हन्तु मिच्छा भवति। तदा अनया भगिन्या क्रूरदेवतया साधन भूतया तं हिनस्ति॥ साचाम्बिका शरद्रपं प्राप्य जरा दिकमुत्पाद्य तं विरोधिनं हन्ति।

जो यह 'रुद्र नामक क्रूर देव है उसको जब शत्रु के मारने की इच्छा होती है। तब २ इस क्रूर भगिनि अम्बिका को अस्त्र बना कर मारता है और वह अम्बिका शरद्रूप धर ज्वरादि रोग को उत्पन्न कर उस विरोधी को मारती है। यहां पर महीधर भी 'रुद्र' को और उनकी बहिन अम्बिका को भी क्रूर कहते हैं॥ इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि 'रुद्र' नाम वज्र का है। यहां मानो कि उन विजुलियों का भी एक अधिष्ठातृ देव है जो इनका शासन करता है। उसी का नाम यहां रुद्र है। आगे के निरूपण से आप लोगों को अच्छे प्रकार ज्ञात होगा कि विशेष कर विद्युद्देव के स्थान में यह रुद्र बनाए गये हैं। रुद्र सम्बन्धी ऋचाओं का अर्थ प्रसंग से आगे करेंगे। अब रुद्र की उत्पत्यादि धर्म्म से आप परीक्षा करें कि यह महादेव कौन हैं ? ।

"रुद्र की उत्पत्ति और रुद्र नाम होने के कारण"

सनकं च सनन्दं च सनातन मात्मभूः।
सनत्कुमारं च मुनीन् निष्क्रियानूर्ध्वं रेतसः॥ ४॥

तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाःसृजत पुत्रका।
तन्नैच्छन् मोक्षधर्म्माणो वासुदेवपरायणाः ॥ ५ ॥
सोऽवध्यातःसुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः। क्रोधं दुर्विषयं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥ धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः। सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥ ७ ॥ स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान् भवः। नामानि कुरु मे धातः स्थानानि जगद्गुरो ॥ ८ ॥ इति तस्य वचः पाद्मो भगवान् परिपालयन्। अभ्यधाद्भद्रया वाचा मारोदीस्तत्करोमि ते ॥ ६ ॥

अर्थः—एक समय ब्रह्मा जी निष्क्रिय और ऊर्ध्वरेता सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन चारों पुत्रों से कहने लगे कि हे सौम्य! आप प्रजाएं बढ़ावें। परन्तु मुमुक्षु और वासुदेव-परायण उन सनकादिकों ने यह नहीं पसन्द किया। इस प्रकार अनुशासन-भंग करने वाले पुत्रों से निराश ब्रह्मा जी को नितान्त क्रोध उत्पन्न हुआ। क्रोध दबाने को बहुत प्रयत्न किया। परन्तु न दबा। इस के पश्चात् ब्रह्मा की भ्रू (भौंह) के मध्य से एक नील-लोहित कुमार उत्पन्न हुआ। तत्काल ही रोने लगा। और रोता हुआ बोला कि धाता! मेरे नाम और स्थान देवें। ब्रह्मा जी इस का वचन सुन बोले कि तू मत रो। मैं तुझ को नाम स्थान देता हूं॥

यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव पालकः। ततस्त्वामभि

धास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥ १० ॥ हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलंमही । सूर्य्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥ ११ ॥ इत्यादि भागवत, ३—१२

अर्थः—जिस हेतु आप जन्म लेते ही 'रोदन' करने लगे इस हेतु प्रजाएं आप को 'रुद्र' नाम से पुकारेंगी। यह आपका मुख्य नाम हुआ। हृदय, इन्द्रिय, असु (प्राण) आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र और तप ये आप के स्थान हैं। इला, अम्बिका, रुद्राणी आदि आप की स्त्रियां होवेंगी। इत्यादि भागवत में कथा देखिये:—

कल्पादा वात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतस्ततः । प्रादुरासीत्प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः ॥ २ ॥ रुदन् वै सुस्वरं सोऽथ द्रवंश्च द्विज सत्तम । किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ॥ ३ ॥ नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच प्रजापतिम् । रुद्रस्त्वं देव नाम्नासि मा रोदी धैर्य्यमावह ॥ ४ ॥ एव मुक्तः पुनःसोऽथ सप्त—कृत्वो रुरोद वै । ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभुः ॥ ५ ॥ भवं शर्वं महेशानं तथा पशुपतिं द्विज । भीममग्रं महादेव मुवाच स पितामहः ॥ ६ ॥

[विष्णुपुराण प्रथम अंश अ० ८]

अर्थः—कल्पादि में स्वसमान पुत्र चाहते हुए ब्रह्मा जी के गोद में सस्वर रोता और दौड़ता हुआ नीललोहित एक बालक उत्पन्न

हुआ। रोता उसे देख तू क्यों रोता है? इस प्रकार ब्रह्मा जी उसे समझाते हुए बोले। रोते हुए उस ने कहा कि मेरा संस्कार करो। हे देव! तेरा नाम 'रुद्र' होगा मत रो धैर्य धर। परन्तु पुनः वह सात बार करके रोने लगा। अतः ब्रह्मा जी ने इस को सात नाम और दिये, भव, शर्व, महेशान, पशुपति, भीम, उग्र, महादेव।

कथा का आशय:—इस पौराणिक वर्णन पर अवश्य ध्यान देना चाहिये, यद्यपि रुद्र के यथार्थ तात्पर्य्य को ये लोग भूल बैठे थे तथापि कुछ कुछ प्राचीन कथा से इन लोगों ने भी सम्बन्ध रक्खा है। अब विचार कीजिये। प्रजापति (ब्रह्मा) क्रुद्ध हुए। रोता हुआ वह कुमार उत्पन्न हुआ। इस हेतु इस का नाम रुद्र हुआ। और अन्यान्य नाम भी इस के उग्र, पशुपति आदि हुए। यह सब वर्णन इन को क्या सूचित करता है, हे विज्ञानप्रवर आर्य्यो! विचारो। निःसन्देह यह वज्र या विद्युत् = (Lightnig, Thunder-bolt.) की उत्पत्ति का निरूपण है। यहां भागवत के शब्दों के ऊपर ध्यान दीजिये। **प्रजापति** शब्द का यहां प्रयोग है मेघ, वायु अग्नि, सूर्य्य, चन्द्र, आदि सर्व देवों के विशेषण में **प्रजापति** शब्द का प्रयोग होता है यहां वायु और मेघ प्रजापति हैं, देखिये! मेघ से वज्र कब उत्पन्न होता है? जब बड़े वेग से वायु चलना आरम्भ होता है। उस से मेघ=मालाएं परस्पर टकराती हैं। और नाद होने लगता है। प्राणी कम्पायमान होजाते हैं। क्रोधाग्नि-स्वरूप विद्युत् इधर उधर चमकने लगती हैं। इस समय वायु के कारण जब पर्जन्य भगवान बड़े क्रोध में जलने लगते हैं उस समय रोते हुए और जगत् को रुलाते हुये मेघ से वज्रदेव बड़ी तीक्ष्णता से दौड़ते हैं। ये बड़े लाल होते हैं और नीले नीले मेघ इन के चारों तरफ रहते हैं। इस हेतु ये नीलवर्ण भासित होते हैं। इस हेतु वस वज्रदेव को नीललोहित कहते हैं। लोहित=लाल।

जिस हेतु रोता और रुलाता हुआ यह वज्र दौड़ता है। अतः इस का नाम रुद्र होता है "रुदन् द्रवति धावतीति रुद्रः" रोते हुये दौड़ने वाले को रुद्र कहते हैं। यही व्युत्पत्ति विष्णु पुराण में है। ऊपर के श्लोक देखिये। महादेव का जन्म हमें सूचित करता है कि ये वज्रदेव के प्रतिनिधि हैं इस में संदेह नहीं :—

"रुद्र की उत्पत्ति और शतपथ ब्राह्मण"

प्रियविद्य जिज्ञासुओ! यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण में एतत्सम्बन्धी अतिमनोहर और रोचक वर्णन है इस हेतु आप को इस का भाव सुनाते हैं। इस के वर्णन से आपको असंदिग्ध प्रतीत उपयोगी कि यथार्थ में रुद्र कौन है॥

अभूद्वा इयं प्रतिष्ठेति। तद्भूमिरभवद्। तामप्रथयत्। सा पृथिव्य भवत्। तस्यामस्यां प्रतिष्ठायां भूतानि च भूतानां च पतिः सम्वत्सरायादीक्षन्त। भूतानां पतिर्गृहपतिरासीत्। उषाः पत्नीः। तद्यानि तानि भूतानि ऋतवस्ते। अथ यः स भूतानां पतिः सम्वत्सरः सोऽथ। या सोषाः पत्नीः औषसी सा। तानि इमानि भूतानि च भूतानां च पतिः सम्वत्सरः उषसि रेतोऽसिञ्चत् स सम्वत्सरे कुमारो ऽजायत। सोऽरोदीत्॥

काण्ड ६। अध्याय १। ब्राह्मण ३। कण्डिका ७॥

यहां आग्नेय अग्नि की व्यापकता दरसाने के हेतु इस प्रकरण का आरम्भ किया है। इस में संदेह नहीं जो सृष्टि तत्त्ववित् विज्ञानी हैं वे निमित्त कारण ईश्वर को छोड़ इस सौर जगत् का

मुख्य कारण सूर्य को कहते हैं । क्रमशः इसी सूर्याग्नि से एक पार्थिव गोलक निकला। जो बनते २ कई लक्ष वर्षों के अनन्तर सब प्राणियों की प्रतिष्ठा के योग्य हुआ । इस के ऊपर पर्वत, समुद्र, वनस्पति, ओषधि, पर्जन्य, विविध पशु, पक्षी. मनुष्यादि भूत उत्पन्न किये गये इस पृथिवी के बहुत दूर सूर्य स्थापित किया गया । वह उष्णता इस पर पहुंचाने लगा । अपनी २ प्रदत्त शक्ति के अनुसार प्रत्येक पदार्थ उष्णता धारण करने लगी । इससे एक कुमार उत्पन्न हुआ । वह रोने लगा । भाव यह है कि किसी वस्तु में जब अग्नि उत्पन्न होता है तो उस से यत्किञ्चित् शब्द अवश्य हुआ करता है आर्द्र पदार्थ में आग लगने से बहुत नाद होता है । शुष्क पदार्थ के भी पर्व २ से चट चट शब्द उत्पन्न होता है । प्रत्येक पदार्थ में अग्नि शक्ति का होना ही कुमार का जन्म है। और नाद होना ही इस का रोना है । आगे हम अभीष्ट वाक्यों को उद्धृत करेंगे अन्यान्य वाक्यों को छोड़ देवेंगे ॥

तं प्रजापतिरब्रवीत् । कुमार ! किं रोदिषि । सोऽब्रवीत् नाम मे धेहीति ॥ ९ ॥ तमब्रवीद् रुद्रोऽसि इति । तद्यस्य तन्नाम अकरोत् अग्निस्तद्रूपमभवत् । अग्निवरुद्रःयदरोदीत् । तस्माद्रुद्रः । सोऽब्रवीत् । ज्यायान्वा अतोऽस्मि । धेह्येव मे नामेति ॥ १० ॥ तमब्रवीत् । सर्वोऽसीति । यद्यस्य तन्नामाकरोत् । आपस्तद्रूपमभवन्नापो वैसर्वः । अद्भ्योऽहीदं सर्वं जायते । सौऽब्रवीत् । ज्यायान्वा अतोस्मि । धेह्येव मे नामेति ॥ ११ ॥

अर्थः—प्रजापति बोले, हे कुमार ! तू क्यों रोता है ? उस ने

कहा कि मुझ को नाम दो ॥ ९ ॥ प्रजापति ने कहा कि तू 'रुद्र' है। उस का जो यह 'रुद्र' नाम है वह सुवर्ण अग्नि सूचक है अग्नि ही रुद्र है। जिस हेतु यह रोने लगा, अतः यह रुद्र कहलाता है। तत्पश्चात् प्रजापति से यह कुमार कहने लगा कि निश्चय मैं इस से 'ज्यायान्' अधिक हूं मुझ को अन्य नाम भी दीजिये ॥ १० ॥ प्रजापति ने कहा कि तू (१) सर्व है। जो इसका यह सर्व नाम है। वह जल में व्यापकता और जलदायित्व सूचक हैं। क्योंकि जल से ही सब उत्पन्न होता है। पुनः वह कुमार बोला इस से भी मैं 'ज्यायान्' अधिक हूं और भी मेरा नाम कीजिये ॥ ११ ॥ प्रजापति ने कहा कि तू 'पशुपति' है। जो यह पशुपति नाम इस का हुआ वह ओषधि-वृद्धि सूचक है। ओषधि ही पशुपति (पशुओं का पालक) है। जब पशु ओषधि पाते हैं तब वे पुष्ट होकर स्वामी के योग्य होते हैं। पुनः यह कुमार बोला कि निश्चय मैं इससे भी अधिक हूं। और भी मेरा नाम कीजिये ॥ १२ ॥ प्रजापति ने कहा कि तू 'उग्र' है, जो यह इस का 'उग्र' नाम हुआ वह वायु वृद्धि सूचक है। निश्चय 'वायु' ही उग्र है। इस हेतु जब वायु बड़े वेग से चलता है तो लोग कहते हैं कि सम्प्रति वायु बड़ा उग्र है। पुनः वह कुमार बोला कि मैं इस से भी अधिक हूं, अतः और भी मेरा नाम कीजिये ॥ १३ ॥ प्रजापति ने कहा तू 'अशनि' है। जो यह इसका 'अशनि' नाम है। वह विद्युतसूचक है। निश्चय विद्युत ही अशनि है। इस हेतु जिस को विद्युत् मारती है। उस को लोग कहते हैं कि इस को अशनि ने मारा है, पुनः वह कु० ॥ १४ ॥ प्रजापति ने कहा कि तू 'भव' है। जो यह इस का 'भव' नाम है वह पर्जन्य (मेघ) सूचक है। निश्चय पर्जन्य ही भव है। क्योंकि पर्जन्य से यह सब कुछ

---

(१) आजकल रुद्र के नाम में "शर्व" आता है। परन्तु यहां "सर्व" ही उचित प्रतीत होता है ॥

होता है, पुनः यह कु० ॥ १५ ॥ प्रजापति ने कहा तू 'महान् देव' है, जो इस का महान् देव नाम है। वह चन्द्रमासूचक है। प्रजापति ही चन्द्रमा है। निश्चय प्रजापति महान् देव है। पुनः वह कु० ॥ १६ ॥ प्रजापति ने कहा कि तू 'ईशान' है। जो यह इस का ईशान नाम है। वह आदित्यव्यापकतासूचक है। निश्चय आदित्य ही ईशान है। वही सब का शासन करता है। इस के अनन्तर वह कुमार बोला, बस ! मैं इतना हूं, इस के आगे नाम मत कीजिये। "तान्येतान्य-ष्टावग्निरूपाणि कुमारो नवमः सैवाग्ने स्त्रिवृत्ता" ये आठों अग्नि के रूप हैं। नवम कुमार है ॥

सोऽयं कुमारो रूपाण्यनु प्राविशत्। न वा अग्निं कुमार-मिव पश्यन्ति। एतान्येवास्य रूपाणि पश्यन्ति। ए-तानि हि रूपाण्यनु प्राविशत् ॥ १८ ॥

जो यह कुमार-रूप अग्नि है, वह सब रूपों में अनुप्रविष्ट है। निश्चय इस कुमार रूप कोई नहीं देखते। इन्हीं रूपों को देखते हैं। इन्हीं रूपों में यह प्रविष्ट है ॥ १८ ॥ शतपथ का यह प्रकरण हमें सूचित करता है कि एक महान् अग्नि शक्ति है। जो पृथिवी से लेकर सूर्य पर्यन्त व्यापक है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक इन तीनों में अग्नि है। अतः अग्नि 'त्रिवृत' है। यही इस की त्रिवृत्ता है ॥ इन वाक्यों के ऊपर बहुत कुछ विचारणीय है। जब इस कुमार को आदित्य-सूचक 'ईशान' नाम दिया गया तब इसने कहा कि बस ! मैं इतना हूं। यह वाक्य विस्पष्ट बोध करवाता है कि अग्नि का वर्णन है। क्योंकि 'आदित्य' से बढ़कर कोई आग्नेय-शक्ति नहीं इस हेतु इससे आगे इसका नाम नहीं होसकता। रुद्र से लेकर ईशान तक समाप्त होजाता है। अग्नि केवल पृथिवी पर ही नहीं है। इस हेतु अग्नि कहता है कि मैं इससे अधिक हूं। अब मैंवश्य

सूचक 'भव' नाम दिया तब पुनः कहता है कि इस से भी अधिक हूं क्योंकि अग्नि मेघ तक ही नहीं है। इस से भी ऊपर विद्यमान है। अब निज योनि आदित्य तक पहुंचता है, तब वह 'वश' कहता है। इस पृथिवी के लिये इस आदित्य से आगे के अग्नि को आवश्यकता नहीं। अतः यह वर्णन अग्नि का ही है। जो नाम आजकल महादेव के हैं, वे ही नाम यहां पर भी देखते हैं। रुद्र, सर्व, पशुपति, उग्र, अशनि, भव, महान्देव, (महादेव) ईशान और कुमार। अमरकोश में महादेव के नाम देखिये। इन नामों का आगे अर्थ करेंगे। इत्यादि‌विविद्वानों ! कहां अग्नि का वर्णन कहां आज महान् रुद्रदेव की सृष्टि जिस देव के विषय में आज लाखों श्लोक बन गये हैं। यह केवल अग्नि शक्ति है। अग्नि की व्यापकता वेद मंत्र में ही कहा गया है॥

त्वमग्ने द्युभिस्त्व माशुशुक्षणि स्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि
त्वं वनेभ्य स्त्वमोषधीभ्यस्त्व नृणां नृपते जायसे शुचिः॥

ऋ० २।१।१॥

अर्थ—हे अग्ने ! तू सूर्य्य से, तू पानी से अर्थात् मेघ से, तू प्रस्तर से, तू वन से, तू औषधी से उत्पन्न होते हो ; इत्यादि—

"रुद्र शब्दव्युत्पत्ति"

रुद्रा रौतीतिसतो रोरूयमाणो द्रवतीति वा रोदयते र्वा।
यदरुदत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमिति काठकम्॥
यदरोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमिति हारिद्रविकम्। निरु० १० ४-५

बृहद्देवता में इसी विद्युत् को रुद्र कहा है, यथा—

अरोदीदन्तरिक्षे यद्विद्युद्वृष्टिं ददन्नृणाम्।

चतुर्भिर्ऋषिभिस्तेन रुद्रइत्यभि संस्तुत ॥ २ । ३५ ॥

जिस कारण अन्तरिक्ष में यह विद्युद्देव रोता रहता है और मनुष्यों के हितार्थ वृष्टि किया करता है इस हेतु इस को 'रुद्र' कहा है। तीन धातुओं से इस को यास्काचार्य सिद्ध करते हैं। (रौति+रुशब्दे) शब्दार्थ 'रु' धातु से (१) 'रु' और द्रु+गतौ गत्यर्थक 'द्रु' इन दो धातुओं से (२) और (रुदिर्+अश्रुविमोचने) पयन्त 'रोद' धातु से (३) इन तीन धातुओं से 'रुद्र' शब्द सिद्ध होता है। और किसी के मत में केवल 'रुद्' धातु से भी 'रुद्र' सिद्ध होगा इत्यादि वैयाकरणों का भी मत देखिये। इस का रुद्र नाम ही सूचित करता है कि वज्र (१) देव का वर्णन है॥

"रुद्र और निवासस्थान पर्वत"

पुराणों में महादेव की स्थान पर्वत माना गया है। जैसे विष्णु क्षीर सागर में वैसे ही महादेव जी कैलाश पर्वत पर विराजमान रहते हैं। इसी हेतु इन को गिरिश, गिरिश, पर्वतशायी आदि नाम देते हैं, क्यों! पर्वत इन का निवासस्थान क्यों माना गया है। इस में भी वज्र और द्व्यर्थक (दो अर्थ वाले) शब्द ही कारण हैं। शब्द तत्त्वविद् विद्वानो! वैदिक भाषा में मेघ और पर्वत वाचक बहुत से शब्द समान ही हैं। पर्वत, गिरि, अद्रि, ग्रावा आदि शब्द मेघ और पर्वत दोनों अर्थों में समान रीति से वेदों में प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु आज कल पर्वत, गिरि, अद्रि आदि शब्द मेघार्थ में कदापि भी प्रयुक्त

नोट-१-विद्युत्, नेमि, हेति, नमः पविः, सृक, वृकः, वध, वज्र, अर्का कुत्स, कुलिश, तुज, तिग्म, मेनि, स्वधिति, सायकः, परशु, । यह १८ नाम वज्र के हैं। निघण्टु २। २०। मेघस्थ जो प्रचण्ड अग्नि उसी का वज्र विद्युत् कुलिश आदि नाम हैं॥

नहीं होती। अब आप लोग विचार सकते हैं कि महादेव का निवासस्थान पर्वत क्यों माना गया है। रुद्र जो 'रुद्र' वा 'विद्युद्देव' वह 'गिरि' जो मेघ उस में निवास करता है, यह मतलब है। जब रुद्र स्थानीय एक देव पृथक् कल्पित हुए तो इन को भूमिस्थ पर्वत निवासस्थान माना गया यह बहुत ही समुचित है। अब इन में दो एक प्रमाण देते हैं। इन पर पूर्ण रीति से ध्यान दीजिये॥

अद्रिः। ग्रावा। गोत्रः। बलः। अश्नः। पुरुभोजः। बलिशानः। अश्मा। पर्वतः। गिरिः। व्रजः। चरुः। वराहः। शम्बरः। रौहिणः। रैवतः। फलिगः। उपरः। उपलः। चमसः। अहिः। अभ्रम्। बलाहकः। मेघः। दृतिः। ओदनः। वृषन्धिः। वृत्रः। असुरः। कोशः। इति त्रिंशन्मेघ नामानि॥ निघण्टु १-१०

निघण्टु वैदिक कोष है। इस में आप देखते हैं कि अद्रि, ग्रावा गोत्र अश्मा, पर्वत, गिरि आदि मेघ के नाम हैं। परन्तु ये नाम सब आज कल केवल पर्वत = पहाड़ के ही होते हैं यथाः—

महीध्रे शिखरि क्ष्माभृदहार्य्य धर पर्वताः।
अद्रि गोत्र गिरि ग्रावाऽचल शैल शिलोच्चयाः॥

अमरकोष शैलवर्ग

महीध्र, शिखरी, क्ष्माभृत् अहार्य्य, धर, पर्वत, अद्रि गोत्र, गिरि, ग्रावा, अचल, शैल शिलोच्चय। ये १३ तेरह नाम पहाड़ के हैं। अब मेघ के अर्वाचीन नाम देखिये॥

अभ्रं मेघो वारिवाहः स्तनयित्नुर्बलाहकः।

धाराधरो जलधर स्तडित्वान् वारिदोऽम्बुभृत्
घनजीमूतमुदिर जलमुग् धूमयोनयः ॥ अमरकोश दिग्वर्ग

अभ्र, मेघ, वारिवाह, स्तनयित्नु, बलाहक, धराधर, जलधर, तडित्वान, वारिद, अम्बुभृत्, घन, जोमूत, मुदिर, जलमुक् और धूमयोनि ये १५ पन्द्रह नाम मेघ के हैं, आज कल के मेघ के नामों में आप देखते हैं कि अद्रि, पर्वत, गोत्र अश्मा; आदि शब्द नहीं है। इसी हेतु वैदिक और लौकिक अर्थ में महान् अन्तर हो गया है ॥

मेघनामानि उत्तराणि त्रिंशत् । मेघः कस्मान्महेतीति सतः । आ उपर उपल इत्येताभ्यां साधारणानि पर्वत नामःभिः॥ नि॰ १-२१

यास्काचार्य्य मेघ के नामों के व्याख्यान में कहते हैं कि मेघ के ३० नाम हैं इन में अद्रि से लेकर उपर उपल तक जो १७ नाम हैं वे मेघ और पर्वत इन दोनों के हैं। पुनः प्रसंगवशतः इन नामों के व्याख्यान भी करते गये हैं यथा (मेघोऽपिगिरिरेतस्मादेव । निरुक्त १—२०) इसी कारण मेघ को भी "गिरि" कहते हैं। आज काल 'गिरि' केवल पर्वत के ही अर्थ में आता है ॥

गिरौ मेघे स्थितो। वृष्टिद्वारेण शं तनोतीति 'गिरि शन्तः ॥ यजु॰ १६-२

यजुर्वेद के षोड़शाध्याय द्वितीय मन्त्र के व्याख्यान में महीधर भी "गिरि" शब्द का अर्थ मेघ ही कहते हैं। इसी प्रकार पर्वत अद्रि आदि शब्दों के भी मेघ अर्थ सब भाष्यकार करते गये हैं।

वेदों में इस के बहुत से उदाहरण विद्यमान् हैं। देखिये —

बलित्था पर्वतानां खिद्रंबिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ नि० दै० ५-२७

महान्तमिन्द्र पर्वतं वियद्वः सृजोविधारा अवदानवंहन् । नि० दै० ४—७

यास्काचार्य इन दोनों स्थानों में "पर्वतानां मेघानाम्" पर्वत मेघम्' पर्वत शब्द का अर्थ मेघ भी करते हैं ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आसूर्य्यं रोहयद्दिवि । विगो-भिद्रिमेरयत् ॥ (ऋ० १—७—३)

इस ऋचा में आए हुए "अद्रि" शब्द का अर्थ सायण "अद्रि मेघम्" मेघ करते हैं। इस कहां तक उदाहरण देवें। आप लोग वेद स्वयं पढ़कर देखें। आजकल जो जो शब्द हिमालय विन्ध्याचल प्रभृति पर्वत के वाचक हैं वे प्रायः वेदों में मेघवाचक भी हैं। अब आप लोगों को पूर्णविश्वास होगया होगा कि वैदिक समय में अद्रि पर्वत गिरि आदि शब्द द्वयर्थक थे। परन्तु अब नहीं रहे। इसी हेतु वज्र स्थानीय रुद्र या महादेव जी का स्थान गिरि कहा गया है। पर्वतों में कैलाश प्रसिद्ध है और सर्वदा इस पर हिम जमा रहता है। इस हेतु महादेव जी का स्थान कैलास है। परन्तु रुद्र के साथ "गिरि" शब्द का अधिक प्रयोग आता है। कैलास का प्रयोग प्राय वेद में नहीं है। अमरकोश में भी गिरिश वा गिरीश कहा है ॥

"रुद्र और वृषभ वाहन"

महादेव का बैल वाहन क्यों है ? विष्णु और ब्रह्मा के वाहन विहंग हैं। परन्तु महादेव का पशु क्यों ? इसका भी कारण विद्युद्देव ही हैं। वृषभ वा वृष मेघ और बैल दोनों को कहते हैं। वृष, वर्षण, वृष्टि, वर्षा, वृषभ वर्षिता इत्यादि शब्दों का एक ही धातु है 'पृषु, वृषु, मृषु सेचने' वृष धातु का अर्थ सींचना है। 'वर्षति सिञ्चति यः स वृषः' जो जल से पृथिवी को सींचें उसे वृष कहते हैं। "इगुपधज्ञाप्रीकिरःकः" ३।१।१३५। इस सूत्र के अनुसार वृष् धातु से 'क' प्रत्यय होकर वृष शब्द सिद्ध होता है और इसी से वृषभ भी बनता है। वृष और वृषभ का एक ही धातु "वृषभ सेचने" यास्काचार्यादिकों ने माना है॥

प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत्

यास्काचार्य इस ऋचा को व्याख्या में "वृषभस्य वर्षितुरपां" वृषभ शब्द का अर्थ जल की वर्षा करने वाला करते हैं। पुनः—

वृषभः प्रजां वर्षतीति वातिवृहति रेतः इति वा।
तद् वृषकर्म्मा वर्षणाद् वृषभ। तस्यैषा भवति॥ नि॰ दै॰ ३-२२

इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि वृष वा वृषभ वर्षा करने वाले पदार्थ को कहते हैं। अब स्पष्ट हो गया कि महादेव का वाहन बैल क्यों रक्खा ? ॥ रुद्र अर्थात् वज्रदेव का वाहन वृषभ अर्थात् वर्षा करने वाला मेघ है। यह प्रत्यक्ष है। परन्तु जब कि एक वज्र स्थानीय-देव कल्पित हो पृथिवी पर पूजार्थ लाये गये तो उन

के लिये आवश्यक हुआ कि पृथिवीस्थ वृषभ (बैल) इन का वाहन कल्पित हो। अतः रुद्र का वाहन वृषभ है।

वाहन और ध्वज।

पौराणिक कल्पित देवों के वाहन और ध्वजा वा पताका एक ही होते हैं। जो वाहन वही ध्वजा। जैसे विष्णु को 'गरुड़ वाहन' 'गरुड़ध्वज' दोनों कहते हैं वैसे ही रुद्र को भी 'वृषभ-वाहन' और 'वृषभध्वज' दोनों कहेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि 'ध्वज' वा पताका का सत्यार्थ चिन्ह ही है। वज्र वा विद्युत् का चिह्न मेघ ही है। जब मेघ आता है तब ही लोक अनुमान करते हैं कि कदाचित् आज वज्र या पत्थर (ओले) वा विद्युत् गिरेंगे। इस हेतु वज्र का चिन्ह भी वृषभ अर्थात् मेघ ही है अतएव रुद्र का वाहन और ध्वजा दोनों ही वृषभ है। इसी प्रकार अन्यान्य देवों के वाहन पताका जानने चाहिये।

"मेघ वाचक वृषभ शब्द"

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसाविवास
कनिक्रदद् वृषभोजीरदानू रेतोदधात्योषधीषु गर्भम्॥

ऋ० ५—८३—१।

ईश्वर विद्वान् के प्रति कहता है कि हे विद्वज्जन! आप (तवसम्) बलवान (पर्जन्यम्) मेघ को (अच्छा) प्राप्त करके (आभिः, गीर्भिः) मेरे इन उपदिष्ट वचनों से अर्थात् मेरे उपदेश के अनुसार (स्तुहि) मेघ के गुणों को प्रकाशित करो और (नमसा) बड़ी नम्रता से (विवास) वारम्वार इन की सेवा करो अर्थात् मेघ सम्बन्धी विद्या के अध्ययन में श्रद्धा करो।

जो पर्जन्य (कनिक्रदद्) अत्यन्त गर्जन करने वाला है (वृषभः) वर्षा देने वाला है (जीरदानु) जिस का दान शीघ्र होता है और (ओषधीषु) जितने प्रकार के वनस्पति हैं क्या गेहूं, जौ आदि क्या लता औषध, क्या आम्र प्रभृति वृक्ष, सब ही ओषधियां कहलाती हैं इन ओषधियों में (गर्भम्+रेतः) बीजरूप जल को (दधाति) स्थापित करता है। पर्जन्य=मेघ के लिये 'वृषभ' शब्द का यहां पाठ प्रत्यक्ष है। सायणाचार्य (वृषभोऽपां वर्षिता) वृषभ का अर्थ-वर्षिता=जल वर्षा करने वाला अर्थ करते हैं। इस सम्पूर्ण सूक्त का देवता पर्जन्य है। यह पर्जन्य सूक्त बहुत अच्छा है।

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥
यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म्म यच्छ ॥
यत्पर्जन्य कनिक्रदत् स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किञ्च पृथिव्यामधि ॥९॥

अनुवाद— जब पर्जन्य जल से पृथिवी की रक्षा करता है। तब वात बड़े ज़ोर से चलते हैं। विद्युत् गिरती हैं या चमकती हैं। ओषधियां निकलती हैं। आकाश भर जाता है। पृथिवी सर्व प्राणी के हितार्थ समर्था होती है ॥४॥ जिस पर्जन्य के व्रत से यह पृथिवी पानी के नीचे हो जाती है अर्थात् पृथिवी के ऊपर पानी भर जाता है। जिस के व्रत से चतुष्पद जन्तु सुपुष्ट होते हैं। जिस के व्रत से नाना वर्ण रंग रूप की ओषधियां उत्पन्न

होने लगती हैं। यह पर्जन्य हम लोगों को बहुत सुख देता है ॥५॥ जब यह मेघ बहुत चिल्लाता और गरजता हुआ, दुर्भिक्षादि दुष्कालों का निवारण करता है तब पृथिवी पर जितने स्थावर जङ्गम पदार्थ हैं सब ही मुदित होते हैं ॥८॥ पुनः—

तिस्रो वाचः प्रवद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति
स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६

(ऋ० ७। १०१)

अर्थः—जिस पर्जन्य में (ज्योतिरग्राः) विद्युत् जिनके आगे आगे है ऐसी (तिस्र=वाचः) तीन प्रकार की इला, सरस्वती, भारती वाणी (आजा) (प्रवद=प्रवदन्ति) बज रही है। (या) जो वाणी जहां (एतत्) इस (मधुदोघम्) मधुर-जल प्रद (ऊधः) मेघ-रूप स्तन को (दुह्रे) दुहे रही है। (सः) वह पर्जन्य (वत्सं) साथ बसने वाले बच्चे वैद्युत् अग्नि को (कृण्वन्) प्रकट करता हुआ और उसी को (ओषधीनाम्) व्रीहि, लता, वनस्पति प्रभृतियों का (१) (गर्भम्) गर्भ बनाता हुआ (सद्यः) शीघ्र (जातः) चारों तरफ उत्पन्न हो (वृषभः) बरसता हुआ (रोरवीति) अत्यन्त चिल्ला रहा है ॥१॥ (स.) वह पर्जन्य (शश्वतीनाम्) नाना विध ओषधियों का (रेतोधाः) जल विधाता और (वृषभ)

(१) ओषधिः फलपाकान्ता। ओषध्यो जातिमात्रे स्युरजातौ सर्व मौषधम्। भेषजौषधभैषज्यान्यगदो जायुरित्यपि। अमर ६। ओषधि और औषध में भेद यह है कि जो एक बार फल दे कर सूखजाय जैसे कदली धान्य गेहूं जौ आदि उसे ओषधि। और रोग नाशक

सेचन करने वाला है (तस्मिन्) उस जीवन भूत मेघ के आश्रित (जगतः+तस्थुषः+च) स्थावर और जङ्गम का (आत्मा) शरीर है। (तत्+शुक्रम्) वह पर्जन्य से निःसृत जल (शतशारदाय) सौ वर्ष अर्थात् जीवन भर (मा) मुझ को (पातु) पाले। जिस प्रकार ये प्राकृत पदार्थ पर्जन्य वायु, मरुत्, ओषधि, जल, चन्द्र, सूर्य्य प्रभृति हमारी रक्षा करते हैं, वैसे ही हे मनुष्यो! (यूयम्) आप लोग भी (सदा) सर्वदा (नः) हमको (स्वस्तिभिः) विविध कल्याणकारी उपायों से रक्षा करें। हम भी आप की रक्षा करें इस प्रकार परस्पर एक दूसरे के रक्षक बनें ॥ ६ ॥

इन दोनों ऋचाओं में मेघ के विशेषण में वृषभ शब्द आया है इन से सिद्ध हुआ कि मेघ को वृषभ या वृष कहते हैं। परन्तु आधुनिक संस्कृत में बैल का ही नाम प्रायः वृषभ आता है। "उक्षा भद्रो बलीवर्द ऋषभो वृषभो वृषः" अमर०। वृष शब्द अन्यार्थ में भी आता है। जैसे "शुक्रले मूषिकश्रेष्ठे सुकृते वृषभे वृषः" अमरकोश इसी हेतु विद्या विनाशी पुरुषों! वज्र स्थानीय रुद्र का वृषभ वाहन माना गया है। यहां शङ्का होसकती है कि जैसे विष्णु और ब्रह्मा के वाहन पक्षी कल्पित हैं वैसे किसी अन्य नाम के साथ योग लगा महादेव का भी पक्षी ही वाहन कल्पित क्यों नहीं किया। इस का समाधान यह है कि मेघ का खास गुण वर्षा करना ही है। वेद में सींचने के अर्थ में इस का प्रयोग बहुत आया है। मनुष्य आदि सब ही पुरुष वृषभ नाम से पुकारे गये हैं। सूर्य्य को भी वृषभ कहा है जैसे पुरुष गर्भाधान कर विविध सन्तान उत्पन्न करते हैं तद्वत् यह मेघ भी पृथिवीरूप स्त्री शक्ति में वीर्याधान कर के ओषधि रूप असंख्य

जो त्रिफला कल्क पाचक आदि दवाई हैं उसे औषध कहते हैं। यह सामान्य नियम है। परन्तु कहीं २ ओषधि के स्थान में औषध शब्द भी प्रयुक्त होता है। वेद में ओषधि शब्द स्थावर वृक्ष मात्र के लिये है ॥

सन्तान उत्पन्न करता है। इस हेतु यथार्थ में मेघ ही वृषभ है। **वृषभ** शब्द की मुख्यता इसी में है। और अन्यत्र गौण भाव से प्रयुक्त हुआ है। इस मुख्यता का लक्ष्य रखकर रुद्र का वृषभ वाहन माना गया है॥

"रुद्र और गङ्गा"

अब हम लोग अच्छे प्रकार समझ सकते हैं कि रुद्र की जटा में गङ्गा की स्थिति क्यों कर मानते हैं?। मेघस्थ वज्रात्मक अग्नि का नाम रुद्र है यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध है। जिस को विद्युदेव भी कहते हैं। यह विद्युद्देव आप देखते हैं कि जल में पूर्ण रहता है। मेघ जल के अभ्यन्तर ही इस का निवास है मानो यह रुद्र—वज्रात्मक अग्नि देव बैठे हुए हैं इस के ऊपर पर्जन्य धाराएं गिरा रहे हैं। यही मेघ धारा गङ्गा हैं। (१) जहां यह मेघस्थ विद्युदेव रहेंगे वहां अवश्य ही मेघ धारा भी रहेंगी इसी हेतु महादेव के साथ २ गङ्गा देवी भी लगी हुई हैं। इस में अन्य भी कारण प्रतीत होता है। मैंने आप लोगों से कहा है कि जैन धर्म्म के पश्चात् त्रिदेव की सृष्टि हुई है। उस समय अज्ञानता देश में अधिक विस्तृत थी। प्रत्येक पदार्थ का अधिष्ठातृ-देव विश्वास पूर्वक माना जाता था। इस नियम के अनुसार मेघ का अधिष्ठाता देव भी रुद्र माना जाता था। यद्यपि यह रुद्र वज्र वा विद्युदेव है तथापि यहां पर यह समझना चाहिये कि क्या वज्र क्या विद्युदेव ये सब स्थूल और विनश्वर वस्तु हैं। इन सबों का शासक जो

(१) इयमाकाश गङ्गा च यस्यां पुत्रं हुताशनः। जनयिष्यति देवानां सेनापति मरिन्दमम्। वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ३७। इस प्रमाण से मेघधारा का भी नाम गङ्गा है। इस में सन्देह नहीं कार्तिकेय के जन्म में देखो।

एक चेतन और अमर शक्ति हैं उस का नाम 'रुद्र' है। पौराणिक समय में ऐसा ही अधिष्ठातृ-देव माना जाता था। इस नियम के अनुसार वज्र एक भिन्न वस्तु और वज्र का अधिष्ठाता भिन्न वस्तु है। वज्र जड़ है। अधिष्ठाता चेतन और अमर है। यद्यपि यह सब अज्ञानता मूलक और अवैदिक ही है इस में सन्देह नहीं। परन्तु इसी अज्ञानता के मूलाधार पर इन देवों की सृष्टि हुई है। इसी हेतु हमें वैसा ही मान कर सङ्गति लगानी पड़ती है। अतः आप समझें कि आकाश अब अभ्र-रहित होगया। विद्युत् अब नहीं रही। अशनि का भी पता कुछ नहीं रहा। सर्वथा अन्तरिक्ष स्वच्छ दीखता है। परन्तु इस अवस्था में भी रुद्रदेव आकाश में विद्यमान हैं। क्योंकि वह चेतन और अमर हैं। वह अपने स्थान पर सदा स्थिर रहते हैं। अब आप सोचें कि प्रजाएं पर्जन्यदेव की जलार्थ आराधना कर रही हैं? वर्षा ऋतु भी आ गई है। धाराधर इतस्ततः आने लगे। अब पूछ सकते हैं कि ये धाराधर कहां से आगये। निःसन्देह जो एक चेतन अमर रुद्र देव हैं उन्हीं ने ही अपनी मेघ की विभूति फैलानी आरम्भ की है। मानो इसकी जटा में इतना पानी भरा है इसके निकट इतना जल है कि उसी में से कुछ पानी अपने भक्तों को देदेता है जिस से पृथिवी पर धाराएं गिर कर प्राणी की रक्षा होती है। यह एक स्वाभाविक विषय है कि जो मेघ का देव माना जायगा वह अनन्त अक्षय असंख्य जल का स्वामी भी बनाया जायगा। इस देव की जटा भी शतकोटि अर्थात् जगत् के बराबर मानी गई है। इसी हेतु इस को "धूर्जटि" कहा है। इसी जटा के अभ्यन्तर जल समुद्र जो अक्षय और प्रलय तक रहने वाला है प्रवाहित हो रहा है। जब वह चाहता है तब जटा खोल देता है। जगत् में पानी २ हो जाता है। पुनः जटा समिट लेता है। वर्षा बन्द होजाती है। परन्तु इस में अज्ञानता की बात यह है कि जल

को एक स्थान में एकत्रित मान लिया है। सूर्य की गरमाहट से जो मेघ बनता है वह भाग इस में लुप्त होजाता है प्राचीन पौराणिकों ने इसके लिये उपाख्यानार्थ कल्पना करली है। गङ्गा की उत्पत्ति प्रथम विष्णु के चरण से मानी है। वहां से निकलकर महादेव की जटा में आती है। तब वहां से पर्वतों पर, तब पृथिवी पर इसी हेतु गङ्गा को विष्णुपदी (१) कहते हैं। विष्णु के पैर से निकली है। यह वर्णन अधिकतर प्राचीन पौराणिक प्रतीत होता है। अब प्रथम अवान्तर गङ्गा की उत्पत्ति पर ध्यान दीजिये। सगर महाराज के सन्तान कपिल ऋषि से दग्ध होकर भस्म होते हैं पश्चात् भगीरथ की तपस्या से विष्णु के चरण से गङ्गा निकलती है महादेव इस को अपने जटा में रख लेते हैं। तत्पश्चात् भगीरथ की प्रार्थना से वहां से निकलती है। सगर के सन्तानों को पिता को पवित्र करती हुई समुद्र में गिरती है। इतना ही सम्पूर्ण कथा का सार है। आख्यायिका-प्रिय-जनो! इस आप लोगों से अन्तरिक्ष (आकाश) के नाम सुना चुके हैं। निघण्टु १—३ देखिये। अम्बरम्। वियत्। सगरः। समुद्रः आदि षोडश अन्तरिक्ष नाम हैं। इस में सगर शब्द विद्यमान है अब आप विचार कीजिये सगर जो आकाश उन के सन्तान कौन हैं। यद्यपि इस के सन्तान अनेक हैं, तथापि इन के प्रधान सन्तान मेघ हैं। वेद में भी कहा है :—

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीढुषे। स नो यवसमिच्छतु ॥१॥ यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम्। पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥ ७।१०२

यहां पर्जन्य अर्थात् मेघ के लिये (दिवस्पुत्र) शब्द आया

(१) गङ्गा विष्णुपदी जह्नु-तनया सुरनिम्नगा। अमर०

है। सायण कहते हैं—(दिवऽन्तरिक्षस्य, पुत्राय) अर्थात् अन्तरिक्ष का पुत्र। इस से सिद्ध हुआ कि **सगर** के पुत्र ये मेघ हैं। ये मेघ वर्षा ऋतु में निरन्तर जगत् में भ्रमण करना आरम्भ करते हैं। कपिल नाम अग्नि का है। इसी कारण अनेक स्थलों में कपिलाचार्य को अग्न्यवतार माना है। (१) यहां कपिल से आग्नेय शक्ति का ग्रहण है। वह आग्नेय शक्ति वर्षा के अन्त में उन सब सगर सन्तानों (मेघों) को सोख लेती है। यही कपिल द्वारा सन्तानों का भस्म होना है। अब, साठों, सगर (आकाश) व्याकुल हो रहे हैं। कुछ दिनों के पश्चात् ग्रीष्म ऋतु व्यतीत होती है। वर्षा का आरम्भ होता है। यही **भगीरथ** का जन्म लेना है। **भग** नाम सूर्य का है। **रथ** नाम रमणीय वस्तु का है। पृथिवी के लिये सूर्य की रमणीयता विशेषकर वर्षा है। हम आप को कह चुके हैं कि **विष्णु** नाम सूर्य का है। विष्णु के चरण अर्थात् किरण की उष्णता से पृथिवी पर अधिक जलीयवाष्प होने लगता है। वह आकाश में जाकर जलधारा बनना आरम्भ होता है। मानों, रुद्र देव की जटा में जलधारा एकत्रित होने लगती है। यही गङ्गा का विष्णुपद (चरण) से निकलना है और पर्वत (मेघ) पर स्थित रुद्र (विद्युद्देव) की जटा में आकर गङ्गा का भ्रमण करना है। गङ्गा जटा में अर्थात् पर्वत (मेघ) पर आई अर्थात् जल मेघाकार में प्रस्तुत हुआ। जब मेघाकार में प्रस्तुत हुआ तब इतस्ततः भ्रमण कर पर्वत (मेघ) से निकल जगत् में बरसकर प्राणीमात्र को सुख पहुंचाने लगा। अन्त में पुनः समुद्र में जाकर लीन हो गया। धारारूप से जो मेघ का इतस्ततः भ्रमण है यही गङ्गा का सगर

(१) अग्निः कपिलो नाम सांख्य शास्त्र प्रवर्तकः। हेमचन्द्र में 'कपिल' नाम अग्नि का आता है।

सन्तानों की चिता का शुद्ध करना और पृथिवी पर प्रवाहित होना है आप समझ गये होंगे कि गङ्गा को क्यों कर **विष्णुपदी** कहा है और महादेव की जटा में निवास माना है ॥

"गङ्गा शब्द की व्युत्पत्ति और सगर"

"इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति" इस ऋचा के व्याख्यान में यास्काचार्य, "गङ्गागमनात्" गमनार्थक "गम्" धातु से गङ्गा नाम की सिद्धि मानते हैं। मेघस्थ जलधारा भी गमन करती है इस हेतु धारा को गङ्गा (१) है। "गच्छतीतिगङ्गा" नाड़ी प्रभृति का भी नाम गङ्गा है। कथा हो मेघ की बात है जिस अभिप्राय से यह आख्यायिका बनी थी वह आज नहीं है। सगर की कथा को लोग यथार्थ समझने लगे। क्या यह सम्भव है कि एक एक राजा को ६०००० साठ सहस्र पुत्र (२) हों। और वे कपिल के शाप से तत्काल भस्म हो जांय। गङ्गा का विष्णु के पद से निकलना और रुद्र की जटा में आना इत्यादि वर्णन सूचित करती है कि यह कथा मेघ की है। पुनः **सगर** नाम ही बताता है कि यह वर्णन आकाश का है। इस प्रकार गङ्गा रुद्र का संयोग हमें दृढ़ करता है कि रुद्र नाम-धारी महादेव विद्युत्स्थानीय हैं। धर्मसत्य प्रेमियो! कैसा अन्धकार देश में प्रचलित है कि इस को न समझ कर गङ्गा आदि की उत्पत्ति यथार्थ मान पदे २ ठोकर खा रहे हैं। इत्यलम्—

(१) इयमाकाशगङ्गा च यस्यां पुत्रं हुताशनः। जनयिष्यति देवानां सेनापतिमरिन्दमम् ॥ [वाल्मीकि रामायण १ । ३७]

(२) षष्टिपुत्रसहस्राणि सगरस्याऽभवंस्तदा। वा० रा० । १ । ३८

"रुद्र और भस्म आदि भूषण"

रुद्र और भस्म—अनेक प्रमाण से सिद्ध हो गया है महादेव अग्नि के, विशेषतया वैद्युत अग्नि के प्रतिनिधि स्वरूप हैं। इस हेतु अब सूत्ररूप से मैं लिखता हूं। भाष्यवत् इस को आप लोग कर लेवें। महादेवजी सदा भस्मविभूषिताङ्ग (१) वर्णित हैं। आग्नेय शक्ति का कार्य्य ही प्रत्येक वस्तु को दग्ध कर—भस्म कर देना है। परन्तु भस्म शब्द का अर्थ जला देना और राख—क्षार दोनों हैं। अतएव जब शिवजी अग्नि के प्रतिनिधि मूर्तिमान् देव विरचित हुए तो यह स्वाभाविक है कि इन को चिह्न भस्म रक्खा जाय। इसी कारण महादेवजी की मूर्त्ति भस्म विभूषित बनाई जाती है। और इसी हेतु शङ्कर जी श्वेत माने गये हैं। अन्यथा तमोगुणी शिवजी का कृष्णरूप होना चाहिये परन्तु यहां विपरीत देखते हैं इस से सिद्ध है कि यह महादेव अग्नि स्थानीय हैं। इसी कारण शैवसम्प्रदायी भी भस्म देह में लगाया करते हैं और इस के सहस्रों माहात्म्य गाते हैं। अहा! कैसी अज्ञानता छाई हुई है॥

रुद्र और सर्प—सर्प को 'अहि' भी कहते हैं। परन्तु 'अहि' यह नाम मेघ और पानी का भी है। निघण्टु १-१० में अद्रि, ग्रावा, अहि, आदि ३० नाम मेघ के देखें। इसी के अनन्तर निघण्टु १-१२ में १०१ एक सौ एक नाम उदक (जल) के आए हैं। इन में से कतिपय प्रयोजनीय नाम उद्धृत कर देते हैं। यथा:—

---

(१) अस्याङ्गभूषणं भस्म विभूतिर्भूतिरस्तु। शब्दरत्नावली॥ महादेवोऽथ तद् भस्ममनोभवशरीरजम्। आदाय सर्वगात्रेषु भूतलेपं तदा करोत्। कालिकापुराण ४१ अ०। विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया। पूजितोऽपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः। इत्यादि—

अर्णः । कबन्धम् । विषम् । अहिः । सरः । भेषजम् । शवः । भूतम् । अमृतम् । इन्दुः । शम्बरम् । कृपीटम् । जलाषम् । इत्यादि—

इस में आप देखते हैं कि विष, अहि, शव, भूत, इन्दु, शम्बर आदि नाम आगये हैं। आज कल विष को संखिया, ज़हर, गरल आदि। अहि को सांप शव को मुर्दा। इन्दु को चन्द्रमा। शम्बर को दैत्य कहते हैं। वेदों को छोड़ जलार्थ में ये शब्द अब प्रयुक्त नहीं होते। और ये ही सब महादेव के साथ उपाधियां लगी हुई हैं। प्रस्तुत विषय की ओर आवें। **अहि** नाम जल का भी सिद्ध हुआ। विद्युत् वा मेघस्थ अग्नि का भूषण क्या है? निःसन्देह यदि मेघरूप जल न होवे तो इसके अस्तित्व में ही सन्देह रहेगा। इस हेतु विद्युद्देव का भूषण 'अहि' अर्थात् जल वा मेघ है। विद्युद्देव स्थानीय शिवजी का भूषण अहि अर्थात् सांप (१) है। इसी प्रकार विष, भूत, शव, चन्द्र आदि की भी व्यवस्था समझ लेवें। क्योंकि ये सब नाम जल के भी हैं। शम्बर एक दैत्य का भी नाम है इस को आगे लिखेंगे।

रुद्र और चर्म्म—यद्यपि रुद्र दिगम्बर हैं तथापि इन का वस्त्र व्याघ्र वा गज-चर्म माना गया है "मृत्युञ्जयः कृत्तिवासाः" अमर०। इस का भी कारण मेघस्थ अग्नि है। आप वर्षा समय में आकाश की ओर देखें कभी २ हाथी के चर्म के समान मेघखण्ड प्रतीत होते। कभी व्याघ्रचर्म्म सदृश। ये ही चर्म्मसमान मेघ खण्ड मेघस्थ कुमार रुद्र **(अशनि देव)** के वस्त्र हैं। जब रुद्र एक

(१) हालाहलाद्याश्चये सर्पा यथास्थानस्थिते हरम्। भूषयांचक्रु रुद्रस्य शिरोमाल्यादिमुद्रितम् ॥ कौशिका पु० शिवविवाह।

पृथक् देव रुद्र हुए तो तत् सदृश गजचर्म्म वा व्याघ्रचर्म्म इनको वस्त्र दिये गये। वेदों में भी यह वर्णन आया है।

मीढुष्टम शिवतम शिवो नःसुमना भव। परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आ चर पिनाकं बिभ्रदागहि॥ यजु० १६। ५१॥

पर्जन्यदेव में विशेष कर दो गुण हैं। वृष्टि देकर रक्षा करते हैं और अपने वज्र से हम लोगों पर प्रहार भी करते हैं। इस हेतु ईश्वर से प्रार्थना के द्वारा आशा की जाती है कि हे भगवन्! हे विद्युत् हम जीवों के प्रति कल्याणप्रद होवें। इन के जो तीक्ष्ण आयुध हैं वे कहीं अन्यत्र जहां जीव न होवें. वहां गिरें। जो यह शान्त, शिवतम, मीढुष्टम अर्थात् बहुत सींचनेवाले पर्जन्य देव हैं वे 'कृत्तिं वसानः' गजचर्म समान मेघ से युक्त हो 'पिनाकं बिभ्रत्' जलरूप अस्त्र लेकर 'आगहि' आवें। एक बात यहां स्मरण रखनी चाहिये कि जब वेद के सम्पूर्ण अर्थ मुख्यतया सूर्य, वायु और अग्नि में ही घटाए जाने लगे और सम्पूर्ण वेद क्रियापरक माने जाने लगे उस के बहुत पश्चात् इन देवों की सृष्टि हुई है। इस कारण मुझ को ये ही अर्थ यहां लेने पड़ते हैं क्योंकि इन के ही आधार पर ये सब देव रचे गए हैं।

रुद्र और पिनाक—"एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि अव ततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि" यजु० ३। ६१॥ महादेव का एक **पिनाक** अस्त्र माना जाता है। यास्क० निरुक्त० ३, २१ में पिनाक शब्द के "पिनाकं प्रतिपिनष्टि अनेन" जिस से पीसे उसे 'पिनाक' कहते हैं ऐसा अर्थ करते हैं। अर्थात् जैसे मनुष्य गेहूं आदि खाद्य वस्तु को पीसने को यन्त्र चक्की

आदि रखता है और उस से आर्द्र वस्तु पदार्थ को सूक्ष्म बनाया करता है। इसी प्रकार मेघस्थ विद्युद्देव में यह प्रत्यक्ष शक्ति है कि जल को वे सूक्ष्म बनाकर पृथिवी पर बरसाते हैं। अन्यथा: हम देखते हैं कि मेघ एक महान् पर्वत समान प्रतीत होते हैं। यदि वैसे ही मेघ पृथिवी पर गिरें तो जीवजन्तु कैसे बच सकते छोटे २ ओलों के गिरने से तो यह दशा होती है यदि बड़े २ मेघ अखण्ड गिरें तो न जाने जगत् की क्या दशा हो। इस हेतु भगवान् ने अग्नि में जैसे जल को वाष्परूप में लाकर मेघाकार बनाने की शक्ति दी है वैसे ही उस मेघ को सूक्ष्म कर बरसाने की भी शक्ति दी है। इसी आग्नेय शक्ति का नाम वैदिक भाषा में **पिनाक** है यह पिनाक मानों मेघस्थ अग्नि का शस्त्र है। अथ मन्त्रार्थ—यह आलङ्कारिक अध्यारोपित वर्णन है। (रुद्र) हे अग्निदेव! (ते) आपने (एतत्) यह (अवसम्) रक्षा की है अर्थात् आप जो हम लोगों पर कृपाकर वर्षा देते हैं सो हम जीवों के प्रति आप का रक्षा करना कार्य है। (तेनः) इस हेतु सर्वदा (मूजवतः) प्रतिबन्धकों का (अतीहि) अतिक्रमण अर्थात् त्याग करें अर्थात् आप जो जलों को अपने में बांध लेते हैं हम जीवों को नहीं देते थे जो आपके बन्धन हैं उन्हें त्याग देवें 'मुज् बन्धने' धातु से मूजवान् बनता है **जीमूत** नाम भी इसी कारण मेघ का है। आप (परः) अतिशय प्रशंसनीय हैं और आप (अवततधन्वा) विद्युद्रूप धनुष विरचित (पिनाकावसः) पिनाक-शक्ति युक्त (कृत्तिवासाः) श्याम घटारूप चर्म विभूषित हो (अहिंसन्+नः) हम जीवों की हिंसा न करते हुए किन्तु (शिवः) कल्याण स्वरूप हो (अतीहि) सर्वत्र भ्रमण करें अथवा हमारे निकट अतिशय वारम्वार प्राप्त होवें॥

अब आप विचार कर लेवें कि महादेव का अस्त्र पिनाक कहीं

-जाता है ? विद्युद्देव का सूक्ष्म करने की शक्ति का नाम पिनाक है। तत्स्थानीय गुण इस में भी संगठित करने के हेतु महादेव का पिनाक अस्त्र माना गया है। कैसी युक्ति व्यामोह के लिये रची गई है॥

"रुद्र और त्रिनयन"

जैसे विष्णु में बाहु की, ब्रह्मा में मुख की वैसे ही महादेव में नेत्र की विशेषता है। महादेवजी की तीन आंखें विदित हैं। क्यों? इस में भी अग्नि ही कारण है। इस में नेत्रस्थ आग्नेय शक्ति के योग का वर्णन संक्षेप से कर दिया है. अब सम्मिलित अग्नि के योग दिखलाते हैं। हम स्थूल दृष्टि से देखते हैं कि पृथिवी पर एक अग्नि है, जिस से यज्ञ करते, विविध पाक बनाते, बड़े २ अस्त्र शस्त्र इसी से बनाए जाते, रेलगाड़ी इसी से चलाई जाती, कभी कभी भयङ्कर रीति से जङ्गलों को यही आग जला देती। शीत समय में वस्त्र से बढ़ कर काम देता है। इस प्रकार पृथिवी पर भी अग्नि की विभूति न्यून नहीं। अब पृथिवी से ऊपर चलिये। आकाश में भी महान् अग्नि विद्यमान है। मेघस्थ अग्नि अति भयङ्कर है। ऐसा तो न पृथिवीस्थ और न द्युलोकस्थ सूर्याग्नि ही है। किस घोर गर्जन और वेग से वैद्युताग्नि दौड़ता है। क्षण में ही कैसा प्रकाश कर देता है इस रुद्राग्नि का बहुत वर्णन व्यतीत हुआ। इस से आगे चलिये। सूर्यरूप महाअग्नि को देखिये। यह अग्नि का महासमुद्र है। इसी का किञ्चित् अंश पृथिवी पर आता है, जिस से भूमि इतनी गरम हो जाती है और इसी के किञ्चित् प्रताप से मेघादि घटना घटित होती रहती है। हे विज्ञान-विज्ञानियो! इस प्रकार आप देखते हैं कि हम जीवों की रक्षा के लिये भगवान् ने तीन स्थानों में अग्नि का प्रणयन अर्थात् स्थापन किया है अतः अग्नि त्रिनयन है। "त्रिषु स्थानेषु नयनम् प्रणयनं स्थापनं यस्य स त्रिनयनः" इसी प्राकृतिक-दृश्य के अनुसार यज्ञस्थलों में तीन कुण्डों में तीन अग्नि

स्थापित होते हैं। आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि। इस कारण से त्रिनयन अर्थात् तीन स्थानों में अग्नि का नयन = प्रणयन = स्थापन हो उसे त्रिनयन कहते हैं। मन्त्रों से यह अर्थ विस्पष्ट होगा अतः कतिपय ऋचाएं यहां लिखते हैं:—

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः ॥ ६४ ॥
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः ॥ ६५ ॥
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः ॥ ६६ ॥

यजु० १६ ॥

यहां देखते हैं कि द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी तीनों स्थानों में रुद्र अर्थात् आग्नेय शक्ति की व्यापकता दिखलाई गई है। जो आग्नेय शक्तियां द्युलोक में सूर्याकार हैं वे पृथिवी के लिये वर्षा उत्पन्न करती हैं ये ही इन के इषु हैं। जो अन्तरिक्ष में हैं वे प्राणी-मात्र के प्राण की रक्षार्थ वायु देती हैं। ये ही इन के इषु हैं। जो पृथिवी में हैं वे अन्न उत्पन्न करती हैं। ये ही इन के इषु हैं। धन्य ये आग्नेय शक्तियां ! ! !

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्
मायामु तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥

[ऋ० १० । ८८ । ६]

(अग्निः) अग्नि (नक्तम्) रात्रि में (भुवः) संसार का (मूर्धा + भवति) मूर्धा होता है। चन्द्र ग्रह नक्षत्रादिरूप से रात्रि को शोभा-प्रद अग्नि होता है। (ततः) तब (प्रातः, उद्यन् + सूर्यः जायते) प्रातःकाल उदित होता हुआ, सूर्य होता है। और (एताम्) इस अग्नि को (यज्ञियानाम् + मायाम् + उ) यज्ञ करने वाले मनुष्यों की माया मानते हैं। पृथिवी पर यज्ञ का मुख्य साधन अग्नि ही है

(यत्) जो (प्रजानन्) सबों का चेताता हुआ (तूर्णिः) अति वेगवान् हो (चरति) सर्वत्र विद्यमान है। अथवा विद्युत् रूप होकर वही अग्नि सब को चेताता हुआ बड़े वेग से विचरण करता है।

दिवस्परि प्रथमं यज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परिजातवेदाः।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥१
विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद् विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥२

[ऋ० १०-४५]

प्रथम यह अग्नि द्युलोक से आदित्यरूप से प्रकाशित हुआ। तब द्वितीय पृथिवीलोक से यह अग्नि मनुष्य हितार्थ प्रकट हुआ। तत्पश्चात् तृतीय अग्नि अन्तरिक्ष में मेघों में व्याप्त हुआ। इस अग्नि को ज्ञानवान् पुरुष सदा प्रदीप्त कर यज्ञादि कर्म साधते हैं ॥ १ ॥ अग्नि के जो अग्नि, वायु, आदित्य तीनरूप पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक में वर्तमान हैं उन्हें हम जानते हैं अग्नि के जो बहुत स्थान 'गार्हपत्य आहवनीय और अन्वाहार्यपचन' आदि हैं वे भी हम को विदित हैं। अग्नि का जो परमगूढ़ तत्त्व है वह भी विदित है। अग्नि जहां से हुआ है वह भी विज्ञात ही है ॥ २ ॥ इन दोनों ऋचाओं में अग्नि की व्यापकता तीनों स्थानों में वर्णित है। इस के तीन स्थान कहे गये हैं:—

तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च।
यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन्॥ अथर्व० १५। ६ ॥

इस मन्त्र में तीन अग्नि की भी चर्चा आती है। वेद में अनेक ऋचाएं इस सम्बन्ध में आई हैं जब **त्रिनयन** या **त्रिनेत्र** शब्द

पर विचार कीजिये। अग्नि ही **त्रिनयन** है 'त्रिषुस्थानेषु नयनं प्रापणं स्थापनं यस्य स त्रिनयनः' तीन स्थानों में जिस का स्थापन हो वह **त्रिनयन**। अग्नि पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक तीनों स्थानों में स्थापित है इस हेतु यह 'त्रिनयन' है। यद्वा 'त्रिषुस्थानेषु आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणेषु कुण्डेषु नयनं प्रापणं यस्य सः त्रिनयनः' आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिण अथवा अग्न्याचार्य पचन कुण्डों में जिस का प्रापण हो वह **त्रिनयन**। यज्ञस्थल में तीनों कुण्डों में अग्नि को स्थापित करते हैं। इस हेतु अग्नि **त्रिनयन** है। 'यद्वा त्रयाणां नयनानां ज्योतिषां अग्निवाय्वादित्यानां समाहार त्रिनयनम्' अग्नि, वायु, सूर्य रूप तीन नयन अर्थात् तीन ज्योतियों का जो समाहार वह त्रिनयनं। अर्थात् तीन अग्नि "त्रीणि ज्योतींषि सचते सषोडशी" यद्वा "त्रीन् लोकान् नयति निर्वाहयति। यद्वा त्रयाणां लोकानां नयनं ज्योतिः प्रदानेन नयनभूतम्" तीनों लोकों का निर्वाह यही करता है इस हेतु अग्नि **त्रिनयन** है। यद्वा ज्योति देकर तीनों लोकों का मानों यही नयन=नेत्र है इस हेतु यह **त्रिनयन** है। यहां यह विचार की बात है कि सूर्य्य रूप अग्नि सबों का साधारण नयन है। तीनों लोकों में यही ज्योति पहुंचा रहा है। इस हेतु सब प्राणी देखते हैं। यदि सूर्य्य न होता तो आंखें रहते हुए भी हम लोग अन्ध बनजांय। इस हेतु मुख्यतया अग्नि ही नयन है, अतः अग्नि ही **त्रिनयन** है। यद्वा। एक यह भी बहुत दिनों से नियम चला आता है कि ब्रह्मचर्य गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रम में अग्नि अर्थात् अग्निहोत्रादि सकल कर्म का सेवन रहता है परन्तु चतुर्थ संन्यासाश्रम में अग्नि का त्याग होता है। अतःअग्नि तीन ही आश्रमों में जाता है। "त्रिषु आश्रमेषु नीयते प्राप्यते स त्रिनयनः"

अतः अग्नि त्रिनयन है। इत्यादि अनेक कारण हैं, जो हमें बतलाते हैं कि अग्नि त्रिनयन है। इस पक्ष में नयन शब्दार्थ नेत्र आंख नहीं 'नी' धात्वर्थ केवल प्रापण है अर्थात् पहुंचाना "णीञ् प्रापणे" नी (To carry) इस से नेता नायक प्रणयन इत्यादि शब्द बनते हैं॥

नयन = दृष्टि—परन्तु नयन शब्द का "दृष्टि" आंख भी अर्थ होता है। इस कारण जब अग्निस्थानीय रुद्र देव कल्पित हुए तो इन को तीननयन = आंखें दी गईं। अब आप विचार सकते हैं कि महादेव त्रिनेत्र (१) वा त्रिनयन क्यों कर हुए। द्व्यर्थक शब्द ही कारण है। अग्नि पक्ष में, नयन का प्रापण आदि अर्थ है। महादेव पक्ष में दृष्टि अर्थ है जिस हेतु प्रधानतया महादेव आग्नेय स्थानीय है इस हेतु इस में नयन को ही विशेषता दी गई है। क्योंकि आग्नेय शक्ति से अधिक लाभ नयन को ही प्राप्त होता है। इत्यादि ऊहनीय है॥

'रुद्र और त्रिसङ्ख्याकत्व'

महादेव "त्रिनयन" है। यह वर्णन अभी होचुका। त्रिनयन में 'त्रि' यह संख्या विषम है। अर्थात् १, ३, ५, ७, ९, ११, १३ आदि संख्या विषम और २, ४, ६, ८, १०, १२, १४ आदि सम कहलाती हैं। यह विषमता महादेवजी के साथ अनेक प्रकार से लगी हुई

(१) त्रिपुरघ्नं त्रिनयनं त्रिलोकेशं महौजसम्। महाभारत ४ ८।२७
ततः साध्यगणानीशस्त्रिनेत्रानसृजत्प्रभुः। मत्स्यपुराण॥

है। इन का चन्दन त्रिपुण्ड्र है। (१) महादेव के ललाट पर त्रिरेखा युक्त चन्दन लगाया जाता है। महादेव की पूजा जिस बिल्व पत्र से होती है वह भी त्रिदल युक्त है इस का नाम भी त्रिपत्र है। पुराणों में बिल्वपत्र से ही (२) महादेव की पूजा का विशेष विधान है। इस से बहुत प्रसन्न रहते हैं। यह बिल्वपत्र तीन दलों से संयुक्त होता है। माला इन का रुद्राक्ष कहा गया है। रुद्राक्ष का बीज तीन रेखाओं से संयुक्त रहता है। इन का शस्त्र त्रिशूल है जिस में तीन शूल रहते हैं। इत्यादि महादेव के साथ संख्यातीत त्रिपमता लगी हुई है। दशा की हीनता का भी भाग त्रिगुण है। दशा की भी विषमता महादेव के साथ है। नग्नत्व, वा दिगम्बरत्व, श्मशानवासित्व, विषभक्षणत्व, भूत-प्रेत-सहचरत्व आदि। परन्तु इन के अन्यान्य भी कारण हैं जिन का कुछ पीछे सर्व प्रकरण में वर्णन हुआ है आगे भी कुछ करेंगे॥

"रुद्र और त्र्यम्बक"

अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्। यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथानो व्यवसाययात्॥ ५८॥

---

(१) विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया। पूजितोऽपि महादेवो नस्यात्तस्य फलप्रदः। तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटेऽपि त्रिपुण्ड्रकम्। त्रिर्यग्रेखाः प्रदृश्यन्ते ललाटे सर्वदेहिनाम्। तथापि मानवा मूर्खा न कुर्वन्ति त्रिपुण्ड्रकम्। इत्यादि व्यामोह भरी अज्ञानता के कारण चल पड़ा है॥

(२) ऊर्ध्वपत्रं हरोज्ञेयः पत्रं वामं विधिः स्वयम्। अहं दक्षिणपत्रश्च त्रिपत्रदलमित्युत। यह बिल्वपत्र का माहात्म्य है। तीनों पत्र तीन देव हैं। अज्ञानता का प्रवाह कैसा प्रबल है।

रुद्राणाम् अम्बकं पितरम्' ब्रह्मा विष्णु और रुद्र का पिता करते हैं। इस से सिद्ध होता है कि 'अम्बक' पिता का नाम है। और यदि यह रुद्र सम्बन्धी मन्त्र होता तो सायण ने उपरोक्त अर्थ कैसे किया ॥ ५८ ॥ सारी कुछ पशुओं के लिये प्रार्थना है हे भगवन्! आप (भेषजम् + असि) औषधरूप सर्वोपद्रव निवारक हैं इस हेतु हमारे (गवे + अश्वाय + भेषजम्) गाय और अश्व के लिये औषध दीजिये। (पुरुषाय + भेषजम्) पुरुष के लिये भेषज दीजिये (मेषाय + मेष्यै + सुखम्) मेडा और भेड को सुख दीजिये ॥ ५९ ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। (१) त्र्यम्बकंयजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मा मुतः ॥ यजु० । ३ । ६० ॥

अम्बकं से मामृतात् तक ऋग्वेद ७। ५९। १२ में भी है। सायण इस का भाष्य यों करते हैं:—

त्रयाणां ब्रह्मविष्णुरुद्राणामम्बकं पितरं यजामहे इति शिष्यसमाहितोवसिष्ठोब्रवीति। किं विशिष्टमित्यत आह। सुगन्धिं प्रसारितपुण्यकीर्तिम्। पुनः किं विशिष्टं पुष्टिवर्धनं जगद्बीजमुरुशक्तिमित्यर्थः। उपासकस्य वर्धनं अणिमादिशक्तिवर्धनम्। अतस्त्वत्प्रसादादेव मृत्योर्मरणात्संसाराद्वा मुक्षीय मोचय। यथा बन्धनात् उर्वारुकं कर्कटीफलं मुच्यते तद्वन्मर·

घाञ्जा मोक्षय किं मर्यादीकृत्य आमृतात् सायुज्य मोक्षपर्यन्तमित्यर्थः ॥

(सुगन्धिम) जिस की पुण्यकीर्ति सर्वत्र विस्तृत है (पुष्टिवर्धनम्) जो विविध आरोग्य धन सम्पत्ति आदि का वर्धक है ऐसा जो (त्र्यम्बकम्) त्रिलोकी पिता परमात्मा है (यजामहे) उसी को हम सब पूजें। हे भगवन्! (उर्वारुकम्+इव+बन्धनात्) जैसे पका परिपक्व होने पर अपने बन्धन से नीचे गिर पड़ता है वैसे ही मैं (मृत्योः) मृत्यु से (मुक्षीय) छूट जाऊं। परन्तु (अमृतात्) अमृत से (मा) नहीं अर्थात् अमृत स्वरूप आप से कदापि भी पृथक् न होऊं। इतनी मनुष्य के लिये प्रार्थना है आगे केवल स्त्री के लिये प्रार्थना की गई है (सुगन्धिम्) जो कुसुमादिवत् अत्यन्त सुकुमार है (पतिवेदनम्) और जो हमारे स्वामी को भी सर्व दशा को जानने वाला है। ऐसे (त्र्यम्बकम् यजामहे) त्रिलोकी पिता को हम अवश्य पूजें। हे भगवन्! (उर्वारुकम्+इव+बन्धनात्) बन्धन से परिपक्व फल के समान (इतः) इस मातृ पितृ गृह से (मुक्षीय) हम को पृथक् कीजिये। परन्तु (अमुतः) उस स्वामी-गृह से (मा) नहीं। हे विद्वानो! ऐसे २ स्थानों में त्र्यम्बक पद से त्रिनयनधारी रुद्र का विशेष अर्थ करना सर्वथा अनुचित है॥

रुद्र और पञ्चवक्त्र—कहीं २ महादेव के पांच मुख माने गये हैं। प्रत्येक मुख में तीन २ नेत्र। यथा—"एकैकस्मिन् मुखे लोचनैस्त्रिभिस्त्रिभिः। बभूव तेन तन्नाम पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः॥ पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्। इत्यादि" इस का भी अग्नि ही कारण है। उपनिषदों तथा वेदान्त में पांच अग्नि का विस्तार पूर्वक वर्णन है वे पांच अग्नि ये हैं—

(१) असौ वाव लोको गौतमाग्निः। तस्यादित्य एव समित्

(२) पर्जन्यो वाव गौतमाग्निः । तस्य वायुरेव समित् । (३) पृथिवी वाव गौतमाग्निः । तस्याः संवत्सर एव समित् । (४) पुरुषो वाव गौतमाग्निः । तस्य वागेव समित् । (५) योषा वाव गौतमाग्निः । छान्दोग्य उ॰ प्रपाठक ५॥ द्युलोक पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष और स्त्री ये पांच अग्नि हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों में यद्यपि कहा गया है कि "अग्निर्वै देवानां मुखम्" अग्नि ही देवों का मुख है । परन्तु विशेषतया श्रुति प्रकरण में पांच अग्नि कहे हैं । इस कारण मानो आग्नेयदेवता के ये पांच मुख हैं । अतः अग्निस्थानीय महादेव के भी पांच मुख कल्पित हुए ।

रुद्र और दो रूपः—जैसे विष्णु के शेषशायी चतुर्भुज शङ्खचक्रादि सहित एकरूप और दूसरा प्रस्तर शालग्रामरूप ये दो रूप माने, पूजे जाते हैं । वैसे ही महादेव को पञ्चवक्त्र, त्रिनेत्र वृषभारूढ, पार्वत्यादिसहित एकरूप और प्रस्तर नर्मदेश्वर पार्थिव दूसरा रूप है । इस में सन्देह नहीं कि महादेव के साथ अनेक उपद्रव हैं । जिस प्रस्तर की आजकल सर्वत्र पूजा होती है वह यथार्थ में विद्युत् का प्रतिनिधि है इसी हेतु इनकी शान्ति के लिये सर्वदा इन के ऊपर पानी गिरते रहते हैं । इन की पूजा विशेष कर जल से ही होती है । आप ने शिवमन्दिर में देखा होगा कि इन के ऊपर घड़े के घड़े पानी डाले जाते हैं । इस से सिद्ध है कि, यह विद्युत् के प्रतिनिधि हैं । इस भाव को भूलकर इस शैव-प्रस्तर के विषय में अश्लील कथाएं भक्तों ने बनाली हैं । और इसी हेतु इस प्रस्तर पर चढ़ी हुई वस्तु अग्राह्य अखाद्य मानी गई है । कैसे शोक की बात है । धीरे २ कहां तक कथा बढ़जाती है ॥

'रुद्र और एकादशमूर्त्ति'

आप लोगों ने पार्थिव शिव पूजा अवश्य की होगी, एकादश

रुद्रों की यह पूजा कहलाती है। दश मूर्तियां कुछ पतली बनाई जातीं और पांच २ का भाग कर दो पंक्तियों में स्थापित होती हैं। एक मूर्ति स्थूल बनाई जाती जो इन दोनों पंक्तियों के आगे स्थापित की जाती है। इन एकादश रुद्रों की पूजा क्यों होती है? ये एकादश कौन हैं? संहर्ता महादेव तो एक ही है, पुनः ये एकादश कहां से आये। उ० दश प्राण और एक आत्मा इन ग्यारहों का एक नाम रुद्र है क्योंकि जब ये शरीर से निकलने लगते हैं तो परितः उपविष्ट परिवारों को रुला देते हैं, जिस हेतु ये रुलाते हैं। अतः ये रुद्र कहलाते हैं :—

यथा—"कतमे रुद्राइति दशेमे पुरुषे प्राणाः आत्मैकादशः तेयदाऽस्मात् शरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्ति। अथ रोदयन्ति। तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति" ॥

बृ० उ० ३। ९। ४॥

इसी हेतु इन के स्थान में एकादश रुद्र की पूजा होती है। जो एक स्थूल मूर्ति पृथक् रहती है वह आत्मा का और पांच २ की दो पंक्तियां रहती हैं वे पांच २ प्राणों के प्रतिनिधि हैं। जिस कारण इनका नाम रुद्र है, अतः महादेव के साथ इनकी पूजा लगाई गई है॥

"रुद्र और अष्टमूर्त्ति"

ओं सर्वाय क्षितिमूर्तये नमः। ओं भवाय जल मूर्ते नमः। ओं रुद्राय अग्निमूर्तये नमः। ओं उग्राय वायुमूर्तये नमः। ओं भीमाय आकाशमूर्तये नमः।

ओं पशुपतये यजमानमूर्तये नमः। ओं महादेवाय सोममूर्तये नमः। ओं ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः। अथाग्निः रविरिन्दुश्च भूमिरापः प्रभञ्जनः। यजमानः खमष्टौ च महादेवस्य मूर्तयः। अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः। इत्यादि—

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, सोम, सूर्य ये आठों महादेव की मूर्तियां मानी जाती हैं। और इन के देवता क्रम से सर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव, ईशान कहे गये हैं। यहां शतपथ ब्राह्मण षष्ठकाण्ड तृतीय ब्राह्मण के प्रमाण देकर पूर्व में कुछ वर्णन कर चुके हैं और यहां दिखलाया है कि अग्नि की व्यापकता का यह वर्णन है। यहां पर यह वर्णन है कि भगवान् ने अग्नि को उत्पन्न किया, यह अग्नि कहने लगा कि मेरा नाम करो। भगवान् ने इस को रुद्र नाम दिया। पुनः कहने लगा कि मैं इस से अधिक हूं और नाम दीजिये। इस प्रकार जब आदित्य सूचक ईशान नाम दिया है, तब इस ने कहा कि बस मैं इतना ही हूं। इस से अधिक नहीं। यह सिद्ध करता है कि एक महान् अग्नि है जो पृथिवी से ले कर सूर्य पर्यन्त कार्य कर रहा है, इसी हेतु पृथिवी से लेकर सूर्य तक आठों नाम समाप्त होजाते हैं॥

"अष्टमूर्ति"

इसी का नाम इङ्गलिश भाषा में (Electricity) है इसमें सन्देह नहीं कि यह आग्नेय शक्ति का मुख्य पदार्थ है जो जगत् को चला रही है। इसी हेतु आग्नेय शक्ति स्थानीय रुद्र में ये आठों गुण स्थापित किये गये हैं। इस में एक अन्य भी कारण

प्रतीत होता है। वसु आठ होते हैं। और वसु पृथिवी-देव माने जाते हैं, मुख्यतया अग्नि ही पृथिवी देव। वायु अन्तरिक्ष देव और आदित्य द्युलोक देव हैं। इस हेतु वसुओं के स्थान में भी रुद्र देव ही बताये गये। इस में प्रमाण—

कतमे वसव इति। अग्निश्च, पृथिवीच, वायुश्च, अन्तरिक्षञ्च, आदित्यश्च, द्यौश्च, चन्द्रमाश्च, नक्षत्राणि च एते वसवः। एतेषु हीदं वसु सर्वं हितमिति तस्माद्वसव इति। वृ० उ० ३।६।३॥
ब्रह्मवादिनोवदन्ति यद्वसूनां प्रातः सवनं रुद्राणां माध्यन्दिनं सवनमादित्यानाञ्च विश्वेषाञ्च देवानां तृतीयं सवनम्॥

[छान्दोग्य उपनिषद् २।१४]

अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा, नक्षत्र ये आठ वसु हैं। अन्यान्य प्रकार से भी वर्णन पाया जाता है। वसुओं के प्रातः सवन। रुद्रों के लिये माध्यन्दिन सवन और आदित्यों के लिये तृतीय सवन—

"रुद्र और रुद्र की शक्तियां"

रुद्र और पार्वती—महादेव की अनेक शक्तियां वर्णित हैं। सती, पार्वती, काली, अम्बिका, दुर्गा, भवानी, रुद्राणी, मृडानी, गौरी आदि। मैं कतिपय शक्तियों का संक्षेप से निरूपण करता हूं मैंने बारम्बार आप लोगों से कहा है कि "पर्वत-अद्रि, ग्रावा गिरि आदि नाम वैदिक भाषा में मेघ के भी हैं। निघण्टु १-१० देखिये।

अब आप समझ सकते हैं कि **पार्वती** महादेव की पत्नी क्यों मानी गई है। "पर्वते मेघे भवः पार्वती। पर्वतस्य मेघस्यापत्यं स्त्री पार्वती विद्युत्। एवं गिरिजादयः" पर्वत जो मेघ उस में जो होवे अथवा मेघ की जो कन्या उसे **पार्वती** कहते हैं। मेघ की कन्या कौन है? विद्युत्। विद्युत् के ही नाम पार्वती गिरिजा आदि हैं क्योंकि यह पर्वत (मेघ) से उत्पन्न होती है। यह विद्युत् रुद्र-देवता की शक्ति है। अतः रुद्रस्थानीय महादेव की पत्नी पार्वती मानी गई है। पृथिवी पर पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय है। और जैसे मेघ से जलधारा गिरती है वैसे इस हिमालय से गङ्गा, यमुना आदि अनेक धाराएं निकलती रहती हैं। पुनः जबतक मेघ में पानीय रहेगा तब ही विद्युत् उस से उत्पन्न होगी। हिमालय में हिम रूप पानीय सदा रहता है। इन कारणों से भूमिस्थ हिमालय की कन्या **पार्वती देवी** मानी गई है।

रुद्र और काली:—इसका भी कारण अग्नि है। "काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः"। मुण्डकोपनिषद् में लिखा है कि काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी, विश्वरूपी ये सात अग्नि की जिह्वाएं हैं। जब अग्नि के स्थान में एक रुद्रदेव कल्पित हुए तो जो वहां जिह्वाएं थीं, वे यहां वनिताएं (स्त्रियां) कल्पित हुईं। और जिस कारण काली यह नाम अग्नि-जिह्वा का है इसी हेतु कालीदेवी की मूर्ति अति लम्बायमान जिह्वा-संयुक्त ही बनाई जाती है। जिह्वा की विचित्रता वा विशेषता आप किन्हीं देवियों में नहीं देखेंगे, कारण इस का यही है कि काली नाम ही जीभ का है। और अग्नि में प्रक्षिप्त प्रथम आहुति से धूम संयुक्त काली ज्वाला निकलती है। अतः काली

देवी की मूर्ति अति कृष्ण-वर्ण मानी गई है।

"रुद्र और गौरी"

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी। अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमेव्योमन्॥

[ऋ० १।१६४।४१]

इस मन्त्र पर यास्क लिखते हैं "गौरीर्वरोचतेर्ज्वलतिकर्मणः। माध्यमिका वाक् गौरी"। अर्थ यह है मेघ में जो महागर्जन होता है उसका नाम गौरी है, अथवा वाणी मात्र का नाम गौरी है। इस ऋचा के भाष्य में सायण लिखते हैं—"गौरी: गरणशीला माध्यमिका वाक्" अथवा गरणशीला शब्द ब्रह्मात्मिका वाक्। इस मन्त्र का भाव यही है कि वाणी का नाम गौरी है। मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मौ विपश्चित्। सोमो गौरी अधिश्रितः। ऋ० ९।१२।३। इस ऋचा में भी गौरी शब्द का अर्थ वाणी ही सायण करते हैं। वाणी के नाम में भी गौरी शब्द का पाठ आया है। निघण्टु १।११ देखो। अब आप देखें माध्यमिका (मेघस्थ) वाक् भी मेघस्थ अग्नि की शक्ति है। जब मेघ से अति वेगवान् जो वज्र-देव निकलते हैं, प्रायः तब ही उनके साथ गौरी (अति गर्जन) होती है। अतः गौरी भी अग्नि की शक्ति है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि 'तेजोमयीवागिति' वाणी तेजोमयी है, इस हेतु अग्नि स्थानीय रुद्र की पत्नी गौरी देवी है। गौर वर्णा स्त्री को भी गौरी कहते हैं। विद्युत् गौर वर्ण ही दृष्टिगोचर होती है, अतः विद्युत् अर्थ में 'गौरी' शब्द का प्रयोग प्रायः आता है। इसी हेतु यहां भी पार्वती के विशेषण में गौरी पद आता है।

से भी अर्थ होगा यथा—**स्वसाः**—केवल भगिनी का ही नाम स्वसा नहीं है। वेद में साथ रहने वाले वा गमन करने वाले पदार्थका नाम स्वसा है। "त्रातुदिविषु सख्यं स्वसुर्जारः शृणोतु नः। भ्रातेन्द्रस्य सखा मम" ६।५५।५। इस मंत्र की व्याख्या में यास्क कहते हैं "उषसमस्य स्वसारमाह साहचर्य्याद्रसहरणाद्वा" निरु० ३—१६ सूर्य्य की **स्वसा** उषा (प्रातः काल) है क्योंकि दोनों साथ रहते हैं। सूर्य्य की कोई बहिन नहीं पुनः प्रातःकाल अर्थात् उषा इसकी स्वसा कैसे हुई। इससे सिद्ध है कि मनुष्य की बहिन के समान यह स्वसा नहीं। अम्बिकाः—जल के समूह का नाम 'अम्बिका' है अर्थात् मेघधारा। अम्बूनां समूहः अम्बिका। **आखुः**—आशु शीघ्र कार्य्य करने वाला। अथवा खेत को खोदने आदि कार्य्य करने वाला। **पशुः**—यह स्मरण रखने की बात है कि रुद्र का एक नाम **पशुपति** है। क्योंकि जल देकर पशुओं की यह रक्षा करता है रुद्र नाम पर्जन्य-देव वज्रका है अब सम्पूर्ण मन्त्रका यह अर्थ हुआ (रुद्र) हे पर्जन्यदेव! (एष+ते+भागः) यह पृथिवी आपका भाग है। इस हेतु आप (स्वसा) साथ गमन करने वाली (अम्बिकया) शुद्ध जलधारा के (सह) साथ (तम्) उस पृथिवी स्वरूप भागका (जुषस्व) सेवन अर्थात् रक्षण करें। (रुद्र) हे रुद्र! निश्चय (एषः+भागः+ते) यह पृथिवी आपका ही भाग है। केवल पृथिवी ही नहीं किन्तु (आखुः) खोदने आदि व्यापार करने वाले (पशुः) पशु भी (ते) आपके ही हैं। जाति में यहां एक वचन है। (स्वाहा) ईश्वर की आज्ञा प्रतिपालित होवे। अर्थात् ईश्वर की जो यह आज्ञा है कि पर्जन्य जल से पृथिवी का पालन करे। विविध औषधि उत्पन्न करें। उन से पशु पुष्ट हों इत्यादि कार्य्य सम्पादन-क्षम होवें। यह सब तब ही हो सकता है जब पर्जन्य देव बरसें। रुद्रसे पशुरक्षा के लिये अनेक प्रार्थना हैं। और अन्यत्र कहीं उक्त नहीं हैं कि रुद्र का

चुका भाग है। इस हेतु यहां यौगिक अर्थ करना ही सर्व सिद्धान्त है। पुनः—

प्राणाय स्वाहा। अपानाय स्वाहा। व्यानाय स्वाहा।
अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥

यजु० २३। १८ ॥

इस मन्त्र में अम्बा अम्बिका अम्बालिका शब्द क्रमशः माता पितामही प्रपितामही वाचक है। आचार्यकृत भाष्य देखिये अम्बा शब्द से भी अम्बिका बनता है। माता अर्थ में भी इसका बहुधा प्रयोग आया है ॥

रुद्र और सती:—सती की आख्यायिका बड़ी विलक्षण है। दक्ष प्रजापति की यह दुहिता कही गई हैं। महादेवजी से विवाह हुआ। अपने पिता के अनुचित व्यवहार से वह सतीदेवी यज्ञ कुण्ड में भस्म होगई। पुनः हिमालय पर्वत की कन्या होकर महादेव की अर्धाङ्गिनी हुई। इतना ही कथा का सारभाग है। हे विद्वानो! ऐसे स्थलों में दक्षनाम सूर्य्य का ही है। "आदित्यो दक्ष इत्याहुः। आदित्यमध्ये च स्तुतः"। निरु० दै० ५। २३। यास्काचार्य्य कहते हैं, दक्ष नाम सूर्य्य का है। द्वादश आदित्यों में एक दक्ष आता है। निपुण, तीक्ष्ण को दक्ष कहते हैं। अर्थात् ग्रीष्म ऋतु का जो सूर्य्य है। उस का नाम दक्ष है। सूर्य्य भगवान् **पर्जन्यदेव रुद्र** को अपनी उष्णता रूपा सती शक्ति (पुत्री) देते हैं। कभी कभी वैशाख ज्येष्ठ में भी उष्णता के योग से मेघ और उस में विद्युत् होती है। यही सती देवी का रुद्र के साथ स्वल्प काल निवास है। सूर्य्य दिन दिन मेघ शोषण करने में परम दक्ष होते जाते हैं। जगत् को प्रचण्डतया तपाना आरम्भ करते हैं। आकाश सर्वथा शुष्क

होजाता। सूर्य्य के कारण से प्रथम मेघ बना था, और विद्युत् उत्पन्न हुई थी, वह रुद्र की सती देवी थी, और इसी से रुद्र देव की प्रसन्नता थी। अब सूर्य्य तो जगत् के कल्याणार्थ को तापन रूप यज्ञ रचता है। परन्तु इस यज्ञ में विद्युत् की हानि हुई। क्योंकि मेघ ही नहीं रहा पुनः विद्युत् रहे कहां। मेघ के अभाव से विद्युत्पति रुद्र का भी निरादर हुआ। मानो वह मेघस्थ विद्युद्देवी दक्ष (सूर्य्य) के तापन रूप यज्ञ में पति का निरादर देख भस्म हो गई। एक बात यहां स्मरण रखनी चाहिये कि जिस समय सूर्य्य पृथिवी को तपाना आरम्भ करता है। उस समय पृथिवी अति उष्ण होजाता है। अतः अग्नि दक्ष के तापन रूप यज्ञ में एक प्रकार से आजाता है। परन्तु गर्जन करने वाला मेघ देव रुद्र नहीं आता। उस ग्रीष्म समय में रुद्रका नहीं रहना यही दक्षकृत रुद्र का निरादर है। और यह निरादर सूर्य्य के कारण से ही हुआ है। इस हेतु सती देवी मानो भस्म हो जाती है। मेघ में विद्युत् का न होना ही सती का भस्म होना है। अब पुनः ग्रीष्म ऋतु के बीतने पर वर्षा आई। जो सती देवी (विद्युत्) भस्म होगई थी, पुनः वह पर्वत (मेघ) में उत्पन्न हुई। अर्थात् पुनः मेघ में विद्युद्देवी प्रकाशित होने लगी अब रुद्र अर्थात् पर्जन्य-देव उस विद्युद्देवी को अपने शिरपर लेकर पृथिवी पर भ्रमण करना आरम्भ करते हैं। जहां २ सती देवी का अङ्ग गिरता है, वह पवित्र स्थान होता जाता है, अर्थात् जहां २ वृष्टि होती है, निःसन्देह वह स्थान पवित्र होता है। वर्षाऋतु के अनन्तर ग्रीष्म होना और ग्रीष्म के पश्चात् पुनः वर्षा होना यह जो दृश्य है। यही सती का भस्म होना और जन्म लेना है। हे शब्द तत्त्ववित्! आप लोग इस दृश्य को अच्छे प्रकार विचारें॥

"रुद्र और अर्धाङ्गिनी"

यद्यपि विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सब पौराणिक देवों की शक्तियां

है। इस में सन्देह नहीं। परन्तु रुद्र देव की शक्ति की बड़ी विलक्षणता है। आप देखते हैं कि रुद्र ही शरीर में आधा भाग स्त्री का और आधा भाग पुरुष का रखता है। भूषण आदि भी इसी के अनुसार सजाये जाते हैं। इसी हेतु रुद्र को अर्ध नारीश्वर आदि नामों से पुकारते हैं। तन्त्रसार में लिखा है। यथा:—

नीलप्रवाल रुचिरं विलसत् त्रिनेत्रम् ।
पाशारुणोत्पल कपालक शूल हस्तम् ॥
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्त रूपम् ।
बालेन्दु बद्ध मुकुटं प्रणमामि रूपम् ॥

पुनः—अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता ।
अर्धनारीश्वरप्राया उमा माहेश्वरी तिथि ।

इस का कारण क्या है? अन्य देवों का ऐसा रूप क्यों नहीं ?। क्योंकि शक्तियां सबों की हैं। क्या महादेव ही अपनी पत्नी को अधिक मानते हैं?। उ० इस में भी अग्नि ही कारण है। देखिये! वायु एक स्वतन्त्र देव प्रतीत होता है, सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथिवी, जल आदि सब ही एक २ स्वतन्त्र दीखते हैं, परन्तु अग्नि देव स्वतन्त्र नहीं। काष्ठ, पत्थर, मेघ से अग्नि पृथक् नहीं इन के ही अभ्यन्तर लीन है। दीयासलाई में अग्नि भरी हुई है। बारूद में विद्यमान है। काष्ठ के संघर्ष से अग्नि प्रकट होती है। मेघ से लपकती है। परन्तु स्वतन्त्र अग्नि नहीं यदि काष्ठादि पदार्थ न हों तो अग्नि का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। इस से यह सिद्ध होता है कि अग्नि देव अन्यान्य शक्ति के साथ ही कार्य्य कर सकते हैं। क्षणमात्र भी अन्यान्य शक्ति से वियुक्त होकर अग्नि देव नहीं रह सकते। इसी कारण विवेकशील पुरुषो! अग्नि स्थानीय रुद्र देव

अर्धनारी और अर्धपुरुष माने गये हैं। कैसी विलक्षण रुद्र की सृष्टि है। निःसंशय रुद्ररचियता ने बड़ी २ युक्तियां और दृश्य वर्णन किये हैं।

"रुद्र और रोदसी"

स्थन्नु मारुतं वयं श्रवस्यु मा हुवामहे। आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी॥
निरु० दै० ५। ५०॥

इस मन्त्र की व्याख्या में "रोदसी रुद्रस्य पत्नी" रुद्र की पत्नी का नाम **रोदसी** है ऐसा यास्काचार्य्य कहते हैं। विद्युत् का नाम रोदसी है। रुद्र की ही शक्ति विद्युत् है। पत्नी पालयित्री शक्ति का नाम है। वेदों में **रोदसी** एक वचन प्रयोग बहुत आया है। इसी प्रकार रुद्राणी भवानी आदि शब्दों की सङ्गति स्वयं कर लेवे।

"रुद्र और चन्द्र"

वैदिक भाषा में चन्द्र वाचक जितने चन्द्र, चन्द्रमा, सोम आदि शब्द हैं वे सब सोमलता वाचक भी हैं। दो पदार्थों के एक नाम होने से अर्वाचीन संस्कृत भाषा में बड़ा गड़ बड़ हुआ है। जहां वर्णन है कि सोम वा चन्द्र ओषधियों का अधिपति है, वहां लोगों ने सोम चन्द्रादि शब्द से ग्रह-चन्द्रमा का ग्रहण किया है। परन्तु यह बड़ी भूल की बात है। ऐसे २ स्थल में चन्द्रादि पद से सोमलता का ग्रहण है। ओषधियों में सर्व श्रेष्ठ होने से ओषधिपति ओषधीश्वर आदि सोमलता ही कहलाती है। न कि ग्रह-चन्द्रमा रुद्र के शिर पर जो चन्द्रमा की मूर्ति बनाई जाती है, वह यथार्थ में सोमलता का सूचक है। और सोम पद से सम्पूर्ण वनस्पति का तैलादिशब्दवत् ग्रहण है। इसी हेतु महादेव का एक नाम पशुपति

है। शतपथ कहता है। "ओषधयो वै पशुपतिः। तस्माद् यदा पशव ओषधीर्लभन्ते अथ पतीयन्ति" ॥ ६।१।१२॥ ओषधि ही पशुपति है। जब पशु ओषधि पाते हैं। तब ही स्वामी से कार्य्य क्षम होते हैं। अब आप समझ सकते हैं कि महादेव के साथ चन्द्रमा क्यों है? महादेव पर्जन्य देव हैं। वह अपनी वर्षा से विविध गोधूम यव वनस्पति आदि खाद्य वस्तु द्विपद चतुष्पद के लिये पैदा किया करता है। मेघ का यह महान् यश है, अतः पर्जन्य देव स्थानीय महादेव के शिर पर यशः स्वरूप चन्द्रमा शोभित है। वेद में सोम रुद्र शब्द बहुधा इकट्ठा प्रयुक्त हुआ है, यथाः—

सोमारुद्राधारयेथामसुर्य्यं प्रवामिष्टयो रमश्नुवन्तु। दमे दमे सप्तरत्ना दधाना शन्नो भूतं द्विपदेशं चतुष्पदे॥ सोमारुद्रा वि वृहतं विषूची ममीवा यानो गयमाविवेश। आरे वाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥२॥ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषू भेषजानि धत्तम्। अवस्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु कृतमेनो अस्मत् ॥३॥ तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्रा विह सुमृलतं नः। प्रनो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥४॥ ऋ० ॥ ६ ॥ ७४ ॥

रुद्र और मरुतः—वेदों की कई एक स्थलोंमें मरुत् को रुद्रपुत्र कहा है, वेदार्थ दीपिका में भी कहा है कि "अजीजनन्मरुतः पृश्निपुत्रा रुद्रस्य पुत्रा अपितिबभूवुः। रौद्रेषु सूक्तेष्वथ मारुतेषु

कथाद्वयंश्रूयते तत्र तत्र" । आग्नेय शक्ति से महत् उत्पन्न होता है । अतः यह रुद्रपुत्र माना जाता है ।

रुद्र और सुवर्णादि धातु—सुवर्ण रजत ताम्र लोह आदि समस्त धातु आग्नेय शक्ति के कारण से ही बनते हैं । अतएव पुराणों में महादेव से इन की उत्पत्ति मानी है । इन में जो अश्लील कथा कहते हैं वे सब महा मिथ्या हैं । विष्णु जब मोहिनी रूप धारण कर रुद्र को लुभाते हैं, तब इन के पीछे २ रुद्र दौड़ते हैं । इस का भाव यह है कि विष्णु अर्थात् सूर्य्य अपनी शक्ति से जब मोहनी रूप अर्थात् विद्युद्रूप फैलाता है । तब इस के साथ रुद्र का रहना आवश्यक है । यह भाव न समझ कर अवाच्य कथा का वर्णन कर अपने देव को कुत्सित बनाते हैं । हे विद्वानो ! विचारो ! ।

रुद्र प्रस्तर और जलमय पूजा—जैसे विष्णु ब्रह्मा की मूर्ति सर्वावयव-सम्पन्न बनाकर लोग पूजते पुजाते हैं । तद्वत् शिव का पूजा नहीं देखते । काशी, वैद्यनाथ आदि स्थानों में केवल लम्बाकार हस्तपादादि रहित प्रस्तर की पूजा होती है । इस में सन्देह नहीं कि जिस समय विष्णु की पूजा **शालग्राम** में होने लगी, उसी समय नर्मदेश्वर की वा शैव **प्रस्तर** की पूजा चली है । इस के पूर्व त्रिनयन, पञ्चवक्त्र, भस्म विभूषित वृषभारूढ़ इत्यादि अनेक विशेषण संयुक्त और पार्वती सहित महादेव की पूजा चली थी । इस शैव-प्रस्तर की पूजा प्रचलित होने का भी कारण सहजतया विदित हो सकता है । पौराणिक समय में सब देवों की पूजा पृथक पृथक् होने लगी थी । सब ही चेतन देव माने जाते थे । मेघ के गर्जन और विद्युत् के पतन से लोग बहुत कम्पायमान होते थे । विद्युत् का अधिष्ठातृ देव रुद्र माना जाता था । प्रत्यक्ष ही रुद्र देव को अग्नि से जाज्वल्यमान देखते थे । अब भी देखते हैं । लोग

विचारने लगे कि इस देव की शान्ति कैसे हो सकती है। इस से हमारी बड़ी हानी होती है। लोगों ने स्थिर किया कि अग्नि की शान्ति जल से होती है। इसी कारण आप शैव प्रस्तर की पूजा में यह विशेषता देखेंगे कि ब्राह्मण लोग प्रतिक्षण इस के ऊपर जल गिराते ही रहते हैं। प्रसिद्ध २ मन्दिरों में यह नियम है कि किसी बड़े पात्र की पेंदी में छेद कर और उस में पानी भर शिव प्रस्तर के ऊपर लटका देते हैं। उस छिद से बून्द २ पानी दिन भर शिव प्रस्तर पर गिरता है। आप ने सब देवों की पूजा देखी होगी। परन्तु शैव प्रस्तर की पूजा विशेष कर जल से ही होती है। जो जाता है वह इन के ऊपर खूब पानी चढ़ाया करता है। भारतवर्ष में जितने मन्दिर हैं, इन में जल का ही द्रव्य अधिक है। और होना भी चाहिये। यह पूजा ही हमें सूचित करती है कि यह प्रस्तर वज्र-स्थानीय है। जब वज्र मेघ से निकल बड़े जोर से चिल्लाता हुआ दौड़ता है, तो उस समय इस का रूप अत्यन्त जलता हुआ, अति लम्बायमान लोह दण्ड सा प्रतीत होता है। हस्तादि अवयव नहीं दीखते। अतएव लोगों ने रुद्र देव की मूर्ति लोह दण्ड के समान ही बना प्राण प्रतिष्ठा दे पूजने लगे। यह शैव प्रस्तर केवल विद्युद्देव का ही प्रतिनिधि है। परन्तु पीछे इसका भी भाव भूल गये। इस को कुछ और ही मानने लगे। और अनेक प्रकार की कथायें गढ़लीं। हे विवेकी जनो!! परन्तु वे सब ही मिथ्या हैं। रुद्रदेव-सृष्टिकर्त्ता ने इस प्रस्तर को वज्र का प्रतिनिधि बनाया था। यदि ऐसा न होतो इस प्रस्तर के साथ जल का बखेड़ा इतना क्यों लगाया जाता। इस से सिद्ध है कि यह प्रस्तर वज्र प्रतिनिधि है। इत्यलम्—

रुद्र और पार्थिव पूजा—आप देखते हैं कि मृत्तिका (मिट्टी) की मूर्ति बना बना कर प्राणप्रतिष्ठा दे प्रतिदिन महादेव की पूजा करते हैं। महादेव की पूजा में इसी का माहात्म्य है। अन्य देव

की मृत्तिकामयी मूर्ति बनाकर आह्निक पूजा नहीं होती। इस का कारण यह है कि अग्नि पृथिवी का भी देव माना जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इस का बहुत वर्णन है। इस हेतु प्रतिदिन मृत्तिका की मूर्ति बनाकर लोग पूजते हैं।

रुद्र और त्रिशूल—मैंने आप लोगों को सिद्ध कर दिखला दिया है कि यह रुद्र देव केवल विद्युत् वज्र वा अशनि के ही स्थान में नहीं किन्तु समस्त आग्नेय शक्ति की जगह में सृष्ट हुआ है। इसी विद्युत् का नाम इङ्गलिश में (Lightning) है और जो सर्वव्यापक अग्नि शक्ति है उस का नाम (Electricity) इस में सन्देह नहीं कि लाइटनिंग और इलेक्ट्रिसिटी दोनों एक वस्तु हैं। विद्युत् जहां गिरती है वहां सब पदार्थ नष्ट भ्रष्ट दग्ध हो जाते हैं, यह प्रत्यक्ष है। इस आपत्ति से बचने के लिये प्राचीन विद्वानों ने यह उपाय निकाला था कि धातु निर्मित त्रिशूल यदि बड़े २ मकानों में लगाए जांय तो मकानों की बड़ी रक्षा हो सकती है। यह त्रिशूल विद्युत् आकर्षक होता है। अब आप देख सकते हैं कि महादेव के साथ त्रिशूल क्यों कर माना गया है? जिस हेतु महादेव विद्युद्देव हैं। अतः इन के साथ त्रिशूल है। यह दिखलाया है कि यदि विद्युत् से रक्षा चाहते हो तो अपने २ मकानों में धातु रचित त्रिशूल लगाओ। आज काल माना गया है कि फ्रैंकलिन नाम के विद्वान ने इस जगदुपकारी वस्तु को प्रकाशित किया है। परन्तु हमारे यहां पहले से ही यह विद्या विद्यमान थी॥

Franklin turned his discovery to great practica account. He suggested that buildings should have lightning conductors, made of metal, through which lightning would pass without any injury to the buildings; The conductors project a little above the buildings, and are pointed to attract the lightning. They are fastened to the buildings by the grass-roads, through

which the lightning can not pass, and thus it is conducted safely to the ground.

In some parts of India thunderstorms are frequent and violent. Every year hundreds of lives and much valuable property are preserved through the invention of Franklin.

रुद्र और नग्नत्व—नग्न रहना यह न शास्त्रीय और न पौराणिक सिद्धान्त है । प्रतीत ऐसा होता है कि जब देश में जैनधर्म की परमोन्नति होने लगी, और योगाचारी आदि जैनाचार्यों ने जब दिगम्बर पंथ चलाया । अज्ञ लोग इस को सिद्ध मानने लगे, उस समय पौराणिकों ने भी विवश हो कर अपने देव को नग्न बनाया । पहले से ही महादेव का वेष जैन-योगी के समान था ही व्याघ्रचर्म, विभूति सर्प, श्मशान अर्धाङ्ग आदि उपाधियां विद्यमान हो थीं, पीछे इन में एक और नग्नत्व विशेषण बढ़ा दिया तब से ही महादेव नग्न माने गये । अन्यथा महादेव तो कृत्तिवासा थे, पुन नग्न कैसे हुए इस प्रकार दिन दिन इन के साथ उपाधि बढ़ती ही गई । **भैरव** भी इन के गण हैं । भयङ्कर जिस का रव (नाद) हो । यह मेघ है । यही भैरव है । **कार्तिकेय** इन के पुत्र हैं । यह सेनापति कहे गये हैं । मेघों के जो अनेक झुण्ड हैं । वे ही यहां सेनाएं हैं । मानों इस कादम्बिनी (मेघमाला) को अपने वश में करके यथास्थान में जो ले जांय और तत् तत् स्थान में पानी बरसा कर पदार्थ रूप देवों को लाभ पहुंचावें । वे ही कार्तिकेय हैं । **गणेश** भी महादेव के पुत्र कहे गये हैं । यह गजानन हैं, जिसने मेघों को पर्वत पर और समुद्रों में लटकते देखा है, उन्हें बोध हो सकता है कि महादेव पुत्र गणेश क्यों माने गये हैं । वे मेघ हस्ती के समान पर्वतों पर प्रतीत होते हैं, और उसी प्रकार सूंढ़ लटकाए हुए भासित होते हैं । ये मेघ ही तो गण हुए । उन के जो ईश वे

गणेश हैं। यह भी मेघ का ही वर्णन है, इसी प्रकार त्रिपुरदहन आदि की भी सङ्गति आप लोग स्वयं लगा सकते हैं। गणेशादिकों का निरूपण अन्यत्र दिखावेंगे। यहां ग्रन्थ के विस्तारभय से इन सबों का वर्णन अभी नहीं किया है। रुद्र सम्बन्धी जितनी ऋचाएं हैं, उन का भी अर्थ अन्यत्र प्रकाशित करेंगे। यजुर्वेद षोड़शाध्याय सम्पूर्ण रुद्र सूक्त है। आधिदैविक पक्ष में यह सब वर्णन विद्युद्देव का होता है, आदिभौतिक पक्ष में राजा आदि के वर्णन में घटती है। विद्युत् एक विशेष पदार्थ है। विचारने से यही प्रतीत होता है कि आत्मा और परमात्मा को छोड़ यही एक मुख्य पदार्थ है। वेद ईश्वर-विभूति को दिखलाता है। विद्युत् एक जाग्रत विभूति है, अतः इसका एक अध्याय में वर्णन आया है। हे रुद्रदत्तादि विद्वानो! ईश्वर की विभूति देख ज्ञान प्राप्त कीजिये।

"उपसंहार"

इस प्रकार हम देखते हैं कि अग्नि, वायु और सूर्य्य ये ही तीन देव मुख्य हैं। यास्क कहते हैं "तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवी स्थानः। वायुर्वेन्द्रोवान्तरिक्षस्थानः। सूर्य्यो द्युस्थानः" तीन देवता हैं, पृथिवी पर अग्नि। अन्तरिक्ष में वायु। और द्युलोक में सूर्य्य। इन ही तीन देवों के स्थान में रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु कल्पित हैं। परन्तु हे विद्वानो! आप देखते हैं कि इन तीनों देवों के चलाने वाला भी कोई एक अन्य महान् देव है।

'यो देवेष्वधि देव एक आसीत्'
'द्यावाभूमी जनयन् देव एकः'
'त्रीणिज्योतींषि सचते स षोडशी'

वही हम मनुष्यों को पूज्य देव है। हे धीर पुरुषो! इस प्रकार

ब्रह्म की चिन्तन आप लोग करें और मिथ्या ज्ञान को त्यागें। ब्रह्म निरूपण कभी पुनः विस्तार से सुनाऊंगा।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ ! त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ! ॥ गीता ॥

हे विद्वानों क्या आप लोगों ने इसको एकाग्रचित्त से श्रवण किया ? क्या आप लोगों का मोह भ्रष्ट हुआ।

विद्वांसऊचुः—'नष्टो मोहःस्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ! स्थितोऽस्मिगतसन्देहः करिष्ये वचनंतव' ॥ गीता ॥

हे मान्यवर ! हमारा मोह नष्ट हुआ। स्मृति प्राप्त हुई। अब हम लोग सन्देह रहित हुए यह सब कुछ आपकी कृपा से हुआ। आज से आपका वचन, स्वीकार करेंगे। हे विद्वानो ! हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। आईये ईश्वर की प्रार्थना और सत्य की महिमा गाते हुए इस प्रसंग को समाप्त करें।

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः। तुभ्यं यज्ञो वितायते तुभ्यं जुहति जुहुत स्तवेद्विष्णो। बहुधा वीर्य्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ अथर्व १७।१।१८ ॥

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधी वीरुध आ विवेश। य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥ (अथर्व ७। ८७। १)

आप इन्द्र, महेन्द्र, आलोक, प्रजापति हैं। आप के लिये ही यज्ञ करते हैं। हे भगवन्! आप ही सब से बलवान् हैं। आपकी शरण में हम बद्धाञ्जलि उपस्थित हैं। आप ऐहलौकिक सुख भुगाकर पश्चात् अमृत् प्रदान करें। जो व्यापी न्यायकारी ईश्वर अग्नि, जल, ओषधियों और वनस्पतियों में व्यापक है, जिसने सम्पूर्ण विश्व रचा है उसी प्रकाश स्वरूप न्यायकारी देव को नमस्कार होवे।

"सत्य की महिमा"

१—सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्॥ ऋ० ७। १०४। १२॥

अर्थः—(चिकितुषे) ज्ञानी चेतन (जनाय) जनों के लिये (सुविज्ञानम्) यह सुविज्ञान अर्थात् जानने योग्य है कि (सत्+च+, असत्+च) सत् और असत् दोनों (वचसी) वचन (पस्पृधाते) परस्पर एक दूसरे को दबाने की ईर्षा करते हैं परन्तु (तयोः) उन दोनों में (यत्+सत्यम्) जो सत्य है और (यतरत्) उन दोनों में जो (ऋजीयः) अतिशय ऋजु अकुटिल हैं (तद्+इत्) उसी को (सोमः) भगवान् अथवा राज मन्त्री (अवति) रक्षा करते हैं, और (असत्+आः+हन्ति) असत् का सर्वथा हनन करते हैं॥१॥

२—न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्। हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्त मुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते॥ ७। १०४। १३॥

अर्थः—(सोमः) भगवान् (वै+उ) निश्चय ही (वृजिनम्) पापी को (न+हिनोति) नहीं छोड़ते हैं, और (न) न (क्षत्रियम्) पापी क्षत्रिय को छोड़ते हैं, और (मिथुया) मिथ्या वचन (धारयन्तम्) धारण करते हुए अर्थात् असत्य-भाषी जन को नहीं छोड़ते हैं

(रक्ष + हन्ति) उस पापी राक्षस को घात करते हैं (असद्+वदन्तम्) असत्य ; बोलते हुए को (आ + हन्ति) पूर्ण दण्ड देते हैं (उभौ) राक्षस और मिथ्या भाषी दोनों जन (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (प्रसितौ) बन्धन में (शयाते) रहते हैं। षिञ बन्धने इस धातु से प्रपूर्वक "प्रसिति" बनता है ॥२॥

२—यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने। किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥ (७।१०४।१४॥)

अर्थः—(अग्ने) हे प्रकाश देव ! (जातवेदः) सम्पूर्ण भुवन को जानने वाले ईश्वर ! (यदि + वा) यदि (अहम्) मैं (अनृत-देवः) मिथ्यादेवोपासक (आस) हूं (वा) अथवा (मोघम्) निष्फल हो (देवान् + अपि + ऊहे) देवों के निकट प्राप्त होता हूं, हे भगवन् ! यदि ऐसा मैं हूं, तब मेरे ऊपर आपकी अकृपा हो, परन्तु ऐसा मैं नहीं हूं। हे देव ! इस हेतु (अस्मभ्यम्) हमारे ऊपर (किम् + हृणोषे) क्यों आप क्रोध करते हैं। हे भगवन् ! (ते) वे (द्रोघवाचः) मिथ्याभाषी जन (निर्ऋथम्) नाश को (सचन्ताम्) प्राप्त होवें ॥ अनृतदेव = जिसका देव मिथ्या हो। निर्ऋथ = हिंसा। अतः हम लोग कल्पित मिथ्या देव की उपासना छोड़ परमात्मा की उपासना सदा किया करें जिससे कि इनके कोप में न पड़ें। आईये अन्त में पुनः उस परमगुरु **स्वामी श्रीमद्दयानन्द** को वारम्बार नमस्कार करें जो हम सबों को अन्धकार से पार करते हैं॥

"ते त मर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माक मविद्याय परं पारं तारयसिति"। नमःपरमऋषिभ्यो नमःपरमऋषिभ्यः

"त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी"

इति मिथिला-देश-निवासि-शिवशङ्कर शर्म-कृते

त्रिदेवनिर्णये रुद्र-निर्णयः समाप्तः।

त्रिदेवनिर्णयश्च समाप्तः।